भूचाल

लेखक

श्री रामसिंह

विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली

प्रकाशक

विद्या मन्दिर लिमिटेड,

कनॉट सरकस, नई दिल्ली ।

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९४६

गोंडल्स प्रेस,
नई दिल्ली ।

समर्पित

रक्त की गाथा यह अनजान
तुम्हें, जननी! है सादर भेंट,
बीत जाएंगे कल्प अनेक
नियति-कर सकता इसे न मेट।

धरा हिल गई हो गए ध्वस्त
राजगिरि, भागलपुर, मुंगेर
तप्त जल बहा धरा को तोड़
हो गए गृह मृतिका के ढेर!

मृतों की स्मृति में निशि-दिवस
अरी मां! करती होगी रुदन,
उन्हीं की स्मृति यह भूचाल,
हृदय के तारों का कम्पन।

{१}

मनोरमा जब कुछ होश में आई तो उसने देखा कि वह एक नदी के किनारे फूस का छप्पर डाली हुई मिट्टी की कुटिया में थी। वह आंखें फाड़-फाड़कर खोई सी इधर-उधर देखने लगी। उसकी समझ में न आता था कि वह अपनी पटना की आलीशान कोठी में से उस जंगली की झौंपड़ी में कैसे आगई। उसको उस स्थान से इस स्थान में कौन ले आया? उसने भूतों की कहानियां सुनी थीं जिनमें यह चर्चा आती थी कि अमुक आदमी को भूत उसके शयनागार से चारपाई समेत उठा ले गए और उसको किसी खण्डहर में ले जाकर रख दिया। उसने सोचा कि क्या उसको भी इस खंडहर में भूत ही ले आए थे। सम्भव था कि ऐसा ही हुआ हो; किन्तु फिर उसको रास्ते में यह पता क्यों नहीं चला कि उसको कोई कहीं ले जा रहे थे। इस दुविधा में पड़ी हुई मनोरमा ने देखा कि उसके सिर पर पट्टी बंधी हुई है और उसकी एक टांग में ज्यादा दर्द है। उसका एक हाथ कलाई तक कुचला हुआ था। उस पर हलकी पट्टी बंधी थी। यह सब देखकर तो उसको और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

अन्त में उसको स्मरण आया कि वह एक दिन पटना में गंगा की धारा में नाव में बैठी हुई सैर कर रही थी। उसके पति बाबू अवध-बिहारीलाल उसके साथ थे। अचानक नदी की धारा संकुचित होती हुई दिखाई दी और अन्त में वह बालू में समा गई। उसके बाद बड़े ज़ोर की गड़गड़ाहट सुनाई दी, किनारे के मकान गिरते हुए दिखाई दिए और

लोग रोते तथा चिल्लाते हुए सुने गए। मनोरमा को स्मरण आया कि उसकी नाव तभी घाट से टकराकर टूट गई थी। यह दृश्य देखकर उसको प्रलय आने का खयाल हुआ था और उस प्रलय के खयाल ने ही कदाचित् उसे बेहोश कर दिया था। उसके बाद उसको यह याद नहीं रहा कि वह कहां थी। उसको तब यह भी स्मरण नहीं रहा कि उसकी ऐसी अवस्था कब से थी! वह घायल कैसे हुई, यह उसको बहुत सोचने पर भी स्मरण नहीं आया।

मनोरमा अब चारपाई के ऊपर उठकर बैठ गई। उसको यह चिन्ता हुई कि, वह कहां थी और उसके पति कहां गए, यह बात उसको किसी भांति ज्ञात हो जाए; किन्तु कुछ देर ही बैठने के उपरान्त उसका सिर फिर चक्कर खाने लगा और वह धीरे-धीरे फिर बेहोश हो गई।

मनोरमा को अपनी चारपाई के ऊपर बैठी हुई देखकर झोंपड़ी से कुछ दूर बैठा हुआ एक आदमी प्रसन्न-चित्त सा अपने स्थान से उठा और लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ झोंपड़ी की ओर चला; किन्तु झोंपड़ी में उसके प्रवेश करने से पहिले ही उसने देखा कि मनोरमा फिर बेहोश हो गई। उसने चारपाई के पास जाकर उसको सँभाला और उसको हवा करने लगा। यद्यपि जनवरी का महीना था और बिहार में ये कड़ाके के शीत के दिन होते हैं; किन्तु फिर भी मनोरमा के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आई थीं। वह जानता था कि मनोरमा की अवस्था अभी अच्छी नहीं है। उसको भूचाल के कारण नदी में नाव उलट जाने से गहरा मानसिक और शारीरिक आघात पहुंचा था। फिर भी उसको विश्वास था कि मनोरमा ठीक हो जाएगी। उसने उसको होश में लाने के लिए अपने हाथों को धीरे-धीरे हिलाया और अपना मुंह उसके कान के पास लेजाकर पुकारना आरम्भ किया, "मनोरमा, जागो; तुम ठीक हो रही हो; घबराने की कोई बात नहीं; देखो, मैं तुम्हारे पास आगया हूं।" किन्तु मनोरमा की तीव्र तन्द्रा न उसके हिलाने से टूटी और न उसकी तुतला से कांपती हुई आवाज़ से।

तब वह वहां से कुछ हटकर खड़ा हो गया। दो लड़के उसके पास आगये और सहमे से वहाँ ठिठक रहे। उनमें से एक ने पूछा, "क्यों बाबू जी, अभी माता जी होश में आई थीं? यह दीनू कहता था।"

उसने उसी दुख से काँपती सी आवाज़ में कहा, "हाँ दीनू! मनोरमा अभी चारपाई पर बैठ भी गई थी; लेकिन शायद उसका दिमाग़ खराब हो गया है। उसको शारारिक चोट कम मालूम होती है और मानसिक आघात गहरा। यदि शारीरिक चोट अधिक होती तो वह उठकर बैठ नहीं सकती थी। उसने चारपाई पर बैठकर जिस प्रकार देखा उससे तो ऐसा ही मालूम होता है कि वह पागल हो गई है; फिर भी उसको होश में लाने की कोशिश करो। मैं तो तीन दिन से इसके पास बैठा हूं। डाक्टर रोज़ आता है और चला जाता है। मेरे पास यहां जो कुछ था वह ख़त्म हो चुका। अभी पटना से डाक और तार का सिलसिला जुड़ा नहीं। मेरा ख़याल है कि मेरा तार पटना पहुँचा ही नहीं, अन्यथा घर से मोटर लेकर कोई न कोई यहां अवश्य आजाता। वे लोग भी तो हमको ढूँढने में लगे होंगे। ईश्वर की कृपा है, जिसने हमको इस किनारे पर तो लगा दिया और तुम लोगों को संयोग से उस समय वहां पहुंचा दिया जब हम दोनों बिल्कुल बेहोश उस नाव के तख्ते पर बहे जाते थे। हमको याद है कि हमारी नाव किसी घाट से टकराकर उलट गई थी और टूट गई थी। जब हम पानी में पड़े हुए इधर उधर हाथ फेंक रहे थे तब वह तख्ता हमारे हाथों में पड़ गया था और हम उस पर चढ़ गए थे। उसके बाद शायद हम दोनों बेहोश हो गए और यहां आने तक उसी अवस्था में रहे। जो कुछ हुआ उसका स्मरण करके मेरा हृदय भय से अब भी कांप जाता है।"

दीनू ने पूछा, "क्यों रे रामू, तू ही पटना क्यों नहीं चला जाता? बाबू जी के घर जाकर वहाँ से मोटर लिवा ला।"

रामू ने कहा, "हां, मैं तो तैयार हूँ; किन्तु लोग तो कहते हैं कि जमीन फट जाने से मीलों तक पानी भरा है। भूचाल में जमीन फट गई है और

उसमें से गन्धक मिला हुआ गर्म पानी निकल-निकलकर अभी तक बाहर बह रहा है। जहां रास्ता था वहां अब नदी बह रही है और जहां पहले नदी थी वहां अब बालू के ऊंचे ऊंचे टीले निकल आए हैं। इस इलाके में कितने ही गांव पानी में डूब गए हैं। उनके आदमी और पशु नावों के द्वारा बचाए जा रहे हैं और जो लोग जंगलों में पानी से घिरे हुए ऊंचे टापुओं पर जा पड़े हैं उनको हवाई जहाज़ खाना और कपड़ा डाल कर सहायता पहुंचा रहे हैं। उस भयंकर शीतकाल में प्रकृति ने उन पर बड़ा क्रोध दिखाया है।

जो व्यक्ति रामू और दीनू से बातें कर रहा था और मनोरमा की हालत के बारे में इतना चिन्तित था उसका नाम अवधबिहारीलाल था। वह मनोरमा का पति था। जो मनोरमा के साथ ही बेहोशी की अवस्था में गंगा की धार में बह आया था और इस कुटिया के पास किनारे से आ लगा था। रामू और दीनू कुटिया के पास अपनी गाएं और भैंसें चरा रहे थे। उन्होंने जब देखा कि एक स्त्री और एक पुरुष की लाशें किनारे से आ लगी हैं, और उनके शरीरों पर उनके कपड़े भी दिखाई पड़ रहे हैं तो उनको बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने देखा कि स्त्री सोने के आभूषण भी पहिने है। उन्होंने पानी में घुसकर लाशों को किनारे पर खींच लिया और आश्चर्य, लोभ और भय की दृष्टि से उनकी भली प्रकार जांच की। उन्होंने पहिले पुरुष की लाश की परीक्षा की। उसका शरीर अभी गर्म था। उन्होंने उसकी नाक के पास हाथ रखकर देखा। उसकी सांस अभी चल रही थी। उनमें से एक चिल्ला उठा, 'अरे! यह आदमी तो अभी ज़िन्दा है।' उसने उसको पानी से बाहर खींचकर बालू में डाल दिया। दूसरे ने स्त्री की आंखें खोलकर देखीं और उन पर हाथ फेरा। उसको उसकी पुतलियां फिरती हुई प्रतीत हुईं। उसने भी चिल्लाकर कहा, "यह स्त्री भी तो अभी बच सकती है। लो, इसको भी किनारे पर लो। किसी बड़े घर के हैं ये दोनों। देखो तो कैसे मूल्यवान वस्त्र और आभूषण पहिने हैं ये।"

इन लोगों की साल-संभाल से पुरुष ने कुछ ही देर में आंखें खोल

दीं और स्त्री भी कुछ हिलने लगी। उन्होंने उनको पास में बनी हुई साधु रामदास की कुटिया में पहुँचा दिया और उसको सब बातें बताकर सायंकाल को अपने गांव समस्तीपुर चले गए जो वहां से एक मील से कुछ ही ज्यादा दूर था।

साधु रामदास ने दोनों पीड़ितों की रात भर परिचर्या की। उसने गाय का दूध गर्म करके उनके मुंह में डाला। पुरुष में कुछ शक्ति आई और वह बोलने लगा। उसने अपना परिचय दिया और दुर्घटना का सब हाल बताया। उसने साधु का बड़ा उपकार माना और उससे पूछा कि वे उसकी कुटिया में किस प्रकार पहुंचे।

साधु रामदास ने कहा, "यहां दो लड़के, जो पास के समस्तीपुर गांव में रहते हैं, अपनी गाएं और भैंसें चरा रहे थे। उन्होंने देखा कि आप दोनों बेहोश अवस्था में किनारे से लग गए हैं। उन्होंने आप दोनों में प्राणों का संचार देखकर आपको पानी से निकाल लिया और बहुत देर तक धूप में किनारे पर डाले रखने और आपके कपड़े सुखाने के बाद वे आपको यहां इस कुटिया में पहुंचा गए। आप दोनों के प्राण रामू और दीनू ने ही बचाए हैं।"

साधु रामदास की इस बात को सुनकर बाबू अवधबिहारीलाल को स्मरण आया कि उन्होंने, जब वे किनारे पर धूप में पड़े थे और जब कुछ होश आने पर उनकी आंखें खुल गई थीं, तब कदाचित् दो लड़कों को अपने पास खड़ा देखा भी था; किन्तु तब उनमें बोलने की अधिक शक्ति न थी, इसलिए उन्होंने उन लड़कों से कुछ नहीं पूछा था। दूसरे दिन जब वे लड़के फिर अपनी गाएं और भैंसें चराने के लिए आए तो उनके साथ गांव के कितने ही पुरुष और लड़के अवधबिहारीलाल और मनोरमा को देखने के लिये आए। उनको अवधबिहारीलाल बातें करने योग्य अवस्था में मिले; किन्तु मनोरमा की तन्द्रा तब तक न टूटी थी। अन्त में उन्होंने बाहर से डाक्टर को बुलाया और उसकी फीस और लाने के खर्च के लिये मनोरमा के कुछ आभूषण शहर में बेचने को ले लिए।

इस गांव से तीन कोस दूर मायापुर कस्बा था। उसमें डाक्टर था; किन्तु वह ऐसा डाक्टर था जिसके पास सामान्य औषधियां ही रहती थीं और वे भी इतनी अल्प मात्रा में थीं कि कभी-कभी समाप्त भी हो जाती थीं। इस अवस्था में मनोरमा की चिकित्सा वह क्या कर सकता था ! फिर भी उसने कुछ ऐसी दवाएं दीं जिनसे मनोरमा के दुर्बल शरीर में कुछ गर्मी आई और उसको चेतनता-लाभ करने में सहायता मिली।

मनोरमा को इस कुटिया में आए आज तीसरा दिन था। अवधबिहारीलाल जब बहुत दुखित हो रहे थे और रामू और दीनू से बातें कर रहे थे तब उन्होंने देखा कि मनोरमा ने अपना हाथ हिलाया। वे उसके पास आए और उन्होंने मनोरमा को आवाज़ दी। मनोरमा ने उनकी आवाज़ सुनकर आंखें खोलने का प्रयत्न किया; किन्तु बड़ी कठिनता से बीच में झंप-झंपकर उसकी आंखें खुलीं। उसने देखा कि उसके पास ही अवधबिहारीलाल भी बैठे हैं। उन्हें देखकर उसको कुछ धीरज सा मिलता प्रतीत हुआ। अवधबिहारीलाल ने मनोरमा को धीरे से कहा, "घबराओ नहीं, सब ठीक है, मैं यहां हूं।"

रामू ने उपलों की आग कुछ तेज़ कर दी थी। साधु रामदास समस्तीपुर गांव से भिक्षा लेकर आगये थे। अब दोपहर था। जाड़ा कम हो गया था। सूरज की किरणें तेज़ हो गई थीं; किन्तु साधु रामदास की कुटिया में अधिक प्रकाश न था। कुटिया का द्वार पूर्व को था। उसमें प्रातःकाल ही कुछ समय तक धूप रहती थी, जब सूरज की किरणें तिरछी होकर उसमें घुस जाती थीं तो उसमें से अंधेरे को निकाल बाहर करती थीं। दोपहर के समय वे कठिनता से उसकी दहेलीज़ के पास पहुंच पाती थीं। उनके कुटिया से बाहर होते ही उसमें फिर अंधेरा हो जाता और साथ ही कुछ ठंडक भी। किन्तु आज तो परात में रखी हुई उपलों की आग उसकी ठंडक को भगा रही थी। अंगारों की गर्मी से कुटिया की हवा गर्म हो गई थी।

अवधबिहारीलाल ने मनोरमा की आंखों में सान्त्वना की दृष्टि डालते

हुए पूछा, "अब तबियत कैसी है ?"

मनोरमा ने कहा, "ठीक होरही हूँ ।" उसकी आवाज़ अब भी कमज़ोर थी और उसमें अब भी भय की कुछ मात्रा उपस्थित थी ।

अवधबिहारीलाल ने मनोरमा को धीरे-धीरे बताया कि वे दोनों ही नाव उलट जाने और टूट जाने के बाद एक तख्ते पर गंगा में बह आये थे । उनको यहां इस किनारे पर इन दो युवकों ने पानी से बाहर निकाला, साधु रामदास ने उनकी सेवा की और गांव के लोगों ने भी उनकी सब प्रकार से सहायता की । अन्त में वे अब इस योग्य थे कि वे ईश्वर को, रामू, दीनू और रामदास को और गांव के सब लोगों को धन्यवाद दे सकते थे ।

मनोरमा चुप थी । उसने कुछ थकावट सी अनुभव की और अपनी आंखें फिर बन्द कर लीं । ऐसा प्रतीत होता था मानो वह सो जाना चाहती हो ।

अवधबिहारीलाल ने पूछा, "कुछ भूख है ? गर्म दूध तैयार है ।"

मनोरमा ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाकर कहा, "हां ।"

अवधबिहारीलाल ने उसको दूध पिलाया, किन्तु तीन-चार घूंट पीकर ही मनोरमा ने हाथ से उनको दूध पिलाने से रोक दिया और कहा, "बस, अब अधिक इच्छा नहीं ।"

इसके बाद मनोरमा सो गई; लेकिन अब वह कुछ स्वस्थ थी, अब उसकी भाव-भंगी ऐसी न थी जिससे यह भासित होता हो कि उसको कोई वेदना हो रही है । अवधबिहारीलाल को यह देखकर संतोष हुआ । उन्होंने एक आराम की सांस ली और मनोरमा को चादर ओढ़ाकर उसके पास ही दूसरी चारपाई पर बैठ गए ।

मनोरमा को इस प्रकार कई दिन बीत गए । उसकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई और अब वह पटना जाने का अनुरोध करने लगी । एक दिन प्रातःकाल नौ बजे के लगभग वह दुखी होकर अवधबिहारीलाल को यह कह रही थी, "अब तो मेरा मन यहां इस जंगली कुटिया में लगता नहीं ।

अब तो मैं पटना जाने के लिये उत्सुक हो रही हूं। पता नहीं विनोद, सुशील और शान्ता का क्या हुआ होगा? उनकी भी तो खैर-खबर कुछ लेनी चाहिए! आप तो अभी चलने का नाम ही नहीं लेते।"

अवधबिहारीलाल कह रहे थे, "मैंने घर को तार दिया है और मोटर मंगाई है। मालूम होता है कि तार अभी तक घर नहीं पहुँचा, अन्यथा घर से मोटर अवश्य आजाती। लोग कहते हैं कि भूचाल से तार की लाइनें और सड़कें टूट गई हैं। ऐसी अवस्था में मैं इसके अतिरिक्त और क्या कर सकता हूं कि यहां धैर्यपूर्वक तुम्हारी परिचर्या करता रहूं। जब मोटर आजाएगी तभी तो हम पटना को चल सकेंगे। इससे पहिले क्या किया जा सकता है? हम पटना से कुल ६० मील दूर हैं; किन्तु फिर भी इन ६० मीलों में भूचाल ने पृथ्वी के धरातल को इतना अस्त-व्यस्त कर दिया है कि अभी तक किराये की गाड़ियां यहां से पटना जाने का साहस नहीं करतीं। रामू मायापुर गया था। वहां उसने पूरी कोशिश की कि कोई अपनी मोटर हम दोनों को पटना जाने के लिये दे दे; लेकिन दूना और तिगुना किराया देने पर भी कोई अपनी मोटर देने के लिये रज़ामन्द नहीं हुआ। रेलगाड़ियां तो अभी तक बन्द हैं। छतरपुर स्टेशन के पास रेल की लाइन सांप की भांति गुँजलक मार गई है। कहीं रेल की पटरी दस गज़ ऊंची टंगी रह गई है, और कहीं वह बीस गज ज़मीन में गहरी धंस गई है। कहीं वह एक तरफ़ को झुक गई है तो कहीं दूसरी तरफ़ को। इस अवस्था में उस पर अभी महीनों तक गाड़ियां नहीं चल सकतीं। रेलवे के अफसरों का कहना है कि उनको इस इलाके में रेल की लाइन फिर से बिछानी पड़ेगी। सड़क का भी यही हाल है। उसमें कई जगह बीस-बीस गज़ चौड़ी दरारें फट गई हैं, और कहीं वह सौ-सौ गज़ दूर तक अपनी सतह से नीचे बैठ गई हैं। ऐसी स्थिति में इसको फिर से बनाने की आवश्यकता है। समझ में नहीं आता कि जब रास्ते की यह दशा है तब पटना कैसे पहुँचा जा सकता है।"

जब दम्पति इस असमंजस में पड़े थे कि पटना पहुंचने के लिये किस

उपाय का अवलम्बन किया जाए तब बाहर कुटिया से कुछ दूर पर कोई युवक साधु रामदास से पूछ रहा था, "क्या यहां पटना के कोई रईस ठहरे हैं? उनके साथ एक स्त्री भी है। वे अभी कुछ दिन पहिले भूचाल में नाव उलट जाने से गंगा में बह आए थे। हम उनका तार पाकर पटना से समस्तीपुर गांव में पहुंचे थे। वहां से पता लगा कि वे लोग गंगा के किनारे साधु रामदास की कुटिया में हैं।"

साधु रामदास कह रहे थे, "हां, आइए। वे लोग यहां ही हैं। आप क्या पटना से आरहे हैं? आप उनके क्या लगते हैं?" और भी न जाने क्या क्या बातें साधु रामदास ने एक ही सांस में उससे पूछ डालीं।

कान में परिचित शब्द पड़ने पर अवधबिहारीलाल भी कुटिया से बाहर निकल आए। उन्होंने देखा कि उनकी आंखों के सामने केवल कुछ गज की दूरी पर ही उनका छोटा लड़का सुशील खड़ा था। उसके कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे थे, मुंह सूख रहा था, चेहरे पर उदासी की काली छाया थी और बाल रूखे और बिखरे हुए थे। उसकी आवाज भर्रा रही थी मानो उसको रोना आरहा हो। अचानक उसकी दृष्टि कुटिया के द्वार पर खड़े हुए अवधबिहारीलाल पर पड़ी। वह दौड़ कर उनके पैरों से लिपट गया और फूट-फूटकर रोने लगा। अवधबिहारीलाल का हृदय भी भर आया। उन्होंने हृदय का बांध बहुत ऊंचा किया, किन्तु फिर भी उसके ऊपर से दुःख के आंसुओं की बूंदों के रूप में बह निकला। सुशील की आवाज को सुनकर कुटिया में से मनोरमा भी निकल आई। उसने सुशील को गोद में भर लिया और फूट-फूटकर रोने लगी।

धीरे-धीरे अवधबिहारीलाल और मनोरमा का रोना रुक गया; किन्तु सुशील के आंसू थमते ही न थे। अवधबिहारीलाल और मनोरमा पूछ रहे थे, 'विनोद कहां है? शान्ता कहां है?' किन्तु सुशील का गला बन्द था। वह अपनी मां और अपने पिता के इन प्रश्नों का उत्तर आंसुओं की मूक भाषा में दे रहा था।

अन्त में उसने कहा, "हमारा मकान भूचाल में बैठ गया और विनोद भैया और शान्ता उसी में दब गए। मैं भी उन्हीं के साथ दब गया था, किन्तु जब हमारे घर का मलवा कांग्रेस के स्वयंसेवकों ने हटाया तब मैं बेहोश अवस्था में निकला और वे दोनों मृत अवस्था में। मैं कई दिन में होश में आया हूँ और ठीक हुआ हूं। अस्पताल में पहिले तो मुझे कहा गया कि आप दोनों और विनोद तथा शान्ता अच्छे हैं; किन्तु जब मैंने आप सबको देखने के लिए बहुत ही हठ किया तब उन्होंने मुझे कहा कि विनोद और शान्ता का मकान में दब जाने से प्राणान्त हो गया और आप दोनों का उनको कुछ पता न था। इसके बाद कल उनको आपका तार मिला। वह तार मुझको तुरन्त दे दिया गया। तब मैं मोटर लेकर यहां आया हूं। मोटर गांव में खड़ी है। वह यहां तक आ नहीं सकती थी।"

अपने बड़े लड़के और लड़की की मृत्यु का हृदयविदारक समाचार सुनकर अवधबिहारीलाल और मनोरमा बहुत देर तक रोते रहे। उनको दु:ख था कि गंगा में बेहोश होकर बह जाने पर भी वे क्यों बच गए और घर में निश्चिन्त बैठे हुए उनके गृहस्थ के शृंगार विनोद और शान्ता क्यों मर गए; किन्तु जो कुछ हुआ वह तो मनुष्य की कृति नहीं थी। मनुष्य विवेक रखता है, इसलिए वह किसी के साथ पक्षपात और किसी के साथ अन्याय कर सकता है; किन्तु प्रकृति तो विवेकहीन है। वह न किसी के साथ पक्षपात कर सकती है और न किसी के साथ अन्याय। भूचाल का धक्का लगा, पृथ्वी हिल गई, मकान ढह गए, हजारों आदमी काल के गाल में चले गए, लाखों और करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई और करोड़ों प्राणधारियों को शारीरिक और मानसिक आघात पहुंचा। यह सब प्राकृतिक घटना थी जिसमें विवेक का कोई हाथ नहीं था। इस घटना का असर उसके प्रभाव के क्षेत्र में स्थित सभी प्राणियों पर पड़ा; उसमें जो असमानता थी वह भी घटना की भांति ही संयोग-जनित ही थी। उसके लिए किसी को भी महत्व या दोष देना ठीक नहीं था।

---

(२)

समस्तीपुर में आकर अवधबिहारीलाल और मनोरमा मोटर में बैठ गए और मोटर चल दी; किन्तु कुछ दूर जाने पर अवध-बिहारीलाल ने मोटर फिर रुकवाई। उन्होंने पीछे को देखा तो रामू और दीनू चिल्लाते आते थे, 'बाबू जी, तनिक ठहरिए तो। आपसे कुछ जरूरी काम है।' उनके पीछे साधु रामदास भी दौड़े आरहे थे। अवध-बिहारीलाल परेशान थे कि आखिर मामला क्या है? वे झट से नीचे उतर आए, और चिन्तात्मक उतावली के साथ उनकी ओर देखने लगे। रामू, दीनू और साधु रामदास तीनों अब मोटर के पास आगए थे। रामू के पास एक कपड़े में कुछ लिपटा था। उसने उसे अवधबिहारी-लाल के हाथों में देकर कहा, "बाबू जी, आप तो फ़ौरन चल दिए। हमको इत्तिला भी नहीं की। बाबू जी, हमने क्या कुसूर किया था सरकार, जो हमको इतनी जल्दी भुला दिया। सच कहते हैं बाबू जी, आपकी याद हमको बहुत दिनों तक आएगी। आप जैसे सत्पुरुष भला हम ग़रीबों की झोंपड़ियों में कब-कब आते हैं। बाबू जी, यह रूखी-सूखी शाक-पत्ती साथ में लेते जाइए। भैया खा लेंगे और आपको भी भूख लगेगी ही। भला, ६० मील का सफ़र जल्दी ही थोड़े पूरा हो जाएगा।"

बाबू अवधबिहारीलाल चुप थे। उनको आश्चर्य हो रहा था उन देहाती युवकों का प्रेम देखकर; उसमें मनुष्यता थी। अवधबिहारीलाल अनुभव कर रहे थे कि देहाती और शहरियों में क्या भेद होता है। वह भेद देहाती और शहरी संस्कृतियों का ही भेद था। एक में हृदय की

निर्मलता थी और दूसरे में व्यवहार की निपुणता। एक में निर्धनता में भी सेवा-भाव था और दूसरे में थी दूसरों से सेवा लेने की अधिकार-भावना। एक में आत्मीयता थी और वह उनको धूल में पैदल भगाए लाती थी और दूसरे में अपना काम निकाल ने की वृत्ति थी; जो उसको अपना काम पूरा होने के बाद मोटर में उड़ाए लिए जा रही थी।

दीनू ने कहा, "बाबू जी, मेरी मां ने सुशील की मां के लिए यह दिया है।" यह कहकर उसने भी अपनी पोटली बाबू अवधबिहारीलाल के हाथ में रख दी।

बाबू अवधबिहारीलाल ने दीनू से पूछा,' भाई, इसमें आखिर है क्या चीज़? इसमें तो इतना बोझ है!" यह कहकर उन्होंने उसको खोल डाला। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि उसमें मनोरमा के सोने के ज़ेवर थे।

उन्होंने तुरन्त दीनू से पूछा, "दीनू, ये तो मैंने बेच दिए थे। तुम इनको वापिस क्यों ले आए?"

दीनू बोला, "बाबू जी, मां ने कहा कि ये चीजें सैकड़ों रुपए की हैं। परमात्मा किसी पर ऐसी मुसीबत न डाले। हमें ऐसी मुसीबत से फ़ायदा नहीं उठाना। हमारे एक सौ पच्चीस रुपए खर्च हुए हैं, सो मां ने यह कहा है कि बाबू जी अपने घर के भले मानुष हैं, धनी हैं, उनके घर में क्या नहीं है, वे हमारे रुपए पटना जाकर भेज देंगे। तू ये चीजें उनको दे आ।"

यह कहकर दीनू चुप होगया। कुछ देर बाद उसने हाथ जोड़े और फिर कहा, "बाबू जी, ये चीजें ले जाइए। मेरी मां जो कुछ कहती है, मैं वही करता हूं। उसने कहा है कि मैं ये चीज़ें आपको दे दूं और फिर वापिस न लूं, इसलिए आप इनको ले जाइए।"

अवधबिहारीलाल सोचने लगे, "ये लोग कितने सीधे, निश्छल, मनुष्य का विश्वास करने वाले और सतयुगी जीव हैं, जिनको रुपये से ममता नहीं। अगर इनकी जगह पर मैं होता तो? तो निश्चय ही मैं

दूसरी ही प्रकार का बर्ताव करता। मैंने तो शहर में अपने साथी मनुष्य का इतना विश्वास कभी नहीं किया। कितना है इन लोगों का प्रेम, कितनी है इनकी निस्वार्थता और कितनी है इनकी सेवा-भावना। इतने दिनों तक इन लोगों ने हम दोनों की सेवा अपने परिवार के लोगों की भांति की और बदले में मुझसे कभी कुछ भी लेने का लोभ इनको नहीं हुआ। अब ये मुझे इस भलमनसाहत के भार से दबाने और आए हैं। मेरे ऊपर तो उसी कृतज्ञता का भार काफी था। उन्होंने चीजों को अपने हाथ में उठाया और दीनू की ओर करके कहा, "दीनू ये चीजें अब मैं न लूँगा। तुम लोगों ने हम लोगों की जो सेवा की और हमारे प्राण बचाए, उस सबके बदले में क्या तुम ये चीजें अपने पास नहीं रख सकते? इनमें कुछ ही रुपया तो तुम्हारे खर्च से बढ़ेगा।"

दीनू ने कहा, "ना, यह नहीं होगा। मैं कुछ नहीं लूँगा, बाबू जी! मेरी मां तो मुझसे बहुत नाराज़ होगी। उसने तो ये चीजें पहिले इसलिये रख ली थीं कि आप जंगल में थे और वहां चोर उचक्कों का खतरा था। अब आप अपने घर जारहे हैं, इसलिए अब तो इनका साथ लेजाने में कोई हर्ज नहीं है।"

अवधबिहारीलाल ने देखा कि इस बहस से कोई लाभ नहीं होगा। ये लोग अपनी बात पर पक्के रहेंगे और अन्त में उनको स्वयं को ही हार मंजूर करनी पड़ेगी। यह सोचकर उन्होंने सब चीजों को उनसे ले लिया और उनको वापिस करके वहां से फिर मोटर आगे को बढ़ा दी।

बाबू अवधबिहारीलाल पटना के नामी वकीलों में से थे। उनका व्यवसाय बहुत अच्छा चल रहा था। उनकी मासिक आय लगभग दस हज़ार रुपए थी। इसके अतिरिक्त उनकी अपनी जायदाद और ज़मींदारी की आमदनी भी थी। उनका परिवार भी बहुत बड़ा था।

पहले उसमें से इनके माता-पिता निकल गये। उन्होंने पूरी आयु पाकर अपने शरीर-वसन त्याग दिये। सुशील से छोटी एक लड़की मीरा भूचाल से पहिले गंगा घाट पर से गायब होगई थी, जब सारा परिवार गंगा-

स्नान करने गया था। पता नहीं उसका क्या हुआ ? उसके लिये गंगा में जाल डाले गये, क्योंकि ख्याल था कि सम्भव है वह नदी में डूब गई हो, लेकिन उसका कहीं पता नहीं चला। यह लड़की अवधबिहारीलाल के परिवार में सबसे अधिक सुन्दर, सुशील और प्रतिभा-सम्पन्न दिखाई देती थी। इसलिये समस्त परिवार का उस पर स्नेह था। उसके लिये उनके परिवार में बहुत शोक मनाया गया; लेकिन वह सब व्यर्थ था। कौन कह सकता था कि भादों की गंगा की वेगवती धारा उसे किस क्षण और कहा बहा ले गई ? वह जीवित बची या किसी जल-जन्तु का भक्ष्य हुई या जल में डूबकर उसका भौतिक जीवन समाप्त होगया, यह कोई न जानता था।

अब भूचाल आया। एक लड़का और एक लड़की उसकी भेंट हो गए। इससे उनकी आत्मा को आन्तरिक क्लेश हुआ और वह जब दूर हुआ तो उन पर विरक्ति की छाया छोड़ गया। व्यवसाय में उनका मन अब लगता न था। उनको उससे उपेक्षा हो गई थी। वे सोचते अब कमाऊं तो किसके लिए कमाऊं ? एक लड़का है। उसकी ज़िन्दगी के लिए इतनी सम्पत्ति पड़ी है। मुझे अब अपनी कोई चिन्ता नहीं है, फिर मैं अधिक खटपट करूं तो क्यों करूं ? किसके लिए मैं इतना परिश्रम उठाऊं ? जो कुछ साधारण तौर पर होरहा है वह काफी है।"

अवधबिहारीलाल की आयु लगभग पैंतालीस या छियालीस वर्ष की होगी। अभी उनका यौवन ढलना आरम्भ हुआ था। वे प्रौढ़ावस्था में थे। अब मनोरमा उनको आकर्षित न कर पाती थी, और न ही उसके बच्चे ही होते थे। अवधबिहारीलाल को पहिले उसमें यह कमी अनुभव हुई और उसके बाद वह सघन चिन्ता के रूप में बदलने लगी। सुशील का विवाह पक्का हो गया था। अन्त में एक दिन आया जब उसकी रस्म भी पूरी कर दी गई; किन्तु उसमें उनको अधिक रस नहीं आया। पता नहीं उनको क्या होगया था ? स्वयं उनको अपने इस मानसिक परिवर्तन पर कई बार आश्चर्य होता। मनोरमा भी उदास रहती। वह अपने पति का

कृत्य पूरे करने का अधिकार नहीं रखती। उसके लिए सुहागिनें ही उपयुक्त समझी जाती हैं। इस प्रकार विधवा समाज की दृष्टि में अभिशाप रूप है, अमांगलिक है और उसके साथ व्यवहार लगभग उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार का व्यवहार अछूत के साथ किया जाता है।

किन्तु अवधबिहारीलाल इस बारे में समाज की रूढ़ियों के पृष्ठ-पोषक नहीं थे। उनके परिवार में केशिनी के साथ विधवा का सा व्यवहार नहीं किया जाता था और केशिनी बाहर कहीं ज्यादा आती-जाती भी न थी, किन्तु फिर भी जब दूसरे लोगों के घरों में शादी-विवाह होते तब उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता था जैसा दूसरी विधवाओं के साथ होता है। स्वयं सुशील के विवाह में उसके साथ इस सम्बन्ध में अन्य घरों के समान ही व्यवहार किया गया था। केशिनी को भी अन्य सभी विधवाओं के समान इस प्रकार के व्यवहार से आघात पहुँचा। उसने अनुभव किया कि वह अब समाज की दृष्टि में गिर गई है। अब उसको वह स्थान प्राप्त नहीं है जो उसको सुहागिन होने की अवस्था में प्राप्त था। इससे वह हर शुभ कार्य में उत्साह के साथ आगे बढ़कर भाग लेने से झिझकती थी। जब वह कहीं बाहर जाती तब भी वह यह झिझक साथ लेकर बाहर जाती थी कि कहीं उसके अशुभ दर्शन से किसी का शकुन न बिगड़ जाए।

शीला केशिनी को इस दयनीय दशा में देखकर उसकी ओर आकर्षित हुई और उसकी दीनता तथा नम्रता के वशीभूत होकर उसको अपनी सहानुभूति दे बैठी। उसके बाद शीला और केशिनी में घनिष्ठता हो गई और जब शीला को अपने पति का प्रेम पूरा न मिला तब वह घनिष्ठता और भी अधिक बढ़ गई।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री अपने जैसे किसी प्राणी का साथ चाहता है। यदि वह उसको प्राप्त न हो तो उसको बहुत बड़ी वेदना होती है। इसी कारण जेलों में काल कोठरी या एकान्तवास की सज़ा बहुत दुखदायी होती है। राजनैतिक बन्दी,

जिनको अलग-अलग फोड़कर रखने में सरकारें अपना हित समझती हैं, इसीलिए साथ-साथ रहने की मांग करते हैं। कहते हैं कि रूस में क्रेमलिन के किले में ज़ारकालीन जेल में एकान्त बन्दीगृहों में पड़े-पड़े मानसिक विकलता से कितने ही विद्वान और प्रभावशाली राजनीतिज्ञ पागल या अर्द्ध-विक्षिप्त होगए थे; किन्तु हिन्दू घरों में स्त्रियों को काफ़ी एकान्त-वास करना पड़ता है। उनको समाज में हिलने-मिलने की बहुत कम अनुमति प्राप्त होती है। वे अपने आप चाहे जिस व्यक्ति से मिलने-जुलने या बातचीत करने के लिए स्वतन्त्र नहीं होतीं। शीला अपने पति के घर में इसी स्थिति में तो थी। निरन्तर एकान्तवास को वह भी सहन नहीं कर सकती थी; इसलिए उसने केशिनी का साथ प्राप्त किया था।

विधवाओं की स्वतन्त्रता तो सुहागिनों की अपेक्षा भी कम हो जाती है। उनको राग-रंगों और उत्सवों में जाने की बहुत ही कम स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार विधवाएं हिन्दू समाज की निरपराध बन्दिनियां हैं जिनको लामियाद एकान्तवास की सज़ा दी हुई होती है। ऐसी बन्दिनियों से उन नई उम्र की वधुओं की सहानुभूति होना स्वाभाविक है, जिनको उनकी विधवा बहिनों की अपेक्षा समाज में हिलने-मिलने और बातचीत करने के विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। शीला की केशिनी के साथ जो गहरी सहानुभूति होगई थी इसका कारण यही था।

मनोरमा केशिनी को कई बातों में सलाहकार के रूप में समझती थी। इसका कारण यह था कि विधवा केशिनी अपनी उच्छृंखलता खोकर कुछ गम्भीर होगई थी। विधवा यदि तरुणी भी हो तो उसको प्रौढ़ा की भांति, बल्कि कई बार तो उससे भी अधिक, गम्भीरता की जरूरत होती है। और यह जरूरत भी क्या होती है? समाज यह जरूरी समझता है कि विधवा गम्भीर रहे। वह यदि हंसे तो लोग उसको निर्लज्ज कहेंगे। यदि वह खूब खाएगी, पिएगी और स्वस्थ रहेगी तो वे उसको कहेंगे कि इसको तो रंडापा चढ़ा है या और भी अधिक भद्दे शब्दों का इस्तैमाल करेंगे तो उसको कहेंगे कि वह सांड होगई है। इस प्रकार निर्दय और हृदयहीन

समाज विधवा के स्त्रीत्व का अपमान करने से कभी नहीं चूकता। वह यह अनुभव ही नहीं करता कि आख़िर उसके सीने में भी एक मांस-पिंड, जिसे हृदय कहते हैं, धड़कता है। उसको भी संसार के राग-रंग खींच सकते हैं और उसको भी अन्य स्त्रियों तथा पुरुषों की भांति सांसारिक सुखों एवं भोगों की इच्छा हो सकती है। लोग उसको तपस्विनी के रूप में क्षीण-काय, उदास और विरक्त देखना चाहते हैं और उनकी आंखें उसको बहुत समय से इसी रूप में देखने की अभ्यस्त हैं। जब वे यह देखते हैं कि कोई विधवा इससे भिन्न आदर्श उपस्थित करती है तो वे उसकी निन्दा करते हैं और उसको पतिता तथा कुमार्ग-गामिनी बताते हैं। केशिनी लोगों की दृष्टि में ठीक प्रकार की विधवा थी, इसलिए वह क्षीण से क्षीणतर होगई थी, उसका सौन्दर्य कम होगया था, उसके मुख का हास्य उदासी में बदल गया था और वह विरक्त सी हो गई थी। मनोरमा उसको अब चंचल और अल्हड़ युवती नहीं समझती थी, बल्कि अपनी श्रेणी की स्थिर और प्रौढ़ स्त्री ख़याल करती थी। फिर केशिनी उसकी उदासी भी तो कुछ दूर करती थी। मनोरमा अपने पति के मन से उतरती जाती थी, इस स्थिति में मनोरमा को भी तो किसी ऐसी संगिनी की जरूरत थी जिससे वह अपने हृदय के भाव कह सकती। इस प्रकार केशिनी की ओर मनोरमा का आकर्षण भी बढ़ गया था।

संक्षेप में अवधबिहारीलाल के परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध इसी प्रकार के थे।

घटनाओं के प्रभाव, मनोरमा के प्रति आकर्षण में ह्रास, स्वभावगत चारित्रिक शिथिलता और विलास प्रियता अवधबिहारीलाल को बहुत दिन से एक दूसरे ही मार्ग की ओर ले जारहे थे जिस पर सम्पन्न परिवारों के लोग बड़ी आयु में पहुँचने पर प्रायः प्रवृत्त होजाते हैं। विलासी धनिकों की अवस्था ढलने पर भी अविकसित यौवना किशोरियों का पाणि-ग्रहण करना कोई असाधारण घटना नहीं है। यह इतना साधारण हो गया है कि समाज उसका अभ्यस्त सा होगया है।

अवधविहारीलाल ऐसे ही सामान्य व्यक्ति थे। उनके पैरों के नीचे से सामान्य नैतिक भूमि बहुत दिनों से भोगेच्छा की तीव्रधारा से कटती जा रही थी। अन्त में अवस्था यह आई कि उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया।

नये विवाह के उपरान्त उनकी मानसिक अवस्था में सहसा परिवर्तन होगया। वे निवृत्ति से एक बार फिर प्रवृत्ति की ओर बढ़े। विवाह प्रवृत्ति-मार्ग तो है ही। उसका निवृत्ति से मेल नहीं खाता। स्त्री पुरुष के कन्धों पर चढ़कर उसे अपनी इच्छा के चाबुक से हांकती है और तारीफ़ यह है कि कुशल सारथी जैसे घोड़े को चाबुक मारने पर भी बिगड़ने नहीं देता वैसे ही वह भी उसे उन्मन नहीं होने देती।

अवधबिहारीलाल का उत्साह अब वकालत में बढ़ गया था, जायदाद के इन्तजाम में उनको ज्यादा दिलचस्पी होगई थी और स्वयं अपना जीवन उनको अधिक सरस मालूम देने लगा था। नई पत्नी उनके ध्यान का केन्द्र बन गई थी और उसकी खातिर उनका यह परिवर्तन था।

नई स्थिति में मनोरमा कटी डाली की भांति सूखती जा रही थी। उसने अनुमान किया कि इस घर में केशिनी पति विहीना विधवा है, किन्तु वह तो सधवा होते हुए भी विधवा है। फिर भी केशिनी और मनोरमा में बड़ा अन्तर था। मनोरमा को पति-प्रेम के अतिरिक्त सुहागिनी स्त्रियों की भांति सब सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। वह समाज की दृष्टि में पतित नहीं थी, और न वह समाज में अभिशाप रूप समझी जाती थी। वह अब भी घर की स्वामिनी थी; किन्तु दूसरी स्वामिनी के आजाने से उसको ईर्ष्या होगई थी। वह सौतिया डाह से जली जाती थी। उसकी दृष्टि में उसकी सौत आदर की पात्री नहीं थी। वह उसको डकैत की भांति अपराधिनी समझती थी जो उसका और उसके बेटे का सामाजिक अधिकार छीनने के लिए आई थी। जब रम्भा उसके सामने आती तो वह उससे अपना मुँह मोड़ लेती और जो कुछ वह पूछती उसका उत्तर तिरस्कारपूर्वक देती; किन्तु रम्भा फिर भी कुछ बुरा न मानती, क्योंकि वह अपनी स्थिति को समझती थी। वह यह अनुभव

करती थी कि उसने मनोरमा से उसका पति छीन लिया है और उसका सामाजिक दर्जा नीचा कर दिया है। इसके अतिरिक्त वह यह भी अनुभव करती थी कि अवधबिहारीलाल और मनोरमा के बीच में आ उपस्थित होने से वह पारिवारिक कलह का कारण बन गई है। उसको आशंका थी कि जायदाद के बटवारे पर परिवार के सदस्यों में भविष्य में अवश्य कलह होगा, और परिवार उससे बारहबाट भी हो सकता है; किन्तु जो कुछ हुआ था उसमें उसका अधिक दोष न था। वह तो विवाह के समय इन बातों का अधिक ज्ञान न रखती थी और यदि कुछ ज्ञान रखती भी थी तो उसके परिणामों की भयंकरता की कल्पना करने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। उसके मां और बाप ने अवधबिहारीलाल वकील के साथ उसका विवाह स्थिर कर दिया और जब निश्चित दिन आया तो उन्होंने उसको विक्रीत पशु की भांति, मौन प्राणी के रूप में, अवधबिहारीलाल के हाथों में सौंप दिया।

रम्भा ने जब अपने गांव के बालक, युवा और वृद्ध लोगों को यह कहते सुना कि रम्भा का पति तो बूढ़ा है, तब उसके कलेजे में पैनी छुरियां चुभ गईं। उसने अपने रोते हुए हृदय में कहा, 'फूट गया मेरा भाग्य! मेरे मां और बाप ही मेरे वैरी होगए जिन्होंने धन के लोभ में मेरी जिन्दगी बर्बाद कर दी। मैं क्या इस बूढ़े के लायक थी?' रम्भा शादी के दिन ही एकान्त में खूब फूट-फूटकर और सिसक-सिसककर रोई थी। रोते-रोते उसकी आंखें लाल पड़ गईं थीं, मानों वे आग उगल रही हों। किन्तु वह अपना हृदय खोलकर किसके सामने रखती? उसके हृदय की उस भयंकर आग को देखने के लिए और उसमें जलने से उसको बचाने के लिए वहां कौन था? फिर उसमें इतना साहस ही कहां था जिससे वह अपना हृदय खोलकर किसी को दिखाती कि उसमें कितना दुख भरा था! वह तो हरिणी की भांति एक भोली बालिका थी जिसको उसकी स्वीकृति के बिना व्याध के हाथों में सौंपा जा रहा था। उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि यदि वह कहीं हो तो उसकी रक्षा करे; किन्तु उसकी

प्रार्थना शायद उसके इर्द-गिर्द ही रह गई। वह परमात्मा के कानों तक नहीं पहुंची और यदि पहुंची भी हो तो वह स्वीकार नहीं हुई क्योंकि कुछ ही घड़ियों में रम्भा ने देखा कि वह अपना सब कुछ अवधबिहारीलाल को बलात् दे चुकी थी। उसकी आत्मा ने कहा,'समाज बलात्कार को पाप कहता है और बलात्कारी को कठोर दण्ड देता है; किन्तु विवाह के पर्दे के पीछे जो बलात्कार रम्भा से किया गया था उसको अन्धे समाज ने देखकर भी नहीं देखा। उसने रम्भा की बिलबिलाहट और आर्त पुकार सुनने से साफ इन्कार कर दिया।'

इस प्रकार रम्भा यदि मनोरमा की सौत के रूप में आई तो इसमें उस बेचारी का कितना दोष था? किन्तु यह दुनिया बड़ी अंधी है। इसमें यह कोई नहीं देखता कि दोष किसका है। जो दोषी होते हैं वे कई बार साफ बच जाते हैं और निर्दोष कठोर दण्ड पाते हैं।

(३)

रम्भा को मनोरमा से बड़ी सहानुभूति थी, किन्तु मनोरमा को रम्भा से बड़ी ईर्ष्या। रम्भा उसका दिल संभालने की कोशिश करती तो मनोरमा समझती थी कि वह जले पर नमक छिड़कती है। वास्तव में मनोरमा को रम्भा का अस्तित्व ही अप्रिय था। यहां तक कि यदि रम्भा मर जाती तो मनोरमा कदाचित् घी का दीपक जलाती। उसके हृदय में आश्चर्यजनक परिवर्तन होगया था। उसमें जहां पहिले सब लोगों के प्रति उदारता ही उदारता थी वहां अब उसमें रम्भा के प्रति निरी डाह भरी हुई थी। वस्तु स्थिति यही थी। मनोरमा इसको बदलने में असमर्थ थी। वह अपने हृदय को इससे कैसे खाली करती? रम्भा भी इसको बदलना बहुत कठिन समझती थी; किन्तु वह तो एक ग्रामीण जमींदार की लड़की थी, इसलिए उसने मनोरमा की लगातार दुत्कारों और फटकारों को सुनने पर भी अपने हृदय की सरलता को नहीं खोया। उनसे उसके प्रेम में कोई खटास उत्पन्न नहीं हुआ। बल्कि उनसे उसको मनोरमा के हृदय की असली व्यथा का और भी अधिक यथार्थ अनुभव हुआ, और फलस्वरूप उसकी सहानुभूति उस हद तक बढ़ गई जिस हद पर जाकर करुणा से आर्द्र होकर प्राणी दूसरे के दुःख में आंसू बहाने लगता है। रम्भा ने एकान्त में बैठकर कितने दिन मनोरमा के दुख की जिम्मेवारी का एक भाग खुद अपने ऊपर लेते हुए आंसू बहाए। उसने कितने दिन बड़े दुख के साथ आंसुओं में अपना पल्ला भिगोकर यह कहा कि यदि वह खुद न होती तो मनोरमा को इतनी व्यथा क्यों होती? वह सोचती—तो क्या

मनोरमा को उसका सुहाग-सुख वापिस देने के लिए उसको आत्मघात कर लेना चाहिए ? उसके हृदय में यह बात कितनी ही बार उठी; किन्तु जब उसने अपना सारा हृदय टटोलकर भी उसमें आत्मघात के लिए पर्याप्त साहस का संचय नहीं कर पाया, तब उसने एक दिन यह निश्चय किया कि यह सारी स्थिति वह खुद अवधबिहारीलाल को ही क्यों न कहे। उसने सोचा कि उसको अवधबिहारीलाल को अपने हृदय के भाव साफ़ साफ़ बता देने आवश्यक हैं; किन्तु उसके बाद शाम को जब अवध-बिहारीलाल अदालत से काम खत्म करके हंसते हुए घर में आए, और प्यार से चुपचाप मौन बैठी हुई रम्भा का कन्धा थपथपाकर उन्होंने कहा, 'लाओ, पानी लाओ और पंखा लाओ, देखो तो कितनी गर्मी है,' तब रम्भा को अपने हृदय का सारा दुख छिपाना ही उचित मालूम पड़ा। वह हंसकर रोज़ की भांति उठी और पानी का गिलास भर लाई, दूसरे हाथ में पंखा उठा लाई और खुद हवा करने लगी। अवधबिहारीलाल ने कुर्सी पर बैठकर पसीना पोंछा और गिलास हाथ में लिए हुए कुछ देर तक पसीना सूखने दिया ताकि पसीने में पानी पीने से कहीं जुकाम न हो जाए। इस बीच में उन्होंने रम्भा से घर-गृहस्थी की दो बातें करके अपना जी हल्का करने की कोशिश की और कहा, 'ओफ़! अदालत में भी बड़ा काम रहता है। आज तो तीन मुकदमे थे, मेहनत से चूर-चूर होगया हूँ; किन्तु मेहनत सफल होगई, इससे मेरी तबीयत खुश है। अपने मुवक्किलों की जीत के सामने मैं अपनी तकलीफ़ को कुछ नहीं समझता।'

रम्भा ने अपने हृदय में कहा, 'बाहर के मुवक्किलों के लिए आपके हृदय में इतनी सत्कामना है, किन्तु बेचारी मनोरमा की ओर तो आप फूटी आँख से भी नहीं देखते। उसके लिए तो आपके हृदय में मुझको कोई स्थान ही नहीं मालूम होता।' वह फिर भी चुप रही। उसमें इतना साहस ही नहीं था।

अवधबिहारीलाल ने पानी पीना शुरू किया। उनकी एक आंख गिलास पर थी और दूसरी रम्भा के संकोच से झुके हुए मुख पर। रम्भा

में गांव की लड़कियों का सा भोलापन और लजीलापन अभी तक मौजूद था, इसलिए वह अवधबिहारीलाल के सामने भी जरूरी-जरूरी बातें ही कर पाती थी। अवधबिहारीलाल ने पानी पी लिया और गिलास रम्भा को वापिस दे दिया। रम्भा ने उसको उठाकर एक ओर आले में रख दिया और फिर अवधबिहारीलाल के समीप आई। अवधबिहारीलाल के सामने मेज़ थी और उस पर एक बड़ा सुन्दर कांच था। अवधबिहारीलाल ने अपनी टोपी उतार दी और अपनी आकृति उसमें देखनी आरम्भ कर दी। उन्होंने देखा कि रम्भा युवती है। उसकी मुखाकृति पर लाली और चमक है। उसके ओठ अभी तक लाल हैं; किन्तु उनकी लाली अब ग़ायब है। वे तमाम शरीर में शिथिलता अनुभव कर रहे थे, शरीर का मांस ढीला पड़ गया था, और उसमें से एक सार पदार्थ, जिसके कारण मनुष्य जवान रहता है, निकल गया था। इससे उनके चमड़े पर पीलापन आगया था। सिर के बालों में विद्रोहियों की संख्या बहुत होगई थी। उनमें से कितने ही बुढ़ापे-रूप शत्रु से लड़ने के बजाय अपने हथियार डालकर उसको सफेद झंडी दिखा रहे थे, और उसके सामने अपनी हार स्वीकार करने के लिए लालायित थे। अवधबिहारीलाल ने देखा कि उनके सिर के बाल बड़ी तेज़ी से सन हुए जारहे हैं। उसके बाद उन्होंने दांत खोले। उनकी जड़ें भी खाली होगई थीं। उन पर कठोर मैल जम गया था और उनमें से कई दाढ़ें और दांत भी हिलने लग गए थे; किन्तु युवा-अवस्था तो हमेशा कायम नहीं रहती। यद्यपि मनुष्य यह इच्छा ही करता रहता है कि वह सदा युवा बना रहे, और युवा-अवस्था की आनन्द की लहरें उसके शरीर को पुलकित करती रहें।

रम्भा ने कहा, "एक बात कहूं ?" उसमें न जाने कहां से इतना साहस आगया था।

अवधबिहारीलाल ने कहा, "क्यों नहीं ? कहो, क्या कहना चाहती हो ?"

रम्भा ने कहा, "बहिन मनोरमा से आपको फिर प्यार करना पड़ेगा। आप तो अब उनसे बोलते ही नहीं।"

अवधबिहारीलाल इस प्रश्न को रम्भा के मुंह से सुनने के लिए कभी तैयार न थे। वे तो सोचते थे कि यदि उनको रम्भा का हृदय साफ रखना है और उसमें अपने लिए प्रेम कायम रखना है, तो उनको मनोरमा से अपना सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि रम्भा को अपना सुख बंटता देखकर अवश्य दुख होगा। इस विचार ने उनको विवश कर दिया था कि वे मनोरमा से अधिक सम्बन्ध न रखें। वे प्रत्येक सम्भव उपाय करके रम्भा को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। पुरुष अपने प्रथम विवाह में पत्नी की इतनी पर्वाह नहीं करता, क्योंकि उसमें सौदा समान वस्तु का समान वस्तु से होता है; किन्तु यौवन ढलने पर पुरुष जो विवाह करता है उसमें उसको प्रत्येक क्षण यह अनुभव करना पड़ता है कि वह एक जूठी चीज़ देकर एक कुमारी का निर्मल हृदय बदले में ले रहा है। युवती स्त्री भी अनुभव करती है कि वह अपनी आयु से अधिक बड़े पुरुष के साथ विवाह-सूत्र में बंधकर अपना यौवन कौड़ियों में बेचे दे रही है। ऐसे विवाह में स्त्री पुरुष को तुच्छ समझती है और उस पर शासन करती है। पुरुष प्रत्येक क्षण उसको प्रसन्न करने का उपाय करता है; किन्तु जो वस्तु उसके पास नहीं रही है, वह उसको अपनी नव-विवाहिता पत्नी को दे नहीं सकता, इसलिए वह बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों पर अपनी कमाई बेरहमी से व्यय करके उसको संतुष्ट करता है। जो पुरुष दो पत्नियों से विवाह करके एक से ही प्रेम करता है, उसके सामने दो बातें होती हैं। एक तो यह कि पहिली स्त्री कुरूप हो और उसमें आकर्षण कम होगया हो, और दूसरी यह कि दूसरी स्त्री का पूरा प्रेम प्राप्त करने के लिए पहिली का सर्वथा त्याग किया गया हो। मनोरमा तो कुरूप न थी, और न वह अनाकर्षक ही थी; किन्तु वह तो रम्भा को प्रसन्न रखने के लिए परित्यक्ता की स्थिति में रखी गई थी। जहां अवधबिहारीलाल रम्भा को विविध-वस्त्रों और आभूषणों से लादकर संतुष्ट करने की कोशिश करते वहां वे मनोरमा की उपेक्षा को भी रम्भा की संतुष्टि का साधन समझते थे।

उन्होंने रम्भा से कहा, "किन्तु रम्भा, तुम्हें क्या होगया है ? क्या इससे तुमको दुख नहीं होगा ? कोई भी स्त्री ऐसा नहीं चाहती कि उसका पति उसके अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करे।"

रम्भा ने कहा, "किन्तु मनोरमा तो कोई 'दूसरी स्त्री' नहीं है, वे तो आपकी पहिली विवाहिता हैं। उनका आपके प्रेम पर पहिला अधिकार है। मैं तो अभी आई हूं न ? सच पूछा जाए तो मैंने बड़ी अनधिकार चेष्टा की है, जो उनकी चीज़ को उनसे छीनकर अपना स्वार्थ पूरा किया है। मैं यह अनुभव करती हूं कि आपके ऊपर बहिन मनोरमा का मेरी अपेक्षा अधिक अधिकार है। यह ठीक है कि मैं युवती हूं; किन्तु केवल यह स्थिति तो मुझको यह अधिकार नहीं दे देती कि मैं उनसे आपको बिल्कुल छीन लूं और उनके दिन-रात कुढ़ने और जलने की स्थिति उत्पन्न कर दूं।"

अवधबिहारीलाल नहीं जानते थे कि रम्भा अधिकार और अनधिकार के बारे में इतना सोचेगी। वे तो समझते थे कि वह सामान्य स्त्रियों की भांति स्वार्थपरता की दलदल से ऊंची न उठ सकेगी और वे जो व्यवहार कर रहे हैं उससे संतुष्ट ही होगी; किन्तु यहां बात दूसरी ही निकली। रम्भा चाहती थी कि वे मनोरमा को भी उसी की भांति अपना प्रेम दें।

किन्तु दूसरे ही क्षण अवधबिहारीलाल को ऐसा अनुभव हुआ, मानो रम्भा उनसे कुछ अलग हटती जा रही हो। उन्हें ऐसा भी अनुभव हुआ कि रम्भा जो कुछ कह रही है, बहुत सम्भव है, वह शत प्रतिशत मनोरमा की हित-कामना से प्रेरित होकर न कह रही हो। वह जो कुछ कह रही है कहीं उसके पीछे उनके प्रति रम्भा की उपेक्षा तो नहीं है ? उन्होंने एक बार इस आशंका को अपने हृदय से धक्का देकर बाहर कर देने की कोशिश की, किन्तु इसमें उनको सफलता नहीं मिली। तब वे चुप होगए और इस अवसर की प्रतीक्षा करने लगे कि रम्भा के हृदय में उनके प्रति यह उपेक्षा क्यों उत्पन्न हुई है, वे इसका कारण तलाश करें। वे वकील थे और उन्होंने बहुत से जजों को कितने ही उलझे हुए मुकदमों को

समझने में मदद दी थी, किन्तु उनको स्वयं अपना यह मुकदमा अधिक उलझा हुआ प्रतीत हुआ। इसमें उनका कानूनी ज्ञान उनको अधिक मदद नहीं दे सकता था। फिर भी कानूनी तर्क मनुष्य के मस्तिष्क को ठीक दिशा में देखने में काफ़ी मदद देता है। इस मामले में भी उनको अपने वकालत के अनुभव से ठीक परिणाम निकालने में सफलता मिली थी; किन्तु अभी तो यह सिद्ध होना बाकी था कि उनका निकाला हुआ परिणाम निर्भ्रम था।

रम्भा जब किशोरी थी तब श्रावण के महीने में अपनी सहेलियों के साथ झूला झूलने में मस्त हो जाना उसको बहुत प्रिय था। उसकी मां उसको बार-बार पुकारती, 'बेटी, खाना ठंडा हो रहा है; पहिले खाना खा ले, पीछे झूलती रहना।' किन्तु, रम्भा अपनी मां के इस प्रेममय आग्रह को 'मां, अभी भूख ही नहीं है' कहकर टालती रहती और जब उसको अधिक टालना सम्भव न होता तब झूलना बंद करके दौड़ी दौड़ी खाना खाने जाती और कुछ मिनिटों में ही खाना खाकर फिर झूले पर आ बैठती। उन गीतों में, जिनको तब रम्भा गाया करती थी, उसको आनन्द आता था। इसकी याद रम्भा को भला कैसे भूल सकती थी? और रम्भा उन दृश्यों को भी कैसे भूल सकती थी, जब कि उसकी सहेलियां श्रावण में मायके में झूला झूलकर सासरे को वापिस जातीं। वह भी कल्पना किया करती थी कि कभी उसको भी इन्हीं सखियों की भांति मायके से सासरे जाना होगा; किन्तु उसकी कल्पनाओं के इन दानों की माला में एक बड़ी कल्पना का दाना भी था जिसे हीरा कहते हैं। कोई भी माला हीरे के बिना पूरी नहीं होती। रम्भा की कल्पनाओं की माला का हीरा थी उसकी भावी पति की कल्पना। सारी मालाओं में यह दाना प्रमुख था। इस पति की कल्पना में वह अपनी दृष्टि दूर-दूर तक दौड़ाती, अनेक युवकों पर उसकी निगाह जाती; किन्तु वह किसी पर भी न ठहरती। तब वह अपने मन में अपनी कल्पना का ही एक युवक तैयार करती और कहती, 'बस, मैं इसी को वरण करूंगी, इसी से खूब हिल-

मिलकर प्रेम करूंगी और अपनी सखियों में बैठकर उनकी ज़बानों से उसकी प्रशंसा सुनूँगी तथा गर्व का अनुभव करूंगी।'

किन्तु जब रम्भा का विवाह अवधबिहारीलाल से होगया तब उसकी कल्पनाओं की माला का 'हीरा' खंडित होगया और उसकी सारी माला ही बिखर गई। उसका सारा सुख-स्वप्न धूल में मिल गया। उसने जैसे पति की कल्पना की थी वैसा पति उसको नहीं मिला था। फिर वह उसको उतना ही प्रेम कैसे कर सकती थी जितना वह अपनी कल्पना के पति को करना चाहती थी। उसने कल्पना की थी कि जब वह बड़ी होगी तो उसको प्रेम का एक सुन्दर और सजीव देवता पूजा करने के लिए मिलेगा, जिसकी सेवा में अपने आपको पूरी तरह समर्पित करके वह अपना अहोभाग्य समझेगी। किन्तु उसके प्रेम का देवता सजीव होने पर भी उतना सुन्दर न था और असल बात यह है कि उसकी दृष्टि में उतना सजीव भी नहीं था। वह उसको पत्थर के देवता से कुछ ही अधिक मानती थी।

प्रेम अमूल्य है, उसको सोने से कदापि नहीं तोला जा सकता। जो प्रेम को सोने से तोलते हैं वे इस व्यवसाय में बिल्कुल कोरे हैं। इस खुले रहस्य को समझने के लिए कोई दिमाग़ लड़ाने की ज़रूरत नहीं है, सिर्फ़ आंखें खोलकर अपने चारों ओर देखने की ज़रूरत है। इंगलैंड के सम्राट आठवें ऐडवर्ड का श्रीमती सिम्पसन नाम की एक स्त्री से प्रेम होगया। उनसे उनके देशवासियों ने पूछा, 'बोलो, तुम्हें ब्रिटिश साम्राज्य का छत्र प्यारा है या श्रीमती सिम्पसन।' उन्होंने इसका उत्तर देने के लिए अधिक सोच-विचार नहीं किया। उन्होंने कहा, 'मैं प्रेम के लिए इस छत्र को ठोकर मारता हूँ।' किन्तु धन का लोभ एक बात है और कर्तव्य-परायणता दूसरी बात है। प्रेम के लिए धन का लोभ छोड़ा जा सकता है; किन्तु प्रेम के लिए कर्तव्य को भुला देना अनुचित है। कर्तव्य तो सोने और प्रेम दोनों से ऊंची वस्तु है।

रम्भा चाहती थी प्रेम; और अवधबिहारीलाल उसको प्रेम करते भी थे; किन्तु वह प्रेम एक तरफ़ा ही तो था। रम्भा अनुमान करती थी

कि वह अवधबिहारीलाल को प्रेम नहीं कर सकती और वह उनको प्रेम करती भी नहीं थी। अवधबिहारीलाल इस बात को एक सीमा तक अनुभव करते थे; किन्तु आज जब रम्भा ने उनको मनोरमा से प्रेम करने के लिए कहा तो उनकी यह अनुभूति भी और ज़्यादा गहरी होगई। उन्होंने अपने सोने के ज़ोर से उसका प्रेम जीतने की कोशिश की। रम्भा के पास आभूषणों की कमी नहीं थी; अब और भी नई चीजें लाई गईं। किन्तु फिर भी वह अवधबिहारीलाल को प्रेम नहीं कर सकी। वह मजबूर थी। इसमें उसका दोष न था। यह तो उसके हृदय का दोष था, जो अपनी कल्पना का प्रेमी चाहता था।

अवधबिहारीलाल ने रम्भा के अधिकार और अनधिकार के तर्क को ध्यान से सुना और कहा, "रम्भा, अधिकार क्या है और अनधिकार क्या, यह तो तुम्हारी अपेक्षा मैं ही अधिक जानता हूं। तुम इस रूप में मुझे कुछ नहीं सिखा सकतीं। तुम तो एक सत्पत्नी के रूप में ही मेरे ऊपर शासन कर सकती हो।"

रम्भा ने कहा, "मैं आपके ऊपर शासन करना नहीं चाहती। मैं तो चाहती हूं कि आप मनोरमा के साथ कोई अन्याय न करें।"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "रम्भा, तुमने फिर न्याय और अन्याय का प्रश्न उठाया। मैं कहता हूं कि तुम तो, मैं जो कुछ करता हूं, उसको ही न्याय समझो। मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया है। मुझे तुम्हारा ध्यान रखना चाहिए। क्या यह न्याय नहीं है? मनोरमा का जो अधिकार था वह उसको प्राप्त हो गया। कोई भी समझदार व्यक्ति यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि विवाह का अर्थ जबर्दस्ती प्रेम करना होता है। जब मुझे मनोरमा से प्रेम नहीं रहा है तब मैं इसमें क्या करूं? यह तो मेरे हाथ की बात नहीं है। प्रेम का सम्बन्ध हृदय से है और मुझे अपने हृदय पर अधिकार नहीं है। वह तो जिस ओर जाता है उस ओर जाता है। उसको जिससे प्रेम होता है उससे होता है। क्या तुम समझती हो कि मुझको अपने हृदय को कुचलकर जबर्दस्ती मनोरमा से प्रेम करने के

लिए बाध्य करना चाहिए। मैं सच कहता हूं, रम्भा, मैं ऐसा करने में असमर्थ हूं।"

रम्भा ने कहा, "जब आप अपने हृदय से जबर्दस्ती नहीं कर सकते तो आप समझ लीजिए कि मैं भी आपके सामने झुक नहीं सकती। मैंने निश्चय किया है कि जब तक आप मनोरमा से प्रेम नहीं करेंगे तब तक मैं भी आपसे प्रेम करने के लिए अपने हृदय से जबर्दस्ती नहीं कर सकती। यह मैंने माना कि आप वकील हैं और आपको बहस करने का अच्छा अभ्यास है, लेकिन यह तो बहस की बात नहीं है। यह तो ऐसी बात है जिसे मुझ जैसी कानूनी ज्ञान से हीन स्त्रियां भी समझ सकती हैं। यदि मनोरमा आपका प्रेम जबर्दस्ती प्राप्त नहीं कर सकती तो आप भी मुझसे यह आशा न रखें।"

अवधबिहारीलाल को मालूम हुआ कि यह मामला तो बिल्कुल संगीन होगया है। यह तो मेरा शासन ही नहीं मानती। अब इसका मैं क्या करूं? वे बड़े असमंजस में पड़े कि अब क्या किया जाए। अन्त में उन्होंने कहा, "अच्छा रम्भा, मनोरमा से प्रेम करने का तुम्हारा मतलब क्या है?"

रम्भा ने कहा, "वही जो आपका मतलब मुझसे प्रेम करने का है।"

अब तो अवधबिहारीलाल निरुत्तर होगए। उन्होंने अपने मन में कहा कि आज तक अदालतों में उन्होंने बहुत से मुकदमे हारे भी थे; किन्तु ऐसी करारी हार तो उन्होंने कभी नहीं खाई थी। वे देर तक कुछ सोचते रहे। उसके बाद उठकर अपनी बाहरी बैठक में बैठ गए। रम्भा भी अब घर के काम काज में लग गई। उसको अपनी विजय पर गर्व अनुभव हो रहा था; किन्तु इस विजय के साथ उसको विजेता का पुरस्कार कुछ नहीं मिला था। उसके पास जो कंगले की-सी पूंजी थी वह भी उसने आवेश में आकर फेंक दी थी, यानी अपने पति को फटकार दिया था।

अवधबिहारीलाल अदालत के काम से थके हुए से आए थे; किन्तु वे फिर अपनी कानूनी किताबों में लग गए। यह ठीक ऐसा ही था जैसे

कोई निरुद्यमी और निराश व्यक्ति शून्य-मन बैठा हुआ तिनके तोड़ने लगता है, या इधर-उधर कंकड़िया फेंकने लगता है। उनको उन किताबों में देखना कुछ नहीं था और वे पढ़ भी कुछ नहीं रहे थे; किन्तु फिर भी मोटी मोटी जिल्दों के सफे बदलते जाते थे। आखिर उन्होंने एक ठण्डी और गहरी सांस ली तथा किताबों को इधर-उधर डालकर उठ खड़े हुए, मानों किसी नींद से चौंके थे। वे कुछ बड़बड़ाते हुए इधर-उधर कमरे में टहलने लग गए। अन्त में उन्होंने मन ही मन में कहा, 'अच्छा, रम्भा, समझा, शायद तुम भी मनोरमा से मिल गई हो; किन्तु कोई परवाह नहीं है।'

इतने में नौकर ने आकर कहा, "बाबू जी, खाना तैयार है। बहू जी बुला रही हैं।"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "जाओ, उनसे कह दो कि मुझको आज बिलकुल भूख नहीं है।"

नौकर ने जाकर रम्भा से ऐसा ही कह दिया।

रम्भा घर में से निकलकर बैठक में आई और अवधबिहारीलाल के पास खड़ी हो गई। वह कुछ देर चुप-चाप उनके मुख की ओर देखती रही और फिर बोली, "आज आपकी भूख कहां गई? क्या आपने आज से मनोरमा के हाथ का बना खाना खाने का निश्चय किया है? यदि ऐसा है तब तो बहुत प्रसन्नता की बात है।"

अवधबिहारीलाल को रम्भा का व्यंग चुभ गया। उन्होंने कहा, "नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है; किन्तु मैं इस वक्त खाना नहीं चाहता था।"

रम्भा ने पूछा, "यही तो मैं पूछती हूं कि आप आज खाना क्यों नहीं खाना चाहते?"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "रम्भा, तुम जाओ। आज मुझे कुछ काम करने दो।"

रम्भा ने कहा, "काम? आज आपको शायद बहुत अधिक काम मिल गया है। दूसरे दिनों में तो आपको इतना काम कभी नहीं रहता

था कि खाना खाने की भी फुर्सत न मिल सके। क्या मुझसे बातें करने की भी फुर्सत नहीं है ?"

अवधबिहारीलाल ने हंसकर कहा, "तो रम्भा, यह बताओ कि तुम क्या चाहती हो ? क्या यह कि मैं तुमसे भी इसी तरह अलग सा रहूँ जैसा मनोरमा से रहता हूँ ?"

रम्भा ने कहा,"हां, बिल्कुल यही; किन्तु मैं यह तो हर्गिज़ नहीं चाहती कि आप मेरे हाथ का बनाया हुआ खाना भी खाना छोड़ दें। मैं आपको निश्चय दिलाती हूं कि आपको मेरे बनाए हुए खाने से कोई हानि न होगी।"

अवधबिहारीलाल चुप बैठे रहे। रम्भा ने उनका हाथ पकड़ा और कहा, "चलिए, ज्यादा मनुहार कराना ठीक नहीं।" अवधबिहारीलाल उठकर रम्भा के साथ-साथ चल दिए। रम्भा ने मेज पर लाकर खाना रख दिया और स्वयं हवा करने लगी। अवधबिहारीलाल को ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई बात ही नहीं हुई थी। उनको ऐसा लगा मानो रम्भा वही रोज़ की रम्भा है और वह आज भी रोज़ की तरह उनकी सेवा-शुश्रूषा प्रेम-पूर्वक कर रही है।

रात के नौ बज चुके थे। आज पहिली बार अवधबिहारीलाल ने कहा,"रम्भा, मैं आज कहीं जा रहा हूं। तुम मेरा इन्तज़ार न करना।"

रम्भा ने कुछ ऐतराज़ किए बिना ही कहा, "बहुत अच्छा।" उसने उनको यह भी नहीं कहा कि रात के समय कहीं मत जाइए। किन्तु जब अवधबिहारीलाल घर से निकले तो रम्भा ने उनसे पूछा, "आप रात को कहां रहेंगे ?"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "मैं मनोरमा के पास जा रहा हूँ। उसने आज मुझको बुलाया था। वह आज मेरे साथ सिनेमा जाएगी।"

रम्भा चुप होगई। न तो अवधबिहारीलाल ने उसको चलने के लिए कहा और न रम्भा ने ही उनसे यह पूछा कि क्या वह भी चल सकती है। अवधबिहारीलाल मनोरमा के घर की तरफ चले गए, जिसको

उसने अभी तैयार कराया था। यह पुराना घर था, जिसके एक भाग में रम्भा रहती थी और दूसरे भाग में सुशील अपनी पत्नी शीला के साथ रहता था। नया घर बनने से पहिले मनोरमा सुशील और शीला के साथ ही रहती थी; किन्तु कुछ दिन से उसका मन कथा-वार्ता और पूजा-पाठ में ज्यादा रहता था, इसलिए उसने अपने लिए एक अलग स्थान बनवा लिया था। शीला कभी सुशील के साथ रहती और कभी मनोरमा के साथ।

अवधबिहारीलाल जब मनोरमा के द्वार पर पहुँचे और नौकर को आवाज़ दी तो उसने बताया कि मनोरमा केशिनी और शीला के साथ अभी आती होंगी। कुछ देर तक प्रतीक्षा करने के बाद अवधबिहारीलाल ने देखा कि वे तीनों उन्हीं की तरफ़ आरही हैं। नौकर ने मोटर लाकर खड़ी कर रखी थी।

मनोरमा ने अवधबिहारीलाल को अकेला देखकर पूछा, "क्यों, रम्भा नहीं आई?"

अवधबिहारीलाल यह तो कह नहीं सकते थे कि चूँकि आज उनकी और रम्भा की खटपट होगई थी, इसलिए उन्होंने उसको आने के लिए नहीं कहा। उन्हें तुरन्त यह कहना पड़ा,, "रम्भा आज घर ही रहेगी।"

मनोरमा यह सुनकर कुछ सहम गई। उसने सोचा कि क्या सोचकर सिनेमा चलने का कार्यक्रम बनाया गया था और यह क्या नई स्थिति उत्पन्न हो गई। रम्भा के हृदय पर इस बात का क्या असर पड़ेगा कि उसके अतिरिक्त शेष सारा परिवार सिनेमा देखने गया। किन्तु अब तो सिनेमा शुरू होने में थोड़ी ही देर थी, लिहाज़ा यह तय हुआ कि अब रम्भा को लेने न जाया जाए। उसके बाद सब लोग मोटर में बैठे और कुछ ही समय में सिनेमा पहुँच गए।

(४)

समस्तीपुर में दीनू को अवधबिहारीलाल के जाने के पन्द्रह दिन बाद एक सौ पचास रुपए का मनीआर्डर मिला। इनमें से पच्चीस रुपए साधु रामदास की कुटिया की मरम्मत के लिए थे। दीनू ने अपने रुपए अपनी रुचि के अनुसार धर्म-कार्य में व्यय कर दिए। दीनू अपने घर का कुछ आसूदा-हाल था। उसको इस रुपए की ज़रूरत न थी। उसने अवध-बिहारीलाल और मनोरमा की परिचर्या और चिकित्सा में जो कुछ ख़र्च किया वह अपने मन से अपना कर्तव्य समझकर किया था। जो रकम उसने इस तरह धर्म-कार्य में ख़र्च कर दी थी, उसको फिर स्वीकार करना वह उचित नहीं समझता था।

रामू ने एक दिन दीनू से कहा, "भैया दीनू, कभी पटना चलें। देखें तो हमारे बाबू के क्या ठाठ हैं?"

दीनू ने कहा, "हां, चलो।"

निदान तय हुआ कि वे एक दिन पटना जाएंगे। पटना समस्तीपुर से साठ मील था। इतना लम्बा सफ़र उनको रेल द्वारा तय करना था; लेकिन दोनों ने तय किया कि इस बार पटना पैदल ही चलेंगे। वे पहिले भी कई बार पटना गए थे; लेकिन इस बार उनमें पटना जाने का जितना उत्साह था, उतना पहिले कभी न था। उन्होंने अपना रास्ते का तोशा तैयार कराया और अपने मार्ग पर चल पड़े। भूचाल को आए दो साल गुज़र गए थे; लेकिन रास्ते में उन्होंने देखा कि भूचाल के निशान पृथ्वी की सतह पर अभी तक बाकी थे। एक जगह उनको धरती में बड़ी भारी

खाई मिली जिसको देखने के लिए लोग अभी भी आया करते थे। वहां ज़मीन कोई पचास-साठ गज़ नीची बैठ गई थी। भूचाल के बाद जो बरसातें आईं, अगर्चे उन्होंने उसके किनारे तोड़-तोड़कर उसमें कुछ मिट्टी भर दी थी; लेकिन फिर भी खाई अभी भयंकर रूप से आस्मान की ओर मुंह फाड़े पड़ी थी। किसानों के सैकड़ों उपजाऊ खेत उसने खा लिए थे, फिर भी उसका पेट मानो उसकी कमर से लगा था। वह बरसात के पानी से और उसके साथ बही हुई मिट्टी से बहुत धीरे-धीरे भर रही थी। खाई में हरे-भरे पेड़ उगे थे और उनकी छाया में चिड़ियों की चहल-पहल के अतिरिक्त किसी अन्य जीव-धारी का वास कदाचित् इन सालों में नहीं हुआ था। खाई इतनी गहरी और लम्बाकार खड़े किनारों की थी कि उसमें कोई जंगली पशु भी नहीं घुस सकता था। रामू और दीनू खाई को देखकर बड़े हैरान हुए। यह खाई कोई पांच मील की लम्बाई में थी, और उसकी चौड़ाई कहीं-कहीं फैलते-फैलते चार फर्लांग तक होगई थी; किन्तु खाई में भी ज़मीन एक सी नहीं थी। वह बहुत कुछ असमान थी। यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि ज़मीन इतनी कैसे फट गई? भूगर्भ-शास्त्रियों का कहना था कि पृथ्वी के भीतर का कोई भारी पपड़ा टूटकर गिर जाने से पृथ्वी को यकायक ज़ोर का धक्का लगा था, और उस धक्के के ज़ोर से ही यह सब होगया था। ज़मीन के ऊपर की सतह के कितने ही भाग भीतर घुस गए थे, और कितनी ही जगह पृथ्वी की सतह पहिली सतह से ऊंची उठ आई थी। रामू और दीनू ने यह भी देखा कि एक जगह, जहां भूचाल से पहिले एक कुआँ, मन्दिर और धर्मशाला थे, ज़मीन इतनी ऊंची उठ गई थी कि मन्दिर और धर्मशाला के खंडहर एक पहाड़ी-सी के ऊपर रखे प्रतीत होते थे। कुआँ इधर-उधर को फट गया था और उसकी तली में पानी का नाम भी न था। एक जगह नदी का घाट ज़मीन में लुप्त होगया था और नदी सूख गई थी। उसका भण्डारा, जिसमें वह बहती थी, ज़मीन से बहुत ऊंचा उभर आया था और सूखा पड़ा था। नदी की धारा भूचाल में अपने मार्ग

को छोड़ गई थी। रामू और दीनू यह दृश्य देखकर हैरान थे। वे आश्चर्य से पागल से होगए। अन्त में वे पटना पहुंचे और वकील अवधबिहारीलाल की कोठी का पता पूछकर ठीक जगह पर जा लगे।

अवधबिहारीलाल ने रामू और दीनू का अच्छा आदर किया। वे उनके प्रति कृतज्ञ थे। उन्होंने कभी उनके प्राण बचाए थे। यदि वे उनको गंगा की धारा में से न निकालते तो उनका शरीर दुनिया में न होता और न मनोरमा ही जीवित बचती। दोनों रामू और दीनू की आवभगत कई दिन तक करते रहे। उनके लिए तरह-तरह की चीज़ें मंगाई गईं और उनको पटना की खास-खास चीज़ें दिखाई गईं। अन्त में रामू और दीनू ने उनसे विदा मांगी और अपने घर की राह लेनी चाही। परिवार के सब लोग इकट्ठे हुए। एक प्रकार से सारा परिवार, जो कुछ व्यवहार उन्होंने किया था, उसके लिए कृतज्ञता के भार से दबा जा रहा था। अन्त में रामू ने कहा, "बाबू जी, हमें पटना बहुत अच्छा लगा; लेकिन हमने रास्ते में जो कुछ देखा वह पहिले कभी नहीं देखा था। भूचाल में नदी की धारा ही अपना रास्ता छोड़ गई थी और नदी की जगह पर टीले निकल आए थे।"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "सीतामढ़ी की मेरी ज़मीदारी में भूचाल में बड़ी हानि हुई थी। जमीन फट गई थी और उसमें से बालू और पानी फूट निकले थे। किसानों के खेतों में जो बड़ी-बड़ी दरारें हो गईं थीं वे अभी तक मुंह फाड़े पड़ी हैं। जगह-जगह खेतों के बीच में गोल बड़े-बड़े ज्वालामुखियों के से छेद अभी तक बने हुए हैं। लोग कहते हैं कि उनमें से बालू और गर्म पानी के फव्वारे फूटते थे, जिनकी उछाल आसमान में बहुत ऊंची जाती थी। पानी इतना गर्म था कि जनवरी के भयंकर शीत-काल में भी हाथ-पैर जलते थे। यह गर्म पानी गन्धक मिला हुआ था और जमीन में बहुत गहराई से आया था। एक तरह से वे गोल छेद ज्वालामुखी के ही रूप थे। यदि भूचाल का धक्का कुछ और ज़्यादा ज़ोर का लगता और जमीन के और ज़्यादा भीतर का आग

की तरह जलता हुआ और पिघला हुआ पत्थर, जिसे लावा कहते हैं, आग, राख और धुएं के बादलों के साथ जमीन की सतह में से जगह-जगह से फूट निकलता तो हम उनको बहुत से ज्वालामुखी ही मानते, किन्तु संयोग से धक्का बहुत ज्यादा ज़ोर का न था। वह इतना ही ज़ोर का था कि पृथ्वी के भीतर जहां गर्म पानी है वहां तक ही उसका असर हुआ था। जब पृथ्वी के भीतर के खोखले भाग में से उस धक्के से एक बड़ा पपड़ा टूटकर इस पानी में गिरा तो वह पानी ज़मीन को और उसके भीतर और बाहरी भागों को ज़ोर से हिलाता हुआ बड़ी शक्ति के साथ अपनी जगह से ऊपर को चल पड़ा। जिस तरह किसी पोखरे में कोई पहाड़ का हिस्सा टूटकर गिर जाने से पानी और कीचड़ उछलकर ऊपर को जाते हैं उसी तरह की बात जमीन के भीतर हुई थी। पानी के साथ जो बालू, कंकड़ और मिट्टी निकले थे और जो इन गोल छेदों के मुंहों पर जम गए थे वे जमीन की ऊपरी तहों में से ज़ोर के साथ फूटते हुए पानी के साथ निकल आए थे। गोल छेदों के चारों ओर बालू, कंकड़ और मिट्टी के ये ढेर अब भी देखे जा सकते हैं। उनके चारों ओर जहां पहिले बड़ी उपजाऊ धरती थी वहां धरती पर अब बालू ही बालू छा गई है। इससे धरती ऊसर बन गई है और किसानों का बड़ा नुकसान हुआ है।"

रामू और दीनू अवधविहारीलाल के मुँह से भूचाल के इस पीड़ित इलाके का हाल सुनकर और भी ज्यादा आश्चर्य में पड़े। उन्होंने पूछा, "क्यों बाबू जी, वहां भूचाल में लोगों पर क्या-क्या बीती?"

अवधविहारीलाल ने कहा, "यह भूचाल १५ जनवरी सन् ३४ को दिन में दोपहर बाद दो बजकर तेरह मिनिट पर आया था। लोगों का कहना है कि उस समय वे अपने खेतों में काम करने गए थे और गांवों में औरतों और बच्चों को छोड़कर मर्द बहुत ही कम थे और औरतें और बच्चे भी बहुत कम घरों में थे। फिर जो घरों में थे भी वे अपने घरों की दीवारें आंधी में झकोरे खाते हुए पेड़ों की तरह हिलती देखकर उनमें से बाहर को निकल भागे। गांवों में तहलका मच गया—'धरती हिली, भूचाल

आया, भूचाल आया।' उसके बाद लोगों ने देखा कि उनके घर उनके देखते-देखते कुछ पलों में ही ज़मीन पर सो गए। भूचाल का बड़ा धक्का कुछ जगह सिर्फ दो मिनिट तक ही रहा। कहीं-कहीं वह तीन मिनिट और चार मिनिट तक भी रहा; किन्तु ५ मिनिट से ज़्यादा तो ज़मीन कहीं भी नहीं हिली। इन थोड़ी सी मिनिटों में यह सब कुछ होगया। भूचाल के इलाकों के बूढ़े-बूढ़े लोगों का कहना था कि उनकी याद में इतने ज़ोर से धरती पहिले कभी नहीं हिली थी। भूचाल में धरती पर एक-एक बालिश्त ऊंची-नीची लहरें उठती थीं और दस-दस हाथ दूर तक जाती मालूम पड़ती थीं। जिस तरह से समुद्र में तूफान आता है उस तरह से यह जमीन पर तूफान आया था। मकान, पेड़ और दूसरी जड़ चीजें तो भूचाल में ज़मीन पर लम्बी लेट ही गईं, लेकिन आदमी भी तो खड़े नहीं रह सके। खड़े हुए आदमी ज़मीन पर गिर गए और कुछ लोग गिरने के डर के मारे स्वयं ज़मीन पर लेट गए या बैठ गए। ऐसा ज़ोर का भूचाल था वह।"

रामू और दीनू चकित थे। उन्होंने ये बातें पहिले कभी न सुनी थीं। भूचाल के नुकसान की अफवाहें और सच्ची खबरें उन तक भी पहुँची थीं; किन्तु वे इतनी विस्तृत और दिलचस्प न थीं। उन्होंने आगे अवधबिहारीलाल से फिर पूछा, "यह नुकसान किन-किन जिलों में ज्यादा हुआ था बाबू जी।"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "भूचाल की यह लम्बी कहानी है। अब आप लोगों को भी देर हो रही है, क्योंकि आपकी गाड़ी का वक्त होगया और मुझे भी कचहरी जाना है।"

केशिनी, शीला, रम्भा और मनोरमा ने कहा, "जब ये लोग भूचाल का हाल जानना ही चाहते हैं तब तो ये यहां अभी ठहरें। इनको आज हम वह जगह दिखाएंगे जहां हमारा पुराना मकान था और जहां गंगा के किनारे हमारी नाव टूटी थी।" रामू और दीनू को ये बातें इतनी दिलचस्प मालूम हुईं और उनकी जिज्ञासा उनको जानने के लिए इतनी प्रबल हो

गई कि उन्होंने बिना ज्यादा आग्रह के ही रुक जाना मंजूर कर लिया।

इसके बाद अवधबिहारीलाल अदालत चले गए और मनोरमा ने रामू और दीनू को अपने पुराने मकान का खंडहर दिखाया। उन्होंने उसे अभी तक नहीं बनवाया था। रामू और दीनू ने देखा कि गंगा के किनारे मीलों तक मकान बने हैं और उनमें आलीशान कोठियां भी हैं। अवधबिहारीलाल की गिरी हुई कोठी भी कभी बड़ी शानदार कोठी रही होगी, क्योंकि उनके सहन में जो बाग था वह अब भी दूसरी कोठियों के बागों से ज्यादा सुन्दर था। कोठी के आधे गिरे हुए हिस्से बता रहे थे कि कोठी में बढ़िया पत्थर और बढ़िया सामान लगाया गया था। मनोरमा कोठी को देखकर उदास हो गई। उसकी आंखों में आंसू भर आये। रामू ने पूछा, "भैया सुशील इसी में दब गए थे क्या?"

मनोरमा ने हृदय को थामकर कहा, "हां भैया, उसके साथ विनोद और शान्ता भी तो थे जो निकालते वक्त तक मर चुके थे। सुशील मेरे भाग्य से जिन्दा बच रहा; वर्ना मेरा इस दुनिया में कौन रहता।"

रामू ने कहा, "आप दुखी क्यों होती हैं मां, दुनिया में जो कुछ होता है उस सबमें आदमी का कोई चारा नहीं होता। आदमी तो सिर्फ प्रयत्न करता है और होता वह है जो होना होता है। जो कुदरती बातें होती हैं उनमें आदमी बेबस होता है। भूचाल में लाखों-करोड़ों का नुकसान होगया और बहुत से आदमी और जानवर मरे। इसमें भला आदमी क्या कर सकता था?"

मनोरमा ने कहा, "हां हज़ारों आदमी भूचाल में मरे। सरकारी गिनती के अनुसार सात साढ़े सात हज़ार मौतें हुई थीं। इनमें मुझ जैसी हज़ारों अभागी माताएं होंगी, फिर मैं ही क्यों इतना दुख करूं। कुछ तो मुमकिन है मुझसे भी ज्यादा अभागी होंगी, जिनके इकलौते लाल काल के गाल में चले गए होंगे। भैया! यह भूचाल क्या था, यह तो प्रलय थी। उसमें लाखों ही जानवर मरे होंगे और कितने ही परिवार ऐसे होंगे जिनमें कोई कमाने वाला न बचा होगा। लेकिन सरकार का कहना

था कि भूचाल दिन में आया, जब मर्द घरों में बहुत कम थे। ज्यादातर औरतें घरों में थीं, इसलिए वे ही ज्यादा मरीं। कम से कम गांवों में तो ऐसा ही हुआ था लेकिन शहरों में दूसरी बात थी। शहरों में आदमी मकानों में ही तो काम करते हैं, इससे जब भूचाल आया तब वे मकानों में ही थे। लिहाज़ा जब पक्के मकान भूचाल में एक साथ लहर खाकर सोए तब उनके मलवे में हज़ारों लोग दब गए जिनमें से बहुत से कांग्रेस के स्वयं-सेवकों और सरकारी कर्मचारियों की मदद से तुरन्त मलवा हटाकर बचा लिए गए। जिनके ऊपर बहुत ज्यादा मिट्टी-पत्थर आ गिरे थे और जिनके बारे में यह पता न चला कि वे कहां हैं, वे नहीं निकाले जा सके और इस तरह उनके प्राण कोई शारीरिक चोट न लगने पर भी दम घुट जाने से निकल गए। कुछ लोग मकान गिरते ही कुचल जाने से तुरन्त मर गए थे। कहते हैं कि विनोद और शान्ता तो गहरी चोट लगने से मकान गिरते ही मर गए थे। जब मुहल्ले के लोगों ने मकान की खुदाई की तो वे छत के पत्थरों और चूने के ढेर में दबे हुए निकले। केवल सुशील छत का पत्थर टेढ़ा पड़ जाने से उसकी खाली जगह में बिना चोट लगे सुरक्षित बच गया था, इसलिए वह जब निकाला गया तब जीवित था। वह सिर्फ़ साफ़ हवा न मिलने से बेहोश होगया था। कुछ उछलकर लगी हुई ईंटों से उसको मामूली चोटें भी आईं थीं जो कुछ ही दिनों में अच्छी होगईं।"

यह सब कहते-कहते मनोरमा का दिल भर आया और वह पत्थरों के ढेर पर बैठकर रोने लगी। रामू और दीनू की आंखों में भी आंसू भर आए। उनको बड़ा दुख हो रहा था कि वे यहां इस मकान को देखने क्यों आगए।

मनोरमा ने आंसू पोंछते हुए अपने हृदय को कुछ आश्वासन देकर फिर कहा, "मेरे दो बेटे और दो बेटियां थीं जिनको पाकर मैं फूली न समाती थी। मेरे घर में क्या न था। कितने ही ऐसे घर हैं जिनमें धन है; उसका भोग करने के लिए संतान नहीं है; लेकिन परमात्मा ने मुझे

दोनों चीजें दी थीं। फिर मेरे बेटे और बेटी बड़े शीलवान थे। मुझे उन पर अभिमान था। एक लड़की मीरा पहिले ही गंगा नहाते-नहाते गायब होगई थी। भूचाल के दिन शेष तीनों इस हॉल में ही थे। विनोद की बहू अपने मायके को चली गई थी। वह बच गई। उसका भी दुर्भाग्य है। उस बेचारी के सुख के दिन भी इने-गिने निकले। सच कहती हूं बेटा, मैं तो केशिनी को देखकर रोती रहती हूं। ऐसी सुशील है कि उसने आज तक कभी किसी के लिए कोई कड़वा बोल नहीं निकाला। ऐसी कुलीन और धनी घर की, फिर भी उसने कभी अभिमान नहीं किया। हमेशा लाज-पर्दे से रहती है। जिस दिन से मेरा विनोद मरा उस दिन से उस बेचारी ने यह नहीं जाना कि सुखी जीवन किसे कहते हैं। परमात्मा की कृपा से मेरे घर में धन की कमी नहीं। ज़मीन जायदाद बहुत बड़ी है इससे केशिनी चाहे तो राजकुमारियों की तरह रह सकती है; लेकिन विनोद की मौत के बाद सदा सादे कपड़े पहनना और सीधा-सादा खाना पेट में डालना उसका नियम-सा बन गया है। हमेशा घर के काम-काज में लगी रहती है और जब घर के सब लोग खा पी चुकते हैं तब कई बार कहने से खाने के लिए बैठती है। मैं आग्रह करके कुछ खाने की चीजें देती हूं। उनको भी मैं बाद में इधर-उधर रखी हुई पाती हूँ। जब मैं पूछती हूं कि केशिनी तू ऐसा क्यों करती है तो वह विनोद की याद करके रोने लगती है। होली, दिवाली आदि त्योहारों पर उसके आंसू मेरे हृदय के बांध को भी तोड़ देते हैं। उसको कुछ खिलाना-पिलाना मेरे लिए बड़ा मुश्किल हो जाता है। जब वह रोती रोती यह कहती है कि अब उनके बिना मुझे ये चीजें भाती नहीं, तो मेरा कलेजा मुँह को आता है। लेकिन भाग्य का लिखा आंसुओं के खारे पानी से भी धुल नहीं सकता। वह ऐसी ही किसी स्याही से लिखा होता है।"

मनोरमा यह कहकर चुप हो गई।

रामू ने कहा, "चलो मां, अब चलें।"

मनोरमा उठ बैठी और तीनों मोटर में बैठे हुए गंगा के किनारे उस

जगह आए जहां भूचाल के समय मनोरमा और अवधबिहारीलाल नाव में बैठे हुए गंगा की सैर कर रहे थे। मनोरमा ने रामू और दीनू को वह जगह बताते हुए कहा, "भूचाल के समय हमारी नाव वहां थी। हम गंगा का दृश्य देख रहे थे और दूसरी कई नावें भी हम से कुछ दूर चल रही थीं। जाड़े के दिन धूप अच्छी मालूम दे रही थी। लोग कहते हैं कि पहिले बड़े ज़ोर की गड़गड़ाहट और सनसनाहट की आवाज़ आई जैसी ज़ोर की आंधी आने से पहिले आया करती है। उसके बाद ज़मीन हिलनी शुरू हुई, लेकिन हमारे पास तो कुछ ही दूर पर अगनबोट का शोर बड़े ज़ोर से हो रहा था। बहुत मुमकिन है कि भूचाल की गड़गड़ाहट और सनसनाहट उसमें डूब गई हो। कुछ भी हो मैंने तो इतना ही देखा कि हमारी नाव पानी के ऊपर बहुत ऊंची उठी। मैंने नीचे गंगा की धारा पर निगाह डाली तो मालूम हुआ कि गंगा की धारा ही इतनी ऊंची उठ गई थी। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और भय लगा। मैंने पूरी धारा पर निगाह डाली तो देखा कि गंगा का दूसरा किनारा पास आगया था और उसकी तरफ़ पानी नदी के भण्डारे में से उछलकर हमारी तरफ़ के किनारे पर ऊंचा खड़ा होगया था। इसके बाद मैंने देखा कि किनारे के मकान बड़े ज़ोर से लहरा रहे थे। उनके ऊपर के कुछ भाग मैंने टूटते हुए देखे। इतने में मुझको मालूम हुआ कि हमारी नाव शायद किसी चट्टान पर बहुत ऊंचाई से गिर पड़ी और टुकड़े-टुकड़े होगई। मैं बेहोश होती जा रही थी, क्योंकि मुझको बड़े ज़ोर की धमक लगी थी। इस आधी बेहोशी में मैंने अनुभव किया कि हमारी नाव शायद घाट के पत्थरों पर गिरकर टूटी है। मेरे कानों में मकानों के गिरने की आवाजें भी आ रही थीं, किन्तु मेरी आंखें बन्द थीं और मैं पानी में डूब रही थी। मैंने समझा कि शायद प्रलय हो गई है और मैं उसी में मर रही हूँ। भय के मारे मैं सन्न हो गई और मेरी थोड़ी सी बाकी बची हुई चेतनता भी जाती रही। उसके बाद तो मेरी आंखें साधु रामदास की झौंपड़ी में जाकर ही खुलीं।"

रामू ने कहा, "तो आपको यह बिल्कुल याद नहीं कि आपने गंगा

में से निकाले जाने पर किनारे की बालू में धूप में पड़े-पड़े कुछ हाथ पैर हिलाए थे।"

मनोरमा ने कहा, "नहीं, मुझे जीवन का भान तो उस समय कुछ हुआ था, लेकिन हाथों और पैरों की गति याद रखने लायक चेतनता तो मुझमें थी ही नहीं।"

मनोरमा ने रामू और दीनू की ओर एक बार फिर कृतज्ञता की दृष्टि से देखा और कहा, "मैं आज आप लोगों की कृपा से तो जिन्दा हूँ; लेकिन अगर आप लोगों ने मुझको गंगा में से न निकाला होता तो शायद ज़्यादा अच्छा होता। इससे मुझको कई लाभ होते। एक तो मुझे विनोद और शान्ता की मौत का दुख न देखना पड़ता। दूसरे मुझे स्वयं भी अपने जीवन का दुखपूर्ण हिस्सा रो रोकर बिताने का अवसर न मिलता।"

रामू ने कहा, "मां, बाबू जी ने यह क्या किया? इस उम्र में आ कर उनको यह क्या सूझी? परमात्मा ने जब आपको जिन्दा बचा दिया था तो उनको आपको दुखी न करने का ख़याल तो रखना ही था। फिर विनोद और शान्ता की मृत्यु के दुख को न जाने वे इतनी जल्दी कैसे भूल गए? ऐसे समझदार आदमी भी ऐसी बातें कर डालते हैं यह अचम्भे की बात है। इससे हमको तो बड़ा दुख होता है।"

मनोरमा ने कहा, "बेटा, मेरा ख़याल है कि इससे उनकी जिन्दगी ही ज़्यादा दुखभरी हो जायगी। अभी तो उनके सामने बहुत सी मुसीबतें आयेंगी। जब रम्भा के बच्चे होंगे और ज़मीन-जायदाद के झगड़े खड़े होंगे तो उनको यह अनुभव होगा कि उन्होंने दूसरा विवाह करके भूल की थी।"

रामू ने कहा, "परमात्मा वह दिन न लाए। हम तो उनसे यही प्रार्थना करेंगे। हम नहीं चाहते कि आपका परिवार किसी संकट में फंसे और उसको कोई बुरा दिन देखना पड़े।"

मनोरमा ने एक ठंडी सांस ली और कहा, "अच्छा चलो, अब घर चलें। हमने काफ़ी देख लिया।"

{ ५ }

रम्भा को यह बहुत बुरा लगा कि मनोरमा के साथ केशिनी और शीला सिनेमा देखने गईं; किन्तु उसको किसी ने भी यह तक नहीं पूछा कि वह भी सिनेमा चलेगी या नहीं। इससे उसके हृदय में खटास पैदा होगया। खटास किसके लिए? मनोरमा के लिए ही नहीं, शीला और केशिनी के लिए भी। उसने सोचा कि आखिर ये सब तो एक हो गईं। मनोरमा उनकी सास है और वे मनोरमा की बहुएं। अब अकेली रह गई तो केवल रम्भा। इससे उसके आत्माभिमान पर ठेस पहुंची। किन्तु इससे भी ज़्यादा ठेस पहुँचाने वाली एक बात उसको और अनुभव हो रही थी। वह यह थी कि अवधबिहारीलाल उन सबको लेकर सिनेमा गए थे। इस खयाल के आते ही उसके हृदय का खटास कटुता में बदल गया। उसके हृदय ने कहा, "रम्भा, जब ये लोग तेरी पर्वाह नहीं करते तो तू ही इनकी पर्वाह क्यों करती है? इसमें दुखी होने की बात भी कुछ नहीं है। जब तू इनके सुख में कांटा बनकर बाधक हुई है तब यदि ये तेरे सुख में कांटा बन जाएं तो तुझको शिकायत क्यों होनी चाहिए? यह तो न्याय है। तेरे मां तथा बाप ने तेरे साथ दग़ा की जो तुझको इस विषम स्थिति में ला पटका। अब उसका दण्ड तू न भुगतेगी तो दूसरा कौन भुगतेगा? मां तथा बाप की भूलों का प्रतिफल या तो मां तथा बाप स्वयं भोगते हैं या उनकी सन्तानें। इस भूल में तेरे मां तथा बाप को प्रतिफल भुगतने की गुंजाइश नहीं। वे तो तुझको मंझधार में बहाकर अलग होगए, लेकिन इसका दुखद फल तो तुझको ही भुगतना

पड़ेगा।" यह अनुभव करके रम्भा का हृदय विषाद से भर गया।

प्राणी जब निराश हो जाता है तो दो मार्ग उसके सम्मुख खुले होते हैं। एक वह जो उसे आत्म-विनाश की ओर ले जाता है और दूसरा वह जो उसको अपने विरोधी के विनाश की ओर ले जाता है। रम्भा को इस समय निराशा हुई थी और वह कोई नीचे दर्जे की निराशा नहीं थी। भला जिस घर में स्त्री विवाही गई है उसमें ही उसको कोई न पूछे तो उसको निराशा न होगी तो और किसको होगी? लड़कियां वैवाहिक सुखी जीवन की जो कल्पनाएं पहिले से करके रखती हैं उनके ऊपर यह तुषार-पात होता है। रम्भा की वैवाहिक सुखी जीवन की कल्पना पर भी यह तुषार-पात था। उसने अब वैवाहिक सुखी जीवन की आशा छोड़ दी थी। पति उसकी कल्पना का था नहीं। सास उसका मिली नहीं, जो उसका सुख-दुख पूछती। सौत थी जो उसको देखते ही राख होती थी। (कम से कम वह तो उसके बारे में यही समझती थी)। अब रह गईं शीला और केशिनी। वे तो उसकी पुत्र-वधुएं ही तो थीं। वे भला अपनी सास को छोड़कर उसके साथ कैसे सहानुभूति रख सकती थीं। ऐसी स्थिति में रम्भा को अपनी कल्पना की सुख-वाटिका को हरा-भरा रखने का कोई उपाय सूझता नहीं था। इसकी उसको कोई आशा भी नहीं थी। उसने आत्म-विनाश के मार्ग को ग्रहण करना ठीक समझा नहीं। उसने उपेक्षा से अपने आपको कहा, "रम्भा, किसी दुख से दुखी होकर प्राण दे देना तो कायरता है। यदि तूने अवधविहारीलाल को चुनौती दी है तो तुझे उसको वापिस नहीं लेना चाहिए। यदि तू ऐसा ही करेगी तो तू अपनी इज़्ज़त खो देगी। जो स्त्री अपने पति के सामने किसी बात पर हठ करके उसे जल्दी ही छोड़ देती है वह अपने पति पर अपना असर कायम नहीं रख सकती। अपना हठ पूरा करने का आग्रह स्त्री का स्वभाव होना चाहिए, अन्यथा वह स्त्री, स्त्री नहीं समझी जाएगी, उसकी गिनती लौंडियों और बांदियों में होने लग जाएगी। युवती स्त्री अपने बूढ़े पति के हृदय पर राज्य करती है तो वह नम्रता का हथियार लेकर नहीं, दुर्विनीतता का

हथियार लेकर, क्योंकि वह जानती है कि उसका पति उसके इस हथियार के वार को संभाल नहीं सकता और नम्रता से वह उसका शासन नहीं मान सकता। नम्रता का हथियार उसकी सम्मति में वह हथियार होता है जिसको दुर्बल प्राणी अपने से सबल प्राणी पर चलाता है और दुर्विनीतता का हथियार वह हथियार होता है जिसे कोई भी सबल प्राणी दुर्बल प्राणी पर बेखटके चला सकता है।"

उसकी दृष्टि में इससे भिन्न नीति विजय की नीति नहीं हो सकती थी। इन ख़यालों के होते हुए रम्भा अवधबिहारीलाल के सामने घुटने टेककर यह कैसे कह सकती थी कि 'मुझे आप क्षमा करें। मैंने अज्ञान-वश आपका तिरस्कार किया है।' उसे तो यह धोखा हो रहा था कि उसने अपने पति की जो उपेक्षा की उसका कारण अपने पति के प्रति उसका अप्रेम नहीं था, बल्कि मनोरमा की हित-कामना थी; किन्तु अब उसका कुछ-कुछ यह ख़याल होने लगा था कि उसको मनोरमा की हित-कामना से प्रेरित होकर यह कदम उठाना आवश्यक नहीं था। जब मनोरमा उसकी इतनी भी पर्वाह नहीं करती थी कि उसको अपने साथ सिनेमा चलने के लिए सामान्यतः पूछ भी सके तो उसको भी यह ज़रूरत नहीं थी कि वह उसको अवधबिहारीलाल का प्रेम वापिस दिलाने के लिए अपने सुख की चिन्ता भी छोड़ देती। यह खयाल आने पर उसको ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह ठीक मार्ग पर से भटक गई थी, किन्तु अब वह उस पर वापिस कैसे जा सकती थी? अन्त में रम्भा ने निराश व्यक्ति का वह दूसरा रास्ता स्वीकार किया जो उसको अपने विरोधी के विनाश की ओर ले जाता था। उसने अपने मन में कहा, "अच्छा रम्भा, तू यदि अपना सुख खो देगी तो मनोरमा और अवधबिहारीलाल को भी सुखी न रहने देगी। यदि तू अवधबिहारीलाल को अपने दुर्विनीतता के हथियार से झुकाने में असमर्थ हो जाए तो तुझको भी इनको ऐसा परेशान करना चाहिए कि इनको छठी का दूध याद आजाए।"

रम्भा ने जब यह फैसला किया तब उसने सुना कि किसी ने उसके

दरवाज़े पर आकर थपकी दी है। नौकर ने थपकी सुनकर किवाड़ खोल दिए। उसने देखा तो सुशील बाबू साइकिल लिए खड़े हैं। नौकर ने बैठक खोल दी और साइकिल लेकर भीतर रख दी। उसके बाद रम्भा को उनके आने की इत्तिला दी। रम्भा उस समय सोने की तैयारी कर रही थी। सुशील बाबू का जो नाम सुना तो उसको अपने हृदय में एक गुद-गुदी सी पैदा होती हुई मालूम दी। उसने सोचा, "रम्भा, यह तेरी सौत का लड़का है। तू इसके आने से इतनी खुश क्यों होती है?" किन्तु वह यह समझ ही न सकी कि इसका कारण आखिर क्या था। फिर भी वह तुरंत बैठक में आई और सुशील के पास आकर कुर्सी पर बैठ गई।

सुशील ने कहा, "मैं अभी दफ्तर से काम खत्म कर घर आया तो मालूम हुआ कि वहां तो कोई नहीं है। केवल नौकर था। उसने कहा कि मां कह गई हैं कि वे सब सिनेमा जायेंगी, वह आकर खाना खाले और सो जाए। खाना ठंडा होगया था, मुझे खाने की इच्छा ही नहीं हुई। फिर जब मुझे मालूम हुआ कि वे सब तो सिनेमा चली गईं, लेकिन आपको नहीं ले गईं तो मुझसे न रहा गया। मुझको यह बहुत बुरा लगा। मुझको यह सन्देह हुआ कि आज कुछ न कुछ घटना ज़रूर घटी होगी, वर्ना ऐसा कभी हो नहीं सकता था। इसलिए मैं आपके पास चला आया, ताकि मुझको यह संतोष हो जाए कि वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं है और आप किसी निजी मजबूरी के कारण ही उनके साथ नहीं गई हैं।"

रम्भा को यह जानकर अपने हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई कि आखिर एक व्यक्ति ऐसा निकल ही आया जो उसकी बात पूछ सकता है। नहीं इतना ही नहीं, वह यह बात पूछने के लिए अपना खाना और आराम भी छोड़ सकता है। उसके मन में सुशील के लिए अब पहिले से बहुत अधिक अवकाश हो गया मालूम होता था। उसने हंसकर उत्तर दिया, "नहीं, सुशील बाबू, कोई खास अप्रिय घटना नहीं घटी। मैं सिनेमा देखने जाना भी नहीं चाहती थी, क्योंकि मैं अब बहुत कम इधर-उधर..

जाती हूं।"

सुशील ने पूछा, "लेकिन क्या यह सच है कि उनमें से किसी ने भी आपको सिनेमा चलने के लिए नहीं कहा?"

रम्भा ने सोचा कि साफ़ बात कहने में कुछ हर्ज नहीं। फिर भी उसने बात को टालना ठीक समझा। उसने कहा, "लेकिन आप इतनी सी मामूली बात जानने के लिए रात के दस बजे क्यों हैरान हुए?"

सुशील इस उत्तर पर कुछ गम्भीर हो गया और बोला, "मौसी जी, मेरे लिए तो यह बात 'मामूली' नहीं है। मैं तो इसको गम्भीर बात ही समझता हूँ। इससे हृदय में अनावश्यक मैल उत्पन्न होता है न। मैं तो यह सहन नहीं कर सकता; लेकिन यह तो बताइए कि क्या पिता जी ने भी आपको यह नहीं कहा कि वे सब सिनेमा जा रहे हैं?"

रम्भा ने कहा, "हां, उन्होंने तो कहा था।"

"फिर आप क्यों नहीं गईं?" सुशील ने पूछा।

रम्भा ने कहा, "मुझे उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम भी चलो। उन्होंने मुझे सिर्फ़ इतना ही कहा कि आज वे मनोरमा, शीला और केशिनी के साथ सिनेमा देखने जा रहे हैं।"

सुशील ने कहा, "मुझे आश्चर्य है कि पिता जी के इस व्यवहार का क्या कारण है। क्या आज आपने उनको कुछ कह दिया था?"

अब रम्भा के लिए ज़्यादा छिपाना कठिन हो गया। उसने सुशील के सामने अपना हृदय खोल डाला। न जाने सुशील ने उसके ऊपर क्या जादू कर दिया था। उसने उसके सामने अपने हथियार डाल दिए और सारा भेद उसको बता दिया।

सुशील ने रम्भा और अपने पिता के बीच के विरोध को सुनकर और उसके कारण को जानकर आश्चर्य प्रकट किया और कहा, "लेकिन मौसी जी, आपको मेरी मां की परवाह नहीं करनी चाहिए। मेरी मां का हृदय तो अब आपकी तरफ़ से बिल्कुल साफ़ हो गया है। जो कुछ हुआ उसमें वे आपका तो रत्ती भर भी दोष नहीं समझतीं। उनका तो कहना यह

है कि जो कुछ भूल हुई है वह मेरे पिता जी से ही हुई है, लेकिन अब तो वह बात भी नहीं रही है। उनका रोष पिता जी पर अब उतना नहीं है। अब तो वे पिता जी को कुछ कहतीं ही नहीं। पिता जी जो कुछ करते हैं उस पर उनको कोई ऐतराज़ नहीं होता। बल्कि आपको मैं कहना तो नहीं चाहता था; किन्तु जब बात आगई है तो कहता हूं कि पिता जी ने आपको जो सोने की नये नमूने की चूड़ियां लाकर दी हैं, वे मेरी मां की ही पसन्द की हुई हैं और उन्होंने ही अपने पास में उनके रुपए दिए हैं। उन्होंने पिता जी को खास तौर से यह हिदायत की थी कि वे आपको यह बात न बताएं, क्यों कि मां को डर यह था कि अगर यह बात शीला को मालूम होगी तो वह कम से कम इतना तो जरूर कहेगी कि ये चूड़ियां तो मैं लूँगी और चूँकि बाज़ार में दूसरी जोड़ इस नमूने की थी नहीं, इसलिए उसकी ज़िद पूरी करना मुमकिन नहीं था। यह बात मैंने इसलिए कही है ताकि आपको यह मालूम हो जाए कि हमारे परिवार का कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि आपके साथ कोई भी ऐसा व्यवहार हो जैसा एक परिवार के भीतर नहीं होना चाहिए।"

रम्भा ने कहा, "फिर ये चूड़ियां बाज़ार से कौन लाया था?"

सुशील ने सकुचाते हुए कहा, "मैं।"

रम्भा के कानों में यह 'मैं' शब्द न जाने क्यों विशेष रूप से अमृत सा उडेलता हुआ जान पड़ा। उसको इस उत्तर को सुनकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई। लेकिन उसने इस प्रसन्नता को छुपाने की पूरी कोशिश की। उसने अपनी मुखाकृति पर गम्भीरता लाने की कोशिश की; लेकिन उस गम्भीरता में भी उसकी प्रसन्नता प्रकट थी। मनुष्य का मुख वह कांच होता है जिसमें उसका हृदय प्रतिबिम्बित होता रहता है। यदि हृदय में प्रसन्नता है तो वह मुख पर अवश्य झलकेगी और यदि हृदय में विषाद है तो वह भी अपनी छाया मुख पर अवश्य फेंकेगा। रम्भा की प्रसन्नता की झलक भी उसके मुख पर आगई थी। रम्भा ने अन्त में विषय बदलने के लिए कहा, "चलो उठो सुशील बाबू, दूध

गर्म रखा है और अभी कुछ खाना भी गर्म है। तुम पहिले खाना खा लो, ये बातें पीछे भी हो सकती हैं।"

सुशील ने कुछ नहीं कहा। वह रम्भा के साथ हो लिया। रसोईघर के पास रम्भा का अपना कमरा था। रम्भा सुशील को उसी में ले आई और एक मेज़ पर बिठा दिया। मेज़ पर एक बड़ा कांच लगा था। सुशील का ध्यान उसकी ओर गया भी नहीं। वास्तव में वह हृदय का गम्भीर था। उसमें चंचलता थी ही नहीं; इसलिए वह कुर्सी पर उसी अपनी स्वाभाविक गम्भीरता को लिए हुए बैठ गया।

रम्भा ने सुशील को पहिले पानी लाकर दिया। उसके बाद वह खाना लाई। उसने अवधबिहारीलाल के जाने के बाद अभी तक अपना खाना खाया न था और वह नौकर ने इस प्रकार से बंद करके रख दिया था कि उसमें अधिक से अधिक समय तक गर्मी और ताज़गी बनी रहे। रम्भा ने आज खाना बड़े चाव से बनाया था। खास तौर से कटहल का शाक बहुत अच्छा बना था। पूड़ियां बहुत हलकी और सफ़ेद बिल्कुल फूली सी रखी थीं। उसमें जो चीजें थीं वे एक थाल में रकाबियां और कटोरियां सजाकर यथा-स्थान जमा दीं और सुशील के सम्मुख रख दीं। उसने जल्दी से अंगीठी सुलगाई और उसमें कुछ चीजें गर्म करके पापड़ सेंक दिया। इस तरह उसने सुशील को बड़े प्रेम से भोजन कराया। यहां तक उसकी तन्मयता थी कि उसको यह ख़याल तक न रहा कि उसकी साड़ी उसके शिर पर से खिसक गई है और जमीन पर लोट रही है। वह सब चीजें परोसने के बाद सुशील के पीछे की ओर खड़ी होगई और दर्पण में कुछ देखने लगी। उसने दर्पण में खाना खाते हुए सुशील को देखा और फिर अपने शरीर की प्रत्याकृति देखी। सुशील और अपने में उसको कोई बड़ा अन्तर न मालूम पड़ता था। दोनों की आयु लगभग एक थी। सुशील युवा था और वह युवती थी। सुशील का शरीर भरा हुआ और गठीला था और उसका भी वैसा ही भरा हुआ और गठीला था। उसने अपने मन में कहा,'कौन ज़्यादा सुन्दर है—मैं या सुशील?' उसने कहा,

'सुशील में जो सौन्दर्य, सरलता और मधुरता है वह मुझ में नहीं है; लेकिन आंखें और ओंठ तो मेरे ही सुन्दर हैं।' उसने सुशील की सुन्दरता की अपने मन में प्रशंसा की और अन्त में यह अनुभव किया, 'कुछ भी हो, सुशील को मैं पसन्द करती हूं।'

रम्भा को सुशील के पीछे इस तरह मौन खड़े-खड़े बहुत देर हो गई। सुशील की आंखें नीची थीं और वह दत्त-चित्त होकर खाना खाने में लगा था। उसको यह बिल्कुल ख़याल न था कि कोई व्यक्ति उसकी उस शोभा पर मस्त हो रहा है। उसने गिलास का पानी पी लिया था। अब गिलास खाली था। उसने रम्भा को पुकारकर कहा, "मौसी जी, पानी चाहिए।"

रम्भा मानो नींद से जाग गई। उसने कहा, "लाई अभी।" उसने साड़ी संभालकर शिर पर डाली, सुराही में से पानी भरा और सुशील के हाथ में गिलास दे दिया। उसने देखा कि सुशील की दृष्टि वैसी ही नीची है और वह अब भी गम्भीर है। रम्भा का चेहरा किसी अज्ञात प्रसन्नता से खिल रहा था। उसकी आंखों में चमक बढ़ गई थी। उसको ऐसा प्रतीत हो रहा रहा था मानो उसने कोई खोई हुई निधि पा ली हो।

सुशील ने खाना खा लिया और कुछ ठहरकर कहा, "तो अब चलूं। खाना बहुत अच्छा था और ताज़ा भी था। घर पर शायद पेट भी न भरता। यहां तो आपने बहुत ज्यादा खिला दिया।"

रम्भा ने कहा, "बहुत ज्यादा? यह भी कोई बहुत ज्यादा खाना था। सुशील, तुमको खाना खिलाते हुए आज मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई है। क्या तुम कभी-कभी यहां खाना नहीं खा सकते?"

सुशील ने कहा, "क्यों नहीं? मैं तो कभी भी आ सकता हूं। देखिए आज आगया न! मेरे लिए तो जैसा वह घर वैसा यह घर।" यह कह कर सुशील उठा।

रम्भा को याद आया कि उसने उसको पान तो दिया ही नहीं। उसने तुरंत कहा, "अभी ठहरो, पान देना तो मैं भूल ही गई।"

सुशील ने कहा, "अच्छा, लाइए। वह भी खाता जाऊंगा।"

रम्भा पान लाई और सुशील ने उसको मुँह में रखकर पग आगे की ओर बढ़ाए। रम्भा उसको पहुंचाने के लिए द्वार तक आई। सुशील ने चलते-चलते उसको नमस्ते की और कहा, "आप आज की घटना को याद न रखें और मेरी मां की ओर से अपना हृदय साफ कर लें। वे आपके और पिता जी के बीच में आने की कोई जरूरत नहीं समझतीं।"

रम्भा ने कहा, "लेकिन मैं तो ज़रूरत समझती हूं। मैं यह सहन नहीं कर सकती कि उनको मेरे कारण किसी प्रकार का कष्ट पहुंचे। मैं किसी के साथ भी अन्याय होते नहीं देख सकती।"

सुशील ने कहा, "मौसी जी, यह तो आपका खयाल ठीक नहीं है कि इससे उनके साथ कोई अन्याय होता है। जब वे स्वयं ही कोई बात चाहती हैं और वह होती है तो इसमें अन्याय का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप पिता जी से किसी प्रकार की खट-पट न करें।"

यह कहकर सुशील चल दिया और रम्भा द्वार पर खड़ी रह गई, वह लैम्प की रोशनी में उसको कुछ दूर तक जाता देख रही थी। उसके बाद वह जब अंधकार में छुप गया तब वह एक ठंडी सांस लेकर उस ओर से आंख हटाकर कुछ सोचने लगी। उसने अपने हृदय में कहा, "सुशील सुन्दर है। वह कितना भला लगता है। उसका कोमल मुख, उसके काले रेशम की लच्छी जैसे बाल और शरीर का सुन्दर गठन कितने आकर्षक मालूम होते हैं। मुझे तो इच्छा होती है कि सुशील यहां मेरे पास ही बना रहे। मुझको उसके अभाव में अब बेचैनी सी मालूम होती है।"

रम्भा के पैर अब घर में भीतर की ओर न जाते थे। उसने अनुभव किया कि सुशील उसके हृदय में घुस गया है और अब निकलता नहीं है। उसकी सुन्दरता ने रम्भा के ऊपर जादू कर दिया था। वह पागल सी हो रही थी। नौकर ने कहा, "अब दस से ज़्यादा वक्त हुआ, आज आप सोएंगी नहीं क्या?"

रम्भा ने पैर मजबूरन घर के भीतर की ओर बढ़ा दिए। लेकिन उसको ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उनमें कोई लोहे की बेड़ियां डाल गया हो। वे अब भीतर को जाना नहीं चाहते थे।

रम्भा ने सोचा,'यह मुझे क्या हो गया है? मैं ऐसी पागल सी क्यों हो गई हूं?' रम्भा को मालूम हुआ कि वह अपनी सौत के बेटे से मन ही मन में प्रेम करने लग गई है। उसने देखा कि वह अपने मन में अवधबिहारीलाल की नहीं, सुशील की पूजा कर सकती है। जहां वह अवधबिहारीलाल से अपने आपको अलग रखना चाहती थी वहां अब वह सुशील के पास से हटना कष्टकर समझती थी। उसने तुरंत सोच लिया कि वह सुशील को हर रोज अपने घर एक ही उपाय से बुला सकती है और वह उपाय यह है कि वह बाबू अवधबिहारीलाल को कहकर सुशील को अपना शिक्षक बना ले। इसके लिए न तो अवधबिहारीलाल ही इन्कार कर सकते थे और न सुशील ही कुछ आना-कानी कर सकता था।

(६)

अवधबिहारीलाल ने रम्भा की यह बात मान ली कि सुशील उसे अंग्रेजी पढ़ा जाया करे। उन्होंने सुशील से रम्भा को किसी भी वक्त अंग्रेजी पढ़ाने के लिए कहा और सुशील ने उसमें कोई आपत्ति नहीं की। निदान रम्भा का अंग्रेजी-शिक्षण आरम्भ हो गया। वह आठवीं श्रेणी तक पहिले अंग्रेजी पढ़ चुकी थी। उसने सचमुच अंग्रेजी सीखने में दिलचस्पी लेनी शुरू की। सुशील को प्रसन्नता थी कि रम्भा की स्मरण-शक्ति अच्छी है। वह दिया हुआ पाठ अच्छी तरह तैयार करके लाती थी और अवधबिहारीलाल भी उसकी प्रगति से संतुष्ट थे। इस प्रकार यह शिक्षक की नई व्यवस्था व्यवस्थित रूप से चलाई जाने लगी। सुशील को कई बार खाना रम्भा के घर ही खाना पड़ता और सुशील उसमें कोई टालमटूल न कर सकता था। रम्भा सुशील को बड़े प्रेम से चीजें बनाकर खिलाती और उससे बड़े प्रेम से बोलती; लेकिन सुशील का तो जैसा स्वभाव अपने घर था वैसा ही यहां भी था। वह वहां शीला की तरफ़ अधिक ध्यान न देता था तो यहां भी रम्भा के मुँह की तरफ़ कभी आंखें भरकर नहीं देखता था। सम्भवतः सुशील की इस वृत्ति ने ही रम्भा को उसकी ओर आकर्षित भी किया हो। उसकी गम्भीरता वास्तव में मोहक थी। उसको ऐसा प्रतीत होता था कि सुशील अब लड़कपन को त्यागकर युवा पुरुष का गौरव प्राप्त कर रहा है। जिस प्रकार गम्भीर स्त्री को पाकर पुरुष आत्म-गौरव का भाव अनुभव करता है उसी प्रकार स्त्री भी गम्भीर पुरुष के साथ आत्म-गौरव का भाव अनुभव करती है। कोई भी गम्भीर

पुरुष छिछोरी, गम्भीरताहीन स्त्री को पाकर प्रसन्न नहीं हो सकता। इसी प्रकार स्त्री भी छिछोरे और गम्भीरताहीन पुरुष को पाकर प्रसन्न नहीं हो सकती। रम्भा सुशील की इस गम्भीरता पर लट्टू थी। उसकी सुन्दरता उसकी गम्भीरता के साथ मिलकर द्विगुणित हो गई थी।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी थी। पति और पत्नी की आयु में अधिक भेद का होना खटकता है। रम्भा और अवधबिहारीलाल की आयु में बहुत अधिक भेद था। यह रम्भा को खटकता था। अवधबिहारीलाल के प्रति उसके हृदय में प्रेम के अभाव का कारण यही था; किन्तु रम्भा और सुशील लगभग एक ही आयु के थे, मानो दोनों खेल के साथी हों। रम्भा को ऐसा अनुभव होता था मानो सुशील का उससे मौसी का सम्बन्ध अनुचित है। उसकी दृष्टि में इसके लिए उसकी और सुशील की उम्रों के बीच मां और बेटे की उम्रों का सा अनुपात होना आवश्यक था। सुशील उसको 'मौसी जी' कहता तो उसका हृदय भीतर ही भीतर झुंझला जाता और कहता, 'सुशील रम्भा को मौसी क्यों कहता है? वह तो उसकी मां के समान है नहीं।' वह बहुत कोशिश करने पर भी यह अनुभव न कर पाती थी कि सुशील उसके बेटे के समान है। फिर वह तो अभी कुछ पहले तक स्वयं बेटी बनकर रही थी। उसके पास मां का हृदय तो था ही नहीं। बेटा क्या होता है यह अनुभव करना उसके लिए अभी दूर की बात थी। फिर वह सुशील के प्रति अपने हृदय में बेटे का भाव कैसे ला सकती थी! वह यह भली भांति जानती थी कि वह सुशील की मौसी है, किन्तु उसका हृदय इस सम्बन्ध को पसन्द न करता था। उसमें इसके लिए उसको ढूँढ़ने पर भी गुंजाइश न मिलती थी।

रम्भा ने सोचा, 'सुशील मुझे प्यारा लगता है; लेकिन पुत्र के रूप में नहीं। मैं उसकी समीपता चाहती हूँ; लेकिन मां और बेटे के समान नहीं। मैं उसको बेटे के रूप में गोद में नहीं ले सकती। उसके प्रति बेटे का प्रेम मैं अपने हृदय में से नहीं उत्पन्न कर सकती। मेरे लिए यह कार्य असम्भव है। तब उसने निश्चय किया कि सुशील से कोई दूसरा

सम्बन्ध रखा जाए; किन्तु दूसरा सम्बन्ध क्या हो सकता था ? उसको खयाल आया कि क्या सुशील और उसके बीच भाई और बहिन का सा प्रेम नहीं हो सकता, वह कुछ देर सोचने के लिए ठहरी; फिर उसने फैसला किया—'नहीं यह नहीं हो सकता।' उसका हृदय कहता था कि वह सुशील को भाई से भी ज़्यादा प्यार करती है। उसको अपने भाई महेश से कदापि इतना प्रेम नहीं था। वह महेश को कभी याद नहीं करती थी; लेकिन सुशील के सामने से हटते ही उसको बेचैनी होने लगती थी। फिर वह उसको भाई कैसे मान सकती थी ? उसने कई सम्बन्ध अपने मन में सोचे, किन्तु उसको कोई भी सम्बन्ध ऐसा न जंचा जिसे उसका हृदय स्वीकार करता। वह प्रत्येक सम्बन्ध पर कुछ देर विचार करती और उसके बाद फैसला दे देती कि वह सुशील को जितना प्यार करती है, विचाराधीन सम्बन्ध में उतना प्रेम प्रकट करने की गुंजाइश ही नहीं है।

किन्तु इतना प्रेम-धन हृदय में छुपाए रखने पर भी वह उसको किसी को भी दिखा नहीं सकती थी। स्वयं सुशील को भी वह एक शब्द भी इस सम्बन्ध में कहने का साहस नहीं कर सकती थी। इसका कारण यह था कि वह उसको किस रूप में प्रेम करे, अभी तक इसका फैसला उसने नहीं किया था। उसको इस सम्बन्ध में सोचते-सोचते कई दिन हो गए। अन्त में एक दिन उसको मालूम हुआ कि सुशील को पाकर उसके हृदय की बेचैनी मिट गई है। वह अज्ञात रूप से धीरे-धीरे उसके हृदय में अपना स्थान बनाता जा रहा था और अवधबिहारीलाल को पीछे को हटाता जा रहा था। उसको यह ख़याल होगया था कि वह अब अवध-बिहारीलाल की जगह सुशील का ज़्यादा ख़याल रखती है और उससे ज़्यादा मिठास के साथ बोलती है। नौकर-चाकर और अवधबिहारीलाल सभी देखते थे कि रम्भा सुशील को खिलाने-पिलाने में ज़रूरत से ज़्यादा रस लेती है और उसको खिलाने के लिए खुद भी देर तक भूखी बैठी रहती है। निस्सन्देह उसका व्यवहार भयंकर रूप से सन्देहजनक था। किन्तु फिर भी चूंकि सुशील का चरित्र सन्देह से ऊपर था, इसलिए किसी

ने भी कभी यह ख़याल नहीं किया कि सुशील और रम्भा के बीच मां और बेटे के प्रेम से भिन्न कोई प्रेम होगा। सुशील की गम्भीरता, पवित्रता और नम्रता रम्भा के पाप-भाव का पर्दा बन गई थी।

रम्भा ने अनुभव किया कि वह सुशील को इतना अधिक प्यार करने लगी है जितना उसको करना अनुचित था। वह उसको देखकर हंसती, वह उससे खिलवाड़ करती, वह पुस्तक एक ओर रख देती और ताश खेलने का आग्रह करती, क्योंकि उसका मन अब पढ़ने में लगता न था। वह सुशील का हाथ पकड़ लेती और उसके कन्धों पर झुक जाती। सुशील कहता, 'मौसी जी, पढ़िए।' रम्भा कहती, 'अब तो मेरा मन नहीं लगता। आओ, थोड़ा हंस लें।' इस तरह प्रमाद में रम्भा का समय बीतता; लेकिन सुशील उसको इससे रोकता भी तो कैसे? वह चुपचाप बैठा रहता। जब वह छेड़खानी करती, तब सिकुड़ जाता और कहता, 'मौसीजी, आप तो ऊधम मचाती हैं।' किन्तु फिर भी वह उसको बर्दाश्त करता था। वह उसको प्रेम करता था और उसका हृदय दुखाना नहीं चाहता था। वह अपनी मां की भांति ही उसको प्रसन्न रखना चाहता था और उसके लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करता था। वह उसको कोई कड़वी बात न कहता था। किन्तु वह यह भी अधिक सहन न कर सकता था कि उसका समय भी खराब हो और रम्भा का भी। लेकिन रम्भा के लिए उसके अपने समय का कोई मूल्य न था और अपने मनोरंजन के लिए वह सुशील के समय की कोई परवाह न करती थी। इस प्रकार उन दोनों की गाड़ी चलती थी कुछ बेतुकी सी। वह पढ़ाना चाहता और वह पढ़ना न चाहती। वह हंसती और वह हंसना न चाहता। फिर भी दोनों एक दूसरे को निभाते थे।

जब सुशील कभी यह कहता, 'मौसी जी, मैं कल न आऊंगा,' तब रम्भा अधिकारपूर्ण ढंग से कहती, "नहीं सुशील तुमको आना होगा अन्यथा मेरा मन कैसे लगेगा। मैं तुम्हारे साथ घंटा-दो घंटा हंस-बोल लेती हूँ। इससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जाता है और मैं समझती हूं तुमको भी इससे कोई हानि नहीं। क्या तुम मेरी खातिर इतना भी नहीं कर सकते?"

सुशील कहता, "क्यों नहीं, मैं तो सब कुछ होगा । मुझको जो सन्देह आप कुछ पढ़ें भी तो । पिता जी पूछेंगे कि क्या पढ़ा तन्दय को साफ़ रखना पड़ेगा न ।" गी हैं । कोई बाल-

इसके उत्तर में रम्भा कहती, "सुशील, उनकी परवाह तुआखिर वे भी उनको प्रसन्न कर लेना तो मेरे बाएं हाथ का खेल है । वे मुझको अच्छा नाराज़ नहीं हो सकते ।" नेती हैं

और रम्भा का यह कहना भी सही था । उस दिन सिनेमा से आकरका अवधविहारीलाल ने जब रम्भा को आवाज़ दी तो वह बोली नहीं । उन्होंने उसको फिर कई बार पुकारा; किन्तु रम्भा तो बेफ़िक्र सोती थी और चूंकि सुशील खाना खाकर देर से गया था और उसके जाने के बाद भी उसकी प्रसन्नता के कारण देर तक नींद न आ सकी थी, इसलिए उसके बाद जब वह सोई तब उसको इतनी ज़्यादा ग़फ़लत हो गई कि वह अवधबिहारीलाल की आवाज़ों को न सुन सकी । साधारणतः वह सोती हुई एक आवाज़ में जग जाया करती थी। आज जब उन्होंने यह असाधारण बात देखी तो ख़याल किया कि अवश्य ही वह उनके उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण उनसे नाराज़ हो गई होगी, इसलिए वह जगती हुई होने पर भी शायद बोलना नहीं चाहती । वे तुरंत उसके कमरे में गए । वहां उन्होंने देखा कि रम्भा बेफ़िक्री की नींद सोरही है । उन्होंने उसको हाथ से हिला कर जगाया । रम्भा 'मुझको ज़ोर की नींद आ रही है' यह कहकर करवट बदल कर सो गई ।

अवधबिहारीलाल ने निश्चय किया कि अब वे रम्भा से नाराज़ न होंगे । आज शायद इसको उनके व्यवहार से अधिक दुख हुआ है । दूसरे दिन उन्होंने अपनी ओर से ही रम्भा की ख़ुशामद की और उसके सामने खुले हृदय से अपनी पराजय स्वीकर कर ली । उसके बाद इस बाज़ी में, जिसे प्रेम की बाज़ी कहा जाता है, उनकी जीत कभी नहीं हुई । हमेशा रम्भा ही उनसे जीतती और उनको हमेशा उसके सामने हार माननी पड़ती । यही कारण था कि रम्भा उनकी नाराज़ी की कोई परवाह न करती थी ।

ने भी कभी यह ख़याल नहीं किया कि सुशील और रम्भा के बीच मां और बेटे के प्रेम से भिन्न कोई प्रेम होगा। सुशील की गम्भीरता, पवित्रता और नम्रता रम्भा के पाप-भाव का पर्दा बन गई थी।

रम्भा ने अनुभव किया कि वह सुशील को इतना अधिक प्यार करने लगी है जितना उसको करना अनुचित था। वह उसको देखकर हंसती, वह उससे खिलवाड़ करती, वह पुस्तक एक ओर रख देती और ताश खेलने का आग्रह करती, क्योंकि उसका मन अब पढ़ने में लगता न था। वह सुशील का हाथ पकड़ लेती और उसके कन्धों पर झुक जाती। सुशील कहता, 'मौसी जी, पढ़िए।' रम्भा कहती, 'अब तो मेरा मन नहीं लगता। आओ, थोड़ा हंस लें।' इस तरह प्रमाद में रम्भा का समय बीतता; लेकिन सुशील उसको इससे रोकता भी तो कैसे? वह चुपचाप बैठा रहता। जब वह छेड़खानी करती, तब सिकुड़ जाता और कहता, 'मौसीजी, आप तो ऊधम मचाती हैं।' किन्तु फिर भी वह उसको बर्दाश्त करता था। वह उसको प्रेम करता था और उसका हृदय दुखाना नहीं चाहता था। वह अपनी मां की भांति ही उसको प्रसन्न रखना चाहता था और उसके लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करता था। वह उसको कोई कड़वी बात न कहता था। किन्तु वह यह भी अधिक सहन न कर सकता था कि उसका समय भी खराब हो और रम्भा का भी। लेकिन रम्भा के लिए उसके अपने समय का कोई मूल्य न था और अपने मनोरंजन के लिए वह सुशील के समय की कोई परवाह न करती थी। इस प्रकार उन दोनों की गाड़ी चलती थी कुछ बेतुकी सी। वह पढ़ाना चाहता और वह पढ़ना न चाहती। वह हंसती और वह हंसना न चाहता। फिर भी दोनों एक दूसरे को निभाते थे।

जब सुशील कभी यह कहता, 'मौसी जी, मैं कल न आऊंगा,' तब रम्भा अधिकारपूर्ण ढंग से कहती, "नहीं सुशील तुमको आना होगा अन्यथा मेरा मन कैसे लगेगा। मैं तुम्हारे साथ घंटा-दो घंटा हंस-बोल लेती हूँ। इससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जाता है और मैं समझती हूं तुमको भी इससे कोई हानि नहीं। क्या तुम मेरी ख़ातिर इतना भी नहीं कर सकते?"

सुशील कहता, "क्यों नहीं, मैं तो सब कुछ कर सकता हूँ; लेकिन आप कुछ पढ़ें भी तो। पिता जी पूछेंगे कि क्या पढ़ा तब आपको सकुचना पड़ेगा न।"

इसके उत्तर में रम्भा कहती, "सुशील, उनकी परवाह तुम न करो। उनको प्रसन्न कर लेना तो मेरे बाएं हाथ का खेल है। वे मुझसे कभी नाराज़ नहीं हो सकते।"

और रम्भा का यह कहना भी सही था। उस दिन सिनेमा से आकर अवधबिहारीलाल ने जब रम्भा को आवाज़ दी तो वह बोली नहीं। उन्होंने उसको फिर कई बार पुकारा; किन्तु रम्भा तो बेफ़िक्र सोती थी और चूंकि सुशील खाना खाकर देर से गया था और उसके जाने के बाद भी उसकी प्रसन्नता के कारण देर तक नींद न आ सकी थी, इसलिए उसके बाद जब वह सोई तब उसको इतनी ज़्यादा ग़फ़लत हो गई कि वह अवधबिहारीलाल की आवाज़ों को न सुन सकी। साधारणतः वह सोती हुई एक आवाज़ में जग जाया करती थी। आज जब उन्होंने यह असाधारण बात देखी तो ख़याल किया कि अवश्य ही वह उनके उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण उनसे नाराज़ हो गई होगी, इसलिए वह जगती हुई होने पर भी शायद बोलना नहीं चाहती। वे तुरंत उसके कमरे में गए। वहां उन्होंने देखा कि रम्भा बेफ़िक्री की नींद सोरही है। उन्होंने उसको हाथ से हिला कर जगाया। रम्भा 'मुझको ज़ोर की नींद आ रही है' यह कहकर करवट बदल कर सो गई।

अवधबिहारीलाल ने निश्चय किया कि अब वे रम्भा से नाराज़ न होंगे। आज शायद इसको उनके व्यवहार से अधिक दुख हुआ है। दूसरे दिन उन्होंने अपनी ओर से ही रम्भा की खुशामद की और उसके सामने खुले हृदय से अपनी पराजय स्वीकार कर ली। उसके बाद इस बाज़ी में, जिसे प्रेम की बाज़ी कहा जाता है, उनकी जीत कभी नहीं हुई। हमेशा रम्भा ही उनसे जीतती और उनको हमेशा उसके सामने हार माननी पड़ती। यही कारण था कि रम्भा उनकी नाराज़ी की कोई परवाह न करती थी।

वह यह बात भली भांति समझती थी कि जहां वह थोड़ी भी गम्भीर हुई वहां अवधविहारीलाल उसकी खुशामद करेंगे और जहां वह दो आंसू आंख की कोरों में भर लाएगी वहां बड़ी से बड़ी भूल साफ मिट जाएगी। फिर तो अवधविहारीलाल को यही कहते बनेगा, 'अच्छा, तो अब आगे से यदि वह भूल भी करेगी तो वे उससे उसकी शिकायत न करेंगे। उनको यह मालूम नहीं था कि उसका हृदय इतना कोमल है।'

स्त्री में वास्तव में ऐसी ही शक्ति होती है। वह पुरुष के हृदय पर रोष सूचक मौन और उत्ताप सूचक आंसुओं से राज्य करती है। पुरुष का पौरुष स्त्री के इन हथियारों के सामने हमेशा पराजित होता है; किन्तु जब स्त्री का यौवन चढ़ता हुआ हो और पुरुष का उतरता हुआ हो तब तो स्त्री हमेशा उसके ऊपर सवार ही रहती है। उस स्थिति में पुरुष यदि स्वाभिमानी नहीं है तो वह स्त्री का स्थान ले लेता है और स्त्री पुरुष का स्थान ले लेती है। यह स्थिति न पुरुष के लिए गौरव पूर्ण होती है और न स्त्री के लिए शोभाजनक। रम्भा और अवधविहारीलाल की स्थिति इसी प्रकार की थी। फिर वह अवधविहारीलाल की क्या परवाह करती?

सुशील अभी तरुण अवस्था को पार करके युवा अवस्था में दो पग ही बढ़ा था। वास्तव में उसको दुनियादारी का ज़्यादा अनुभव न था; किन्तु वह इतना अबोध भी न था कि रम्भा की आंखों से उसको कुछ सन्देह भी न होता। उसको रम्भा के रंगढंग देखकर कुछ सन्देह हुआ; किन्तु वह उन सबको ज़्यादा गम्भीर न समझता था। उसकी गम्भीरता में लजीलेपन का एक बड़ा भाग था। इसलिए उसको रम्भा पर जो सन्देह हुआ उसको वह अपने लजीलेपन के कारण प्रकट न कर सकता था। इस स्थिति में उसने अपने मन में कहा, 'मौसी जी अभी नासमझ सी हैं। अभी इनमें बहुत बचपन बाक़ी है। शायद इसलिए वे मुझसे अपनी सहज सरलतावश उलझती रहती हैं। एक तरह से इसमें कुछ हानि भी नहीं है। वे मेरी मां के बराबर हैं और मैं उनके लिए बेटे की

अगाह हूँ। इस हालत में उनका हृदय साफ़ ही होगा। मुझको जो सन्देह होता है वह निराधार हो सकता है। मुझे अपने हृदय को साफ़ रखना चाहिए। उनका हृदय वे साफ़ रखेंगी। वे घर में अकेली हैं। कोई बाल-बच्चे हैं नहीं, इसलिए वे मुझसे इतना प्यार करती हैं। आखिर वे भी तो मनुष्य हैं; चौबीसों घंटे गम्भीर और अकेला रहना भला किसको अच्छा लग सकता है? इस स्थिति में वे यदि मुझसे अपना मन बहला लेती हैं तो क्या बुरा करती हैं? फिर वे भी यही तो कहती हैं कि मुझसे उनका मनोरंजन हो जाता है। मुझसे ही उनको इतना सा सन्तोष मिल जाता है तो यह भी उनकी सेवा ही है। मुझे अपनी तरफ़ से इस सेवा का मार्ग खुला ही रखना चाहिए। यह सच है कि इसमें मेरा समय बर्बाद होता है; किन्तु अपनी मौसी के लिए, जो मुझमें इतना प्यार करती हैं, इतना सा वक्त बर्बाद करना कोई बड़ा त्याग नहीं है। यह तो मेरा कर्तव्य है। मैं अपनी खास मां की सेवा में भी तो कुछ समय देता ही हूँ। जब मुझे वह नहीं अखरता तो फिर यह क्यों अखरना चाहिए? मुझे तो अपनी दृष्टि में दोनों को समान समझना चाहिए और दोनों की एक समान श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिए। मुझे कोई भी ऐसा कार्य न करना चाहिए जिससे इनको दुःख हो। मैं तो परमात्मा से प्रार्थना करूंगा कि वह मुझमें यह भाव सदा बनाए रखे कि मैं अपनी माता और विमाता में सदा एक भाव बनाए रख सकूँ।'

(७)

आनन्दबिहारीलाल ने अदालत से आने के बाद रात को रामू और दीनू को भूचाल की कहानी इस तरह सुनाई—"भूचाल में बिहार के शहरों को जो हानि हुई वह देहातों की हानि से भिन्न प्रकार की थी। शहरों में खेत नहीं होते। वहां जायदाद का वह रूप नहीं होता। वहां तो मकान जायदाद होते हैं। शहरों में भूचाल ने मकानों को ध्वस्त कर दिया। शहरों में जहां चौड़ी सड़कें थीं वहां मकानों की दीवारों को हिलते देखकर लोग सड़कों की तरफ़ भागे। इससे वे कुछ बच गए। इस हड़बड़ाहट में जो लोग भाग न सके और बैठते हुए मकान के भीतर ही रह गए वे कुचल गए और मर गए। उनमें से बहुत कम लोग बचाए जा सकते थे, क्योंकि पृथ्वी पर ढेर की शक्ल में पड़े हुए मलवे को जल्दी हटाना कठिन था। तंग गलियों में इससे उलटी बात हुई। वहां जब तंग गलियों के आसपास की दीवारें बैठीं तो ठसाठस भरी हुई भीड़ें बुरी तरह कुचल मरीं। इस प्रकार प्राण-हानि शहरों की इन तंग गलियों में अधिक हुई। भूचाल के बीच के प्रदेश में तो मकान गिरने के बजाय पृथ्वी में गहरे धंस गए। मोतीहारी, सीतामढ़ी और पूर्णिया में मकान यद्यपि खड़े रह गए थे, किन्तु वे पृथ्वी के भीतर गहरे बैठ गए थे। और चूंकि चारों कोनों पर एक बराबर गहराई में नहीं बैठे थे, इसलिए किसी एक तरफ़ या कई तरफ़ को आड़े या तिरछे हो गए थे और उनकी दीवारें और छतें वग़ैरा दरारें दे गई थीं। इनके अलावा शहरों में पक्के मकान बहुत बड़ी संख्या में ढह गए थे। जो मकान बहुत ही मजबूत बने थे उनकी दीवारें

और छतें साबुत थीं; लेकिन उनकी बुनियादों के नीचे ज़मीन दरारें दे गई थी। जहां ऐसा हुआ था वहां इमारतें दबाव से बाद में फट गई थीं।

मुंगेर में सारे मकान गिरकर ईंटों और पत्थरों के ढेर हो गए थे; लेकिन जब उनका मलबा हटाया गया तो उनकी बुनियादें साबुत निकलीं। मुंगेर, दरभंगा और मुजफ्फरपुर की तंग गलियों में भीड़ें सामूहिक रूप से मकानों के मलबे में दब गईं। लेकिन दूसरे शहरों में लोगों ने खुले मैदानों में भागकर अपनी प्राण-रक्षा कर ली।

सबसे ज़्यादा नुकसान मुजफ्फरपुर जिले की सीतामढ़ी तहसील और दरभंगा जिले की मधुबनी तहसील में हुआ। सीतामढ़ी में सारे मकान ध्वस्त हो गए थे। केवल एक सरकारी बंगला किसी प्रकार खड़ा रह गया था। दूसरे कुछ मकान भी खड़े से थे; लेकिन वे टेढ़े-मेढ़े हो गए थे और जमीन के भीतर धंस गए थे। असल में उनमें एक भी मकान ऐसा न था जिसमें रहा जा सके। अदालतों की इमारतें जमीन में तीन फीट नीचे घुस गई थीं और जेल बिल्कुल चौपट हो गई थी। उसके सब कैदी भाग गए थे। साथ ही शहर के बीचों-बीच ५० फीट लम्बा और ८ फीट चौड़ा एक आखात बन गया था। उसके भीतर की मिट्टी बहुत गहरी बैठ गई थी। मधुबनी में हर चार में से तीन इमारतें गिर गई थीं।

मुजफ्फरपुर और पूर्णिया में भी काफी नुकसान हुआ। मुजफ्फरपुर में ज़्यादातर कुँए बालू से मुंह तक भर गए थे, क्योंकि उनकी तली में से भी भू-गर्भ का पानी और पृथ्वी की तहों की बालू फूट निकलते थे। सूखे हुए तालाबों में जमीन की दरारों में से निकला हुआ पानी भर गया था और जिनमें कुछ पानी था उनकी गहराई कम हो गई थी। शहर का बिजली और पानी का प्रबन्ध टूट गया था।

यहां बागमती नदी, जो शहर के उत्तर-पूर्व में बहती थी और जिसकी धारा काफी मोटी थी, अपना पुराना भंडारा छोड़ गई और दूसरे नये रास्ते से बहने लग गई क्योंकि उसका पुराना रास्ता ऊंचा उठ गया था और

जहां होकर उसने नया रास्ता बनाया था वह भूमि नीची हो गई थी।

दरभंगा में मुजफ्फरपुर से कम हानि हुई थी। वहां सबकी सब इमारतें नहीं ध्वस्त हुई थीं। वहां एक खास बात हुई थी। शहर में मकानों की जो दीवारें पूर्व से पश्चिम को बनी थीं वे गिर गई थीं; लेकिन जो उत्तर से दक्षिण को जाती थीं वे सिर्फ फटकर रह गई थीं। शहर के बीच में राज-महलों के भाग गिर गए थे और कई मकान बिल्कुल भूमिसात हो गए थे।

मोतीहारी को जाने के रास्ते भूचाल में बेकार हो गए थे। सड़कें फट गई थीं और रेल और तार का सम्बन्ध टूट गया था। इस प्रकार मोतीहारी शहर कई दिन तक बाहरी दुनिया से कटा हुआ रहा। यहां झीलों की पालें बैठ गई थीं और इमारतें सब तरफों को टेढ़ी हो गई थीं। भूचाल आने के दो दिन बाद शहर को हवाई जहाजों से बाहर की दुनिया की खबरें मिलीं।

भूचाल के प्रदेश में बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे की लाइन का लगभग ६०० मील लम्बा हिस्सा बेकार हो गया था। इस ६०० मील लम्बी लाइन में एक मील लाइन भी ऐसी नहीं बची थी जिस पर कोई गाड़ी आ-जा सके। रेल के कई बड़े-बड़े पुल टूट गए थे। उनके नीचे की कोठियां ज़मीन में चली गई थीं। टूटे हुए पुलों की संख्या ६१ थी। कई स्थानों में लाइन भूचाल के धक्के से टेढ़ी-मेढ़ी होकर सांप जैसी बन गई थी।

भूचाल ने जहां सड़कें वग़ैरा आने-जाने लायक नहीं रहने दीं वहां हवाई जहाज़ों से मदद पहुंचाई गई। कई हवाई जहाज़ कई दिन तक सारे इलाके में काम करते रहे। इनमें एक हवाई जहाज़ दरभंगा में उड़ते वक्त टूट भी गया।

भूचाल के धक्के से दरभंगा, सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर और मोतीहारी के आसपास का धरातल ही ढाई फीट तक नीचा हो गया था। भूचाल के बाद जब पहिली बरसात आई तो मुजफ्फरपुर के प्रदेश के २० गांवों में

बागमती नदी की बाढ़ का पानी भर गया। इन गांवों में भूचाल से पहिले कभी पानी नहीं भरा करता था। तब इन गांवों के चारों तरफ़ पानी इतना गहरा भर गया था कि गांवों के लोगों को नावों में बिठा-बिठा कर बाढ़ से बनी हुई झील में से निकाला गया और गांवों को कहीं ऊंची ज़मीन पर बसाने का निश्चय किया गया। इस प्रकार भूचाल ने बिहार के शहरों और गांवों को भी भारी नुकसान पहुंचाया।"

रामू और दीनू थे देहाती। उनको इन सब बातों का पता न था। उनका ख़याल था कि भूचाल आया है। हो गया होगा मामूली सा नुकसान। उन्होंने इस बात का अंदाज़ ही नहीं किया था कि भूचाल इतना हानिकार भी हो सकता है।

उन्होंने अवधबिहारीलाल से कहा, "बाबू जी, यह तो भूचाल नहीं था, शायद प्रलय थी; क्योंकि भूचाल तो हमारे सामने पहिले भी आए थे, लेकिन ऐसी बर्बादी उनमें कभी नहीं हुई और न उनमें इतने मनुष्य और पशु ही मरे।"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "हां रामू, इतना नुकसान कभी किसी भूचाल में नहीं हुआ जितना इसमें हुआ। हिन्दुस्तान में ऐसा भयंकर भूचाल पहिले कभी नहीं आया और दुनिया के दूसरे देशों में भी ऐसे भयंकर भूचाल कम ही आए हैं।"

रम्भा ने इस बीच में आकर कहा, "अच्छा, अब आप सब लोग तैयार होजाएं। खाना तैयार है। अगर आप लोग बातों में और ज़्यादा वक़्त लेंगे तो फिर खाना ठंडा होगा और आपको फिर वह अच्छा न लगेगा।"

अवधबिहारीलाल ने कहा, "हां ठीक। चलो अब खाना खा लें।"

रामू ने कहा, "हां यह ठीक रहेगा।" इसका दीनू ने भी समर्थन किया। लेकिन मनोरमा इसके लिए तैयार न हुई; शीला और केशिनी ने कहा कि वे खाना खाकर आई थीं। सुशील खाने के लिए तैयार था ही। उसको रम्भा ने पहिले ही कह दिया था कि आज मास्टर साहिब का खाना रम्भा बनाएगी।

खाना परोसा गया और जो खाने वाले थे उन सबको रम्भा ने अपने हाथ से खिलाया। विशेष आग्रह कर करके, किन्तु अवधबिहारीलाल का हृदय किसी कारण कुछ उदास होगया था। इसका कारण यह था कि रम्भा का ध्यान उनकी तरफ़ अधिक न था। वह खाना खिलाने के वक्त सुशील के ध्यान में पागल-सी हो रही थी यद्यपि अपने इस व्यवहार की सदोषता स्वयं उसको अनुभव नहीं हो रही थी; किन्तु जो खाने वाले लोग थे वे सब उसको भली भांति अनुभव कर रहे थे और स्वयं सुशील को भी इससे बड़ा संकोच हो रहा था। बात यह थी कि रम्भा ने शुरू में जो थाल उठाया तो एक सिरे से न रखकर बीच में सुशील के सामने रख दिया। जब रामू सिरे पर बैठा था तो पहिले वहां रखना था। उसके बाद परोसने में भी उसको इस बात का भद्दापन न जंचा। सुशील ने कई बार कहा, 'इस सिरे से परोसिए, पिता जी को दीजिए, रामू को दीजिए और दीनू को दीजिए, लेकिन रम्भा फिर भी सचेत न हुई। वह उसी प्रकार का व्यवहार करती रही। इस तरह सुशील को जहां लज्जित होना पड़ा वहां अवधविहारीलाल के हृदय में भी ईर्ष्या उत्पन्न हुई। यद्यपि अवधबिहारीलाल सुशील के पिता थे और सुशील उनका लड़का, लेकिन फिर भी उनका हृदय यह चाहता था कि रम्भा दुनिया के किसी भी पुरुष का उनसे अधिक सम्मान न करे। उनकी दृष्टि में रम्भा का कर्तव्य सबसे पहिले उनका ध्यान रखना था, किन्तु रम्भा का दृष्टि-कोण बुरी तरह से बदल गया था। उसकी आंखों में सुशील बस गया था और उसकी यह सुशील-भक्ति सब लोगों के सम्मुख प्रकट हो गई थी।

सब लोग खाना खाकर उठ गए। रम्भा सबके लिए पान लगाकर लाई। पान भी पहिले सुशील को ही दिया गया। सुशील ने पान लेने से इन्कार कर दिया। वह वहां से हट गया। उसने कहा, "पिता जी को दीजिए। मैं अभी आता हूं।" अब रम्भा मजबूर थी। वह अवधबिहारीलाल की ओर पान की तश्तरी लेकर गई। वे रामू और दीनू से कुछ दूर खड़े थे। रामू और दीनू बैठक के कमरे के उस सिरे पर कुर्सियों पर बैठे थे

और अवधबिहारीलाल बैठक के कमरे के इस सिरे पर थे। रम्भा उनके पास गई। उसने अपने हाथ से हमेशा की भांति पान उठाया, किन्तु वह बंद रहने के बजाय पर्याप्त सावधानी की कमी के कारण खुल गया और उसमें से सुपारी के टुकड़े तथा इलायची के दाने बिखर गए। अब रम्भा की आंखें ऊपर अवधबिहारीलाल की ओर उठीं। उनका चेहरा क्रोध से तमतमा गया। वे बोले, "क्यों बेहोश हो रही हो?"

रम्भा ने उनके चेहरे का भाव देखा तो सहम गई। वह समझ गई कि उसके ऊपर जो यह नाराज़गी है वह पान में से सुपारी के टुकड़े और इलायची के दाने बिखर जाने के कारण ही नहीं है, क्योंकि अवध-बिहारीलाल इतनी छोटी बात पर कभी नाराज़ नहीं होते थे। रम्भा को ख़याल हुआ कि उसने आज उनका मन संभालने का कोई ध्यान नहीं रखा। यह बात इनको सहन नहीं हुई कि उनके मुकाबले में सुशील का इतना ध्यान रखा जाए। अब स्थिति कुछ नाज़ुक होगई है, इसको संभालना चाहिए अन्यथा मामला टेढ़ा होजाएगा।

रम्भा ने अपने सिर पर से उतरी हुई साड़ी को ठीक करके कहा, "लेकिन आप तो व्यर्थ ही नाराज़ होते हैं। मैं तो आपको जानती हूँ कि आप क्यों ऐसे होगए हैं। आपने ही तो उस दिन कहा था कि सुशील का ज़्यादा ध्यान रखा करो, लेकिन मैं तो उसी समय समझती थी कि सुशील के प्रति आपका प्रेम कृत्रिम है।"

अवधबिहारीलाल का हृदय सुशील के साथ रम्भा के रियायती व्यवहार को देख ईर्ष्या से धधक उठा था। उसमें उस आग से जो नुकसान हो गया था उसकी पूर्ति होनी असम्भव थी, किन्तु फिर भी प्रत्यक्ष देखने में अवधबिहारीलाल कुछ ठंडे हुए। उन्होंने एक बात तुरन्त अनुभव की और उसी पर वे रम्भा के सामने हार स्वीकार कर गए। वह बात जो उन्होंने अनुभव की, यह थी कि उनके हृदय का भेद रम्भा को ज्ञात हो गया। वह उनके छुपाने पर भी छुपा नहीं। इसके विपरीत रम्भा ने जो बात खोल दी थी उसका उनके मन पर यह असर पड़ा कि यदि रम्भा का

सुशील के साथ किया गया रियायती व्यवहार किसी अन्य कारण से होता तो वह यह बात प्रकट न करती।

रम्भा ने कहा, "अब आप कहेंगे तो मैं केवल आपका ही ध्यान रखूंगी।"

अवधबिहारीलाल को रम्भा ने शर्मिन्दा कर दिया। उन्होंने झेंपकर कहा, "नहीं रम्भा, मैं तुम्हारे ऊपर सन्देह नहीं करता; तुम तो जो बात मेरे मन में नहीं है वह समझ गई। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तुमको जब कई मेहमान बैठे थे तो एक सुशील को ही सब चीजें पहिले नहीं परोसनी चाहिए थीं और न उससे दूसरों की अपेक्षा अधिक आग्रह करना था। मैंने तो स्वयं ही तुमको कहा था कि सुशील का ध्यान रखा करो, इसलिए तुम सुशील का ध्यान रखो भी। मुझको उसमें प्रसन्नता ही है। मैं उससे ईर्ष्या नहीं करता।"

रम्भा ने कहा, "नहीं, सो तो आप करते हैं। मैं यह मान नहीं सकती। अब सुशील को पान भी न दूँगी और आज उससे कह दूंगी कि मैं अब अंग्रेजी नहीं पढ़ना चाहती।"

अवधबिहारीलाल ने सोचा, 'रम्भा इस बात को बहुत ज्यादा अनुभव कर गई। यह भी अच्छी बात नहीं हुई। रम्भा का मन संभालना चाहिए। जब यह इस सीमा तक तटस्थ है कि सुशील को पान भी नहीं देने के लिए कहती है और उससे पढ़ने का कार्य-क्रम भी रद करने के लिए तैयार है, तब इसका हृदय शुद्ध है। इस स्थिति में अब जो बातें जैसी चल रही हैं उनको वैसा ही चलने देना चाहिए। सुशील का आदर भी होता रहना चाहिए। रम्भा सुशील को अपना ही समझती है तो इसमें आपत्ति क्या है?' और सुशील के शील से उनको संतोष था। यह बात मस्तिष्क में आने पर उन्होंने कहा, "रम्भा, मेरे कहने से तुम अब सुशील को पहिले पान दोगी। मैं अब उससे पहिले पान ही नहीं खाऊंगा। तुम समझती हो कि मेरा हृदय इतना छोटा है। तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे ऊपर सन्देह करता हूँ। मैं मानता हूँ कि मुझको तुम्हारे व्यवहार

में कुछ बात ज़रूर बुरी लगी; लेकिन इसका मतलब तुमने जो निकाला वह ठीक नहीं है। तुमको सुशील के साथ इसी प्रकार व्यवहार जारी रखना होगा। मैं इस सम्बन्ध में कुछ न कहूँगा।"

रम्भा ने देखा कि उसने जरा-सा खरापन दिखाया तो यह मामला सध गया। उसको अपनी विजय पर मन ही मन गर्व हो रहा था। उसने अवध-बिहारीलाल के मुँह से जो कुछ कहला दिया था वह उसको यह संतोष देने के लिए काफ़ी था कि वे उसका भेद नहीं जान सके। लेकिन सचाई यह थी कि उन्होंने यह सब रम्भा का मन संभालने के लिए कहा था। उनका हृदय यद्यपि यह कह रहा था कि रम्भा ख़राब स्त्री नहीं हो सकती। उसका हृदय ही ऐसा है कि वह सुशील को इतना प्यार करती है कि उसके पीछे मुझे भी भूल जाती है; लेकिन फिर भी उनके हृदय में कहीं सन्देह का सांप छुपा बैठा था। उनको भीतर ही भीतर कोई शंका हो गई थी। उनका हृदय रम्भा की तरफ़ से न जाने क्यों इतना निश्शंक नहीं रहा था।

(८)

नदियां ऊंचे पहाड़ों से निकला करती हैं और नीचाई की ओर बहा करती हैं। यह नदियों का स्वभाव है। इससे अनुमान यह होता है कि नदियां जिस ओर को बहती हैं उस ओर नीची ज़मीन होती है। गंगा बिहार में जब प्रवेश करती है तो उसमें उत्तर-पश्चिम से बहती हुई गंडक आ मिलती है। पटना शहर जिसको कभी राजगिरि कहते थे, इसी जगह बसा हुआ है। एक तरह से बिहार का वह मैदान, जिसे गंगा का मैदान कहना चाहिए, यहां से ही शुरू होता है। इस जगह यह मैदान उत्तर से दक्षिण की ओर नापने से लगभग २०० मील चौड़ा है। यह मैदान गंगा के सहारे-सहारे बंगाल की हद तक जाता है और वहां पहुंचते-पहुंचते वह सिकुड़कर ८० मील के लगभग रह जाता है। यह मैदान युक्त-प्रान्त से बंगाल तक ३२० मील लम्बा है। गंगा नदी इसके बीच में होकर ही बहती है। बिहार का प्रसिद्ध भूचाल इसी मैदान को उलट-पुलट कर गया था। गंगा के इस मैदान में जमीन की सतह पर नरम मिट्टी है और नीचे चट्टानें हैं। इसका अर्थ यह है कि चट्टानों के ऊपर मिट्टी की तहें जमी हैं। ये तहें गंगा के उत्तरी मैदान में ज़्यादा मोटी हैं, लेकिन दक्षिणी मैदान में वे पतली पड़ती गई हैं। यहां तक कि कुछ दक्षिण में जाते-जाते नीचे की चट्टानें नंगी हो जाती हैं। लोग इन चट्टानों को छोटा नागपुर की पहाड़ियां कहते हैं। भूचाल में जब जमीन प्रबल वेग से हिली तब उत्तरी मैदान की मिट्टी की मोटी तहों में बड़ी-बड़ी लम्बी और चौड़ी दरारें फट गईं। लेकिन दक्षिणी मैदान की चट्टानों के ऊपर की मिट्टी की पतली

तहें केवल हिलकर रह गईं, वे फटी नहीं, क्योंकि उनको नीचे से कठोर चट्टानें पकड़े हुई थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि जहां गंगा के उत्तरी मैदान में जमीन की छाती भूचाल के प्रकम्पन से भयंकर रूप से विदीर्ण हो गई वहां दक्षिणी मैदान में जमीन का ऊपरी भाग बिल्कुल सुरक्षित रहा; लेकिन मकानों वग़ैरा के गिरने से जो हानि हुई वह दोनों ही प्रदेशों में हुई। दक्षिणी मैदान में हानि उत्तरी मैदान से कम थी। उत्तरी मैदान की हानि जमीन की बड़ी-बड़ी दरारों में से निकले हुए पानी से बहुत ज्यादा बढ़ गई थी। उत्तरी मैदान में जमीन के भीतर से जो पाताली पानी फूट निकला था, उससे सारे प्रदेश में पानी ही पानी भर गया था।

गंगा का यह उत्तरी प्रदेश एक विशेष रूप से नीची भूमि है। इसमें होकर कई नदियां बहती हैं वे अपने साथ बहुत सी बालू लाती रहती हैं जो पत्थरों और चट्टानों से पानी के प्रवाह के द्वारा घिसने से बनती है। यह बालू नदियों के भंडारों में और उनके किनारों पर जमती रहती है। इससे ये नदियां आसपास की जमीन से ऊंचे पूठों पर बहती हैं। इन पूठों के आसपास नीची जमीन है जिसमें पहिले कभी ये नदियां बहती थीं; लेकिन पीछे उनके रास्ते बदल गए। उस समय नदियों के मौजूदा ऊंचे भंडारे नीची जमीन में होंगे जिनमें इन छूटे हुए भंडारों को छोड़कर नदियां बहने लग गई होंगी। इन नीचे मैदानों में अब बहुत सी झीलें हैं, तालाब हैं और दलदल हैं। इस प्रकार की नीची जमीन चावल की कृषि के लिए उपयुक्त होती है और इस भूमि में चावल बहुत बोया भी जाता है।

यह प्रदेश बहुत घना बसा हुआ है। इसमें एक वर्ग मील में औसतन ८३० आदमी रहते हैं। यद्यपि जमीन बहुत उपजाऊ है; लेकिन फिर भी लोग बहुत ही ग़रीब हैं। इसका कारण यह है कि खेती की उत्पत्ति की प्रति परिवार औसत बहुत कम पड़ती है। बिहार की ग़रीबी प्रसिद्ध है। वास्तव में प्रकृति ने इस प्रदेश में भूचाल लाकर 'मरे को मारे पीर मदार,

की कहावत को चरितार्थ किया था। किन्तु प्रकृति तो जड़ है। वह ज्ञान-पूर्वक कोई काम नहीं करती, क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं होता।

वास्तव में प्राकृतिक घटनाएं तो होती ही रहती हैं। उनकी छाया में संयोग-वश जो भी आजाता है उसी पर उनका प्रभाव पड़ जाता है। जिस प्रकार एक वृक्ष की छाया बिना पापी और पुण्यात्मा का विचार किए सबको शीतलता देता है उसी प्रकार प्राकृतिक घटनाएं पापी और पुण्यात्मा का विचार किए बिना सबको दुख या सुख देती हैं। बिहार के भूचाल में जो इतने लोग मर गए या इतनी सम्पत्ति का नाश हो गया यह सब जड़ प्रकृति में विकार का परिणाम था।

अस्तु, बिहार के भूचाल में लाखों ही के प्राण गए, और करोड़ों की सम्पत्ति का नाश हुआ। ४००० वर्ग मील भूमि में बालू ही बालू भर गई। इससे किसानों के खेत नष्ट हो गए। कितनी ही जगह भूचाल में खेतों की मिट्टी बह गई थी और चट्टानें नंगी निकल आई थीं। जब भूचाल का धक्का निकल गया और तनिक हालत सुधरने पर वे अपने खेतों को देखने के लिए गए तो वहां उनको बड़ी निराशा हुई। उनके कितने ही खेत पथरीले खाड़-खड्डों के रूप में परिवर्तित हो गए थे। उनमें अब कुछ भी उत्पन्न होने की आशा उनको न रह गई थी। भला पथरीले खड्डों में अब क्या बोया जा सकता था? यह देखकर बेचारे बिहारी किसानों की आत्मा रो उठी। भूचाल के पहिले जहां खेतों में ईख की फसल खड़ी थी वहां अब बड़ी खराब हालत थी। गन्ने खेतों में सो गए थे और मोटी दानेदार बालू भू-गर्भ में से निकलकर उनके ऊपर बिछ गई थी। एक प्रकार से ईख की फसल की यह बर्बादी ही थी। यह सब देखकर उनका हृदय विदीर्ण-सा हो गया। ईख के कारखाने टूट गए थे, उनमें उनका गन्ना अब क्या जाना था और यदि कुछ जाना भी था तो किस भाव जाना था? यह प्रलय देखकर बेचारे किसानों के तो हृदय बैठ गए। उनकी तम्बाकू, धान तथा मिर्च की फसलें सब रेत के नीचे थीं। वे कहते, "हे भगवान, तूने हमको यह किन पापों का विष-फल खाने को दिया है?

हे राम ! अब तू यह तो बता कि हमारे ये दुधमुंहे बच्चे, जो जीते बचे हैं, अब क्या खाएंगे ? क्या हमने कोई ऐसे बुरे काम किए थे, जिनका फल इतना बुरा होता है ?" वे अपनी आंखों से देख रहे थे कि कितने ही खेतों में झीलें भर गई थीं। यहां से वहां तक जहां तक भी दृष्टि जाती पानी ही पानी भरा हुआ दिखाई देता था। जाड़े के भयंकर दिन और उनमें ठंडी सन-सन और सरर-सरर करती हुई मनुष्यों और पशुओं के शरीरों में होकर पार जाती हुई पैनी हवा ! उनकी आत्माएं जहां भविष्य के भय से कांप रही थीं, वहां उनके शरीर शीत के मारे ढेर हो रहे थे। वे उस पानी के बीच में निकले हुए टीलों के ऊपर खड़े हुए ऐसे ही हिलते थे जैसे बेर के पेड़ की डाल पर लटका हुआ बेर हवा में हिलता है। प्रकृति ने उन पर यह भीषण कोप दिखाया था। उन्होंने ऐसा कोप पहिले कभी न देखा था। कितने ही घर अररर धम, धांय-धांय और हजारों तोपों के समान गूंज उत्पन्न करने वाली घोर के साथ भू-तल पर बिछ गए थे। उनमें क्या सहारा था ? दीन और दुखी किसानों की मिट्टी और गारे की बनी हुई कच्ची झोंपड़ियां, जिन पर छप्पर और कैलू पड़े थे गारे की तहें चढ़ाकर बांसों की टट्टियों की बनी हुई दीवारों की झोंपड़ियां, भला इनकी क्या शक्ति थी जो उस भूचाल के सामने खड़ी रह जातीं। कितने ही आदमी उनमें भीतर ही रह गए। वे उस नींद में सो गए थे जो कभी नहीं खुलती। सरकारी मदद शहरों में पहुँची जहां सरकारी अफसर रहते थे; लेकिन देहातों में जहां से सरकार को चलाने के लिए दीन-दुखियों की रक्त-सनी कमाई लगान का रूप धारण करके सैकड़ों वर्षों से खिंची चली आती थी, इन प्रकृति के कोप के असली पीड़ितों की सहायता करने कौन जाता ? जा भी कौन सकता था और जा भी कैसे सकता था ? शहर थोड़े से हैं; उनमें सहायता पहुंचाने के लिए थोड़े आदमियों की जरूरत थी, लेकिन देहात तो बहुत हैं। इतना विशाल भू-भाग, उसमें सभी में यह महा-संहार, जिसको देखकर महा धीरजवान लोगों की आत्माएं भी धीरजहीन हो जातीं और रो उठतीं, यदि वे

उसको देख लेतीं। भला इसमें मनुष्य की सीमित सामर्थ्य किस काम आ सकती थी? फिर भी यदि हृदय में भावना हो तो क्या नहीं किया जा सकता? इन गांवों को इस संकट में सहायता पहुंचाने का काम आखिर किसने किया, स्वयं गांव के लोगों ने। वे जो कुछ कर सकते थे वह सब उन्होंने किया, या यह कहना चाहिए कि वे जो कुछ अच्छा से अच्छा उस आपत्ति से त्राण पाने का मार्ग उस समय सोच सके उसका उन्होंने अनुसरण किया। यदि भावना होती तो क्या इन्हीं लोगों को संगठित करके इनका मार्ग-दर्शन नहीं किया जा सकता था। लेकिन सरकारों को जो आदमी चलाते हैं वे कागज़ी खानापूरी करने में वक्त गुज़ार देते हैं। वे आग लगने की खबर पाएं तो उसके लिए फायर ब्रिगेड भेजने का हुक्म मकान जलकर खाक हो चुकने के कई दिन बाद, और ज़्यादा मस्ती से काम करें तो कई महीने बाद दें? आखिर सरकारी कागजों के क्रम में जो स्थान उनको प्राप्त होगा, उस तक कार्रवाई खत्म हो जाने पर ही तो उस पर कारवाई हो सकती है। उससे पहिले के कागजों का क्रम काट देना क्या बेइन्साफ़ी नहीं है? सरकारों के बाक़ायदा चलने वाले कर्मचारी और अफसर इस बाकायदापन का बहुत ज़्यादा ध्यान रखते हैं और इसमें जब सारा गुड़-गोबर हो जाता है तो फिर बगलें झांकते हैं। फिर अपनी अकर्मण्यता पर बड़ी-बड़ी सुन्दर शब्दों में लिखी हुई रिपोर्टों का आवरण डाल देने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता; किन्तु किसानों के कष्टों को अकष्ट में परिवर्तन करने का जहां तक प्रश्न था वहां तक इन कार्रवाइयों से कोई लाभ होना-जाना था नहीं।

सरकारी अफसरों ने पानी की उस जल-प्रलय के बीच घिरे हुए बेचारे साधनहीन शीत में थरथराते देहातियों को हवाई ज़हाजों से देखा। उन्होंने उनको कुछ खाना और कपड़े फेंके, जो देश के धनी-मानी और साधारण श्रेणी के लोगों ने दया-भावना से प्रेरित होकर भेजे थे। कलकत्ता, बम्बई, करांची और मदरास के लखपती मारवाड़ी और

दूसरे धनिक, व्यवसायी पैसे की और दूसरी तरह की सहायता भेजने के लिए दौड़ पड़े थे। कांग्रेसी-नेता पं० जवाहरलाल नेहरू बिहार के इन पीड़ित इलाके में पैदल गए।

कांग्रेस ने इन लोगों के लिए देश में धन, वस्त्र और अन्न इकट्ठा किया। आगरा, फीरोज़ाबाद, दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, काशी, नागपुर, अजमेर, इन्दौर और जयपुर आदि देश के सभी प्रसिद्ध शहरों ने बिहार के पीड़ितों की सहायता के लिए अपनी सम्पत्ति का एक अंश बिहार भेजा। सरकारी फंड भी खोला गया। उसमें भी रुपया इकट्ठा हुआ और इस प्रकार बिहार के रक्त बहाते हुए हृदय का घाव धैर्य की पट्टी बांधकर ढक दिया गया। बिहार के सरल-हृदय नेता बाबू राजेन्द्रप्रसाद अपने प्रान्त की इस मुसीबत में २४ घंटे लोगों के साथ थे। वे अपनी सब तकलीफें भूल गए, ताकि लोगों की तकलीफें उनको निरन्तर याद रह सकें।

अन्त में समय और ऋतुओं ने भी उस प्रकृति के कोप में बिहारियों की सहायता की। भूचाल में ज़मीन की दरारों में से निकला हुआ पानी ज़मीन में ही समा गया और ज़मीन की सतह फरहरी हो गई अर्थात् उसमें कुछ सूखापन आगया। गन्ने के खेतों में से गन्ने बालू में से संभाल कर निकाले गए और दूसरी फसलें भी जो बचाई जा सकती थीं वे बचाई गई और उनका जो पैसा प्राप्त किया जा सकता था वह प्राप्त किया गया।

भूचाल में किसानों के कितने पशु मरे इसकी कोई रिपोर्ट तैयार नहीं हुई। जो मरे वे मर गए, कुछ मकानों में दबकर और कुछ पानी में डूब कर। जब मनुष्य के अपने प्राण संकट में होते हैं तब वह पशुओं के मरने का दुःख भूल जाता है। किन्तु फिर भी पशु किसानों के प्राण हैं, वे उनको अपने प्राणों से ज्यादा प्यार करते हैं, इसलिए जहां तक उनके बश की बात थी वहां तक पशुओं के प्राण बचाए गए और उनको शीत और भूख से बचाकर जीवित रखने का भी भरसक प्रयत्न किया गया।

इस प्रकार बिहार के लोगों ने भूचाल के भौतिक ताप से अपनी रक्षा की। उन्होंने अगाध धैर्य और सहिष्णुता का परिचय दिया।

(१)

काशीपुर में बालू के कारण किसानों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। उनकी सारी फसल मारी गई थी और अगली फसल की तो अभी कुछ बात ही नहीं थी। ऐसी स्थिति में अब उनके सामने समस्या यह थी कि अब उनका गुज़ारा किस प्रकार हो? शारदा के सामने भी यही समस्या थी।

उसके परिवार में एक तो वह स्वयं थी और तीन दूसरे सदस्य—एक उसके पति रमाशंकर, उसके श्वसुर और उसकी सास। रमाशंकर इस समय जेल में था। जब उसके पति रमाशंकर को पटना बम केस में ८ वर्ष के कठोर कारावास की सजा हुई तो उसकी आयु १४-१५ वर्ष की थी। रमाशंकर पटना गवर्नमेन्ट कालेज का एम० ए० का छात्र था और बी० ए० में विश्वविद्यालय में प्रथम आया था। जब सन् १९३० में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आरम्भ किया तब वह राजनीति में कूद पड़ा। उसके पिता ने उसको बहुत समझाया, "बेटा! तू घर में अकेला है। ये राज-काजी मामले हैं। तू इन दंद-फ़ंदों में मत पड़।" लेकिन रमाशंकर पर गांधी बाबा की राजनीति का गहरा असर था। वह सोचता था कि जब मुल्क की आज़ादी की लड़ाई छिड़ी हो तब कालेज़ में बैठे रह जाना अपने कर्तव्य से च्युत हो जाना है। मां और बाप के प्रति हमारा एक कर्तव्य है हम यह मानते हैं; किन्तु अपने देश के प्रति भी तो हमारा कोई कर्तव्य है। हमको जब देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में भाग लेने के लिए पुकारा जाए तब अवश्य कमर बांधकर मैदान में आना चाहिए और अपनी शक्ति भर

देश के काम में भाग लेना चाहिए। उसमें हमें सफलता मिलेगी या विफलता, यह सोचना हमारे नेताओं का काम है। सेना किस ओर जाएगी यह सोचना तो कमांडर का काम होता है। सामान्य सिपाही का काम तो इतना ही होता है कि कमांडर जो कुछ आज्ञा दे वह उस पर अमल करे। ऐसा सोचकर रमाशंकर अपने सेनापति महात्मा गांधी की पुकार पर उठ खड़ा हुआ और उन्होंने जिस ओर जाने की आज्ञा दी उस ओर को चल दिया।

किन्तु जब महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की लड़ाई बंद कर दी तब रमाशंकर को अनुभव हुआ कि अब छात्र बनकर रहना तो कठिन हो गया था। उसने देखा कि एक प्रबल राजनैतिक लहर ने उसको जीवन की शिक्षणशाला से निकालकर, जहां वह जीवन-कला सीखता था, संसार के कर्म-क्षेत्र में ला खड़ा किया है। उसके पिता ने उसको इसलिए तो रोका था। उनकी दृष्टि में वह अभी जीवन-कला में निपुण नहीं हुआ था। वह नहीं जानता था कि जीवन क्या है और उसको सफलतापूर्वक किस प्रकार व्यतीत किया जाता है; इसलिए उसके पिता का कहना था कि अभी वह इस शिक्षण-शाला में धैर्यपूर्वक टिका रहे। किन्तु जिसने भी छात्र अवस्था में रहकर देखा है वह यह भली भांति जानता है कि जब छात्र में जीवन-कला कुछ-कुछ आ जाती है वह तभी से संसार के कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ने के लिए अधीर होने लगता है। जीवन-कला का नव-ज्ञान प्राप्त करके उसको शक्ति का अनुभव होता है और वह जल्दी से जल्दी उसका प्रयोग करना चाहता है। यही कारण है कि छात्र कालेज की सीमा में कुछ दिन रहने के बाद इतने उच्छृंखल हो जाते हैं कि अपने शुभचिन्तक पथ-प्रदर्शक माता-पिताओं की आज्ञाओं की भी परवाह नहीं करते। वे उनका उल्लंघन करके चाहे जिस ओर चले जाते हैं। यह कभी-कभी अच्छा भी होता है और कभी-कभी बुरा भी। यह अच्छा उस अवस्था में होता है जब छात्र में उत्साह के साथ सच्ची शक्ति का उदय भी हो चुका हो; यह बुरा उस समय होता है जब उत्साह का आधार सच्ची शक्ति का उदय न हो, मिथ्या अभिमान

हो। रमाशंकर में स्पष्ट सच्ची शक्ति का उदय हो गया था इसलिए उसका संसार के कर्म-क्षेत्र में अवतरण इतना असामयिक नहीं था। लेकिन असहयोग की आंधी में से निकलते ही वह एक दूसरी मुसीबत में फंस गया। वह था पटना बम केस।

लोग कहते थे कि रमाशंकर, पटना में वायसराय की ट्रेन को उड़ा देने का जो षड्यंत्र रचा गया था, उसमें सम्मिलित था। किन्तु जानकार राजनीतिज्ञों का कहना था कि रमाशंकर को तो पुलिस ने उससे शत्रुभाव होने के कारण फंसा लिया था। उसके विरुद्ध जितने गवाह उपस्थित किए गए वे सब झूठे थे और पटना बम-केस के इकबाली गवाह सुधीन्द्र ने अपने बयान में रमाशंकर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था वह पुलिस के दबाव में आकर कहा था। कहते हैं कि अपने प्राथमिक इकबाली बयान में सुधीन्द्र रमाशंकर को बचा देना चाहता था, लेकिन जब पुलिस ने उसकी गर्दन पकड़ी तब वह उसको भी फंसाने के लिए मजबूर हो गया।

रमाशंकर को लम्बी कैद की सजा होने से उसके बूढ़े पिता और उसकी मां को बड़ा दुःख हुआ। रमाशंकर उनका लाड और प्यार से पाला हुआ लड़का था। वे उसको अपनी आंखों की ज्योति समझते थे। इसलिए जब वह उनको इस संसार की निर्दय संघर्ष भूमि में लम्बे आठ सालों के लिए संघर्ष करने को अकेला छोड़ गया तो उनकी आंखों की ज्योति बुझ गई। दोनों ही अपने इकलौते बेटे के लिए रोते-रोते अंधे हो गए।

लोग कहते थे कि शारदा का बाप एक बड़ा ज़मींदार था, किन्तु उसने रमाशंकर की प्रतिभा पर मुग्ध होकर और उसके धुंधले भविष्य की उज्ज्वल कल्पना करके शारदा का विवाह उसकी विवाह योग्य अवस्था से पहिले ही कर दिया था। अपने पति की प्रतिभा पर और सुन्दरता पर भी किशोरी शारदा प्राण देती थी। वह अपने श्वसुर के घर में उस दिन की प्रतीक्षा आतुरता के साथ किया करती थी जब रमाशंकर छुट्टियां मनाने पटना से अपने गांव में आता था। शारदा को वे दिन अब भी प्रातःकाल

में देखे हुए किसी मधुर स्वप्न की भांति याद थे जब रमाशंकर कालेज से आकर अपनी मां को 'राम-राम' करता और पीढ़े पर आंगन में बैठ जाता तो शारदा किसी बहाने सिकुड़ी हुई सुन्दरता की बेल सी हलके घूंघट के भीतर से उसकी ओर देखती हुई उसके पास से निकलती थी और अपनी एक अधखिली मुसकान में ही कह जाती थी 'स्वामी! तुम्हारे शशि जैसे रूप की ज्योति से ज्योतित मुख को देख कर यह कुमुदिनी अभी खिली है इस सर में।' रमाशंकर गम्भीर बना वैसा ही बैठा रहता था अपनी मां के सामने। किन्तु दो चार बार अपनी प्रसन्न आंखें शारदा के आकार पर डाले बिना वह भी नहीं रह सकता था। जब रमाशंकर की छाया में शारदा उस लता की भांति बढ़ रही थी जिस पर हरे पत्ते होते हैं और नरम कोंपले भी, किन्तु जिसमें प्रथम पुष्प अभी कली रूप में ही छिपा होता है, तब रमाशंकर की छाया को न्यायालय के निर्दय हाथ ने उसके ऊपर से हटा लिया। शारदा पर संसार के कर्म-क्षेत्र की दोपहर की धूप अवश्य पड़ जाती यदि उसके ऊपर उसके श्वसुर और उसकी सास ने बादल बन-कर छाया न की होती। लेकिन उसके दुर्भाग्य से उसके ऊपर वह छाया अधिक दिन तक नहीं रह सकी। जब उसके श्वसुर और उसकी सास की आंखें रोते-रोते चली गईं, तब शारदा को ही ज़मीदारी का सारा काम-काज संभालना पड़ा। इस प्रकार एक तो रमाशंकर के जेल जाने का दुख था और दूसरे घर-गृहस्थ और ज़मीदारी की उलझनें थीं। शारदा की आयु इन दोनों कामों को उठाने के सर्वथा अयोग्य थी। भला एक सोलह-सत्रह साल की लड़की में इतनी क्या योग्यता होती है, किन्तु शारदा में योग्यता थी। वह रमाशंकर के जेल जाने पर अपना उत्तरदायित्व समझती थी। साथ ही उसको इस बात का ज्ञान था कि रमाशंकर के कारावास का कारण चाहे राजनैतिक ही सही, किन्तु जब साधारण बुद्धि की, अपने को असाधारण समझने वाली धनी घरानों की स्त्रियां उसकी आलोचना करेंगी तो वे अवश्य उसका और उसके पति का तिरस्कार करेंगी। शारदा का हृदय बड़ा स्वाभिमानी था, इसलिए वह जानती थी

कि वह उस तिरस्कार को सहन न कर सकेगी। वह इस अवस्था में अपने पिता के घर बहुत कम आती जाती थी और उसके पिता, रमाशंकर का सामाजिक दर्जा अपने दर्जे से नीचा न समझे इस खयाल से उनसे किसी प्रकार की सहायता स्वीकार न करती थी। जब उसके पिता उसको कहते कि 'बेटी! मैं एक कारिन्दा नियुक्त कर देता हूं, तू क्यों कष्ट उठाती है। तू तो घर में ही रहा कर' तब शारदा कहती, 'पिता जी! मैं तो कोई कष्ट नहीं उठाती। मैं तो बड़े आराम से रहती हूं। पिता जी, हमारे घर किसी बात की कमी थोड़ी ही है।' इस स्थिति में उसके पिता उसको ज़्यादा क्या कह सकते थे।

किन्तु रमाशंकर के सम्बन्ध में कड़वी आलोचनाएं तो उसके सासरे में भी होती ही थीं और वह उसको सह्य नहीं मालूम होती थीं। इसका कारण तब हमारी समझ में आसानी से आजाता है जब हम सुशील कुलबधुओं की मनोवृत्ति को कुछ समझ लें। वे निर्धन परिवार में विवाही जाने पर भी अपने मायके में कभी यह स्वीकार नहीं करना चाहतीं कि उनके परिवार की आर्थिक अवस्था ठीक नहीं है, या वह ऋणी है, या उसमें ज़मींदारी कम है, या जायदाद नहीं है। वे जब अपने पति के परिवार की चर्चा करेंगी तो उसकी विशेषताएं ही बताएंगी और यह कहेंगी कि वे अपने पति के परिवार में सर्वथा संतुष्ट हैं। शारदा भी इसी मनोवृत्ति की थी, क्योंकि वह एक सुशील कुलबधू थी।

इस प्रकार शारदा अल्पवयस्क होने पर भी कठोर हो रही थी और सुन्दर होने पर भी मलिन हो रही थी। उसने अपने जीवन में पहिली बार यह जाना था कि आपत्तियां क्या होती हैं। उसके पति को कारावास में गए तीन वर्ष हो गए थे। उसकी आयु अब भी १८ वर्ष से अधिक न थी। इस आयु में उसने जितना देखा था उतना बहुत कम स्त्रियों ने देखा होगा। जब वह तरुण हो रही थी तो उसको कितना रस आता था अपने जीवन में, किन्तु जब उसका जीवन अधिक सरस होने के दिन आए तो कितनी नीरसता प्रतीत होती थी उसको। फिर भी वह एक आशा में

जीती थी। जिस प्रकार ग्रीष्म-काल में बेलें धूप और लू को सहन करती हुई नीरस शरीर लिए पावस की आशा में जीवित रहती हैं, उसी प्रकार शारदा किसी सुख की पावस की आशा में जीवित रह रही थी। उसको अपना नीरस जीवन भी जीवित रहने योग्य मालूम देता था। किन्तु पावस ऋतु सदैव ही तो नहीं आती; कभी-कभी अनावृष्टि हो जाती है और बेलों का जीवन सूख जाता है। कभी-कभी यह भी होता है कि जब बेलें सूख चुकती हैं या उनके फिर हरा होने की अवधि निकल जाती है तब वर्षा आती है; किन्तु ऐसा तो कभी-कभी ही होता है। शारदा को ऐसी आशंका नहीं थी कि रमाशंकर जेल से लौटेगा ही नहीं।

जब शारदा कष्ट-सहनरूप तप कर रही थी तब उस पर यह एक अतिरिक्त महान कष्ट आया कि उसके खेतों में बालू भर गई। उसने सोचा कि गिरे में लात हर कोई मार जाता है। काम ठीक चल रहा था कि यह आफ़त और आगई, किन्तु फिर भी उसने इस आफ़त की खबर अपने मायके को नहीं भेजी। उसने अपने हृदय को मज़बूत किया और अपने मन में कहा कि परमात्मा किसी के दिन सदैव एक समान नहीं रखता।

सरकार ने खेतों की जांच करवाई और जिन खेतों में बालू भर गई थी उनमें लगान कम करने या छोड़ने का आश्वासन भी दिया, किन्तु जब लगान में कमी और छूट की घोषणा की गई तब शारदा को मालूम हुआ कि इस बारे में उसके साथ न्याय नहीं किया गया है। जिन लोगों के खेतों में बहुत थोड़ी बालू थी उन्होंने पटवारियों को रिश्वत देकर ज़्यादा लिखा ली थी और जिन्होंने पटवारी की मुट्ठी गर्म नहीं की उनके खेतों में बहुत बालू होने पर भी साधारण लिख दी गई थी। सरकार ने नीचे के कर्मचारियों की रिपोर्ट पर जितनी कमी या छूट देनी थी उतनी दे दी थी; लेकिन फिर भी जो कमी या छूट दी गई थी वह असली नुक़सान की तुलना में बहुत ही कम थी। उससे किसानों की हालत पर कोई असर नहीं पड़ता था। उससे उनकी तकलीफ़ों में कोई कमी नहीं आती थी।

शारदा ने पीछे से अफ़सरों के पास दरखास्तें वग़ैरा भी भेजीं लेकिन

बेकार। उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि शारदा को लगान लगभग पूरा देना पड़ा और किसानों से ज्यादा मिला नहीं। शारदा ने इसके लिए अपने जेवर भी बेच डाले लेकिन वह अपने पिता के पास मांगने के लिए नहीं गई। अब उसके सामने यह समस्या आई कि निर्वाह के लिए क्या किया जाय। शारदा के पास अब कुछ न था। बूढ़े श्वसुर और सास भी मजबूर थे। वे अपने जीवन से तंग आ गए थे। उन्होंने भी ऐसे दिन कभी नहीं देखे थे, लेकिन वे स्थिति को खुद भी सुधारने में असमर्थ थे।

आखिर उसके श्वसुर ने कहा, "बेटी, अब तू एक काम कर। भाग्य में जो लिखा है वह तो होगा ही, लेकिन तू अपने पिता के घर हो आ। वे तुझे कुछ पूछेंगे ही। तू सही हालत कह देना। आड़े दिनों में अपने सगे-सम्बन्धियों से मदद लेने में कोई बुराई नहीं।"

शारदा को रोना आगया। एक ज़मींदार के बेटे की बहू को, जिसका पिता कई सौ बीघे का ज़मीदार हो, ऐसी दयानीय हालत थी कि उसके पास पहिनने के लिए भले घर की बहू-बेटियों की तरह के कपड़े भी नहीं थे और न अपने पिता के घर तक पहुंचने का किराया था।

शारदा कुछ देर तक कोने में खड़ी आंसू बहाती रही। फिर बोली, "पिता जी, मुझसे यह न होगा। मैं इस हालत में अपने बाप के घर कैसे जाऊं? इससे तो मैं एक पैसे का ज़हर खाकर मर जाना अच्छा समझती हूं, लेकिन आज तो मेरे पास ज़हर खाने के लिए भी पैसा नहीं। अब क्या किया जा सकता है?"

शारदा की सास भी दुखी थी। उसने दो आंसू गिराकर कहा, "बेटी, दुख में धीरज रखना चाहिए। मुझे एक बात सूझती है। नथिया कह रही थी कि कांग्रेस वाले किसानों और मजदूरों को कातने के लिए रुई देते हैं और कताई देकर सूत वापिस ले लेते हैं। तू किसी के हाथ नथिया को बुला ले तो मैं और तू मिलकर चार आने का तो कात ही लेंगे। चर्खे घर में पड़े हैं। तू उनको आज ठीक कर ले।"

शारदा की आंखें खुशी से चमक उठीं। उसका जी हरा हो गया। वह झट से बाहर गई और एक लड़की को भेजकर नथिया को बुलवाया। नथिया आई और सारी बात सुनकर बोली, "बूढ़ी मां, मैं पूनी ले आया करूंगी। सेर भर पूनी कात देने पर चार आने देते हैं कांग्रेस वाले। बड़े ईमानदार हैं बेचारे और बड़े भलेमानस। सब कत्तिनों से बहिन और बेटी कहकर बोलते हैं। किसी की बहू-बेटी की तरफ आंख उठाकर देखना कैसा होता है?"

शारदा ने कहा, "तो मैं चलूं जीजी?"

नथिया ने कहा, "हां यहां पास तो है ही।"

लेकिन शारदा फिर सहम गई। उसने अपने हृदय में कहा, "ये मजदूरिनें हैं। इनको वहां मज़दूरी के लिए जाने में शर्म की बात नहीं, लेकिन मेरे पांव तो वहां जाने के लिए कभी नहीं उठेंगे। लोग क्या कहेंगे, 'रमाशंकर की बहू मज़दूरी करती है।' यह ख़याल करके उसने नथिया के साथ जाने की बात तुरंत बदल दी। उसने कहा, "ना जीजी, अभी मेरा जाना ठीक नहीं। तुम्हीं ला दो, एक सेर पूनियां।"

नथिया ने कहा, "अच्छा, लाओ चार आने पैसे निकाल दो। मैं अभी जा रही हूँ।"

शारदा पैसों का नाम सुनकर चुप होगई। उसको दरअसल यह ख़याल ही नहीं रहा था कि घर में तो पैसा एक भी नहीं है। सिर्फ पांच सेर चावल हैं। उसने तुरन्त निश्चय कर लिया कि उसको क्या करना है। उसने कुछ झिझकते-झिझकते कहा, "तुम मेरे घर से चार आने के चावल ले जाओ। तुम्हें बाज़ार से भी तो लाने होते हैं न?"

नथिया ने कहा, "पैसे मेरे पास हैं। तुम पैसे मुझे पीछे दे देना। चावल तो रखो। जब मुझे जरूरत होगी तब ले लूंगी।"

शारदा ने इस उत्तर के लिये मन ही मन उसके प्रति कृतज्ञता मानी और खुश होकर कहा, "अच्छा तो जाओ ले आओ।"

नथिया कताई-केन्द्र में गई और पूनियां लेकर वापिस आगई।

उसने शारदा को पूनियां सौंप दीं और अपने घर चली गई। उसके बाद शारदा का रोज़ का नियम था कता हुआ सूत नथिया को तोल देना और ताज़ी पूनियां उससे ले लेनीं। इस प्रकार कुछ ही दिनों में शारदा की गृहस्थ की गाड़ी ठीक प्रकार सम्मानपूर्वक चलने लग गई और उसके पास कुछ पैसे बच गए। उसने सारे खेत साधारण लगान पर किसानों को उठा दिए और उनको कह दिया कि वे खेतों में तालाबों की मिट्टी डालकर बालू कम कर लें या कुछ बालू ऊपर से उठा-उठाकर फेंक दें तो खेतों में उपज होने लग जाएगी और उसके बाद दो साल तक उनसे खेत नहीं लिए जाएंगे।

शारदा ने सोचा था कि इस प्रकार सरकारी लगान देकर कुछ तो बचेगा। शारदा का यह प्रबन्ध वास्तव में ऐसा था जिससे उसका बड़ा लाभ हुआ। किसानों ने खेतों को साफ़ कर लिया, जमीन की सतह पर जो ज्वालामुखियों के से गोल मुख बन गए थे उनको फावड़ों से एकसा कर दिया और जमीन में जो बड़ी-बड़ी दरारें फट गई थीं बहुत सी बालू सतह पर से उठा कर उनमें डाल दी। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में खेत बालू से ख़ाली हो गए और किसानों ने उनको खोद-पीटकर एकसा करके जोतना आरम्भ कर दिया। उन्होंने उनमें खाद डाली और पानी का प्रबन्ध किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें जो फ़सल हुई वह काफ़ी अच्छी हुई। कुछ खेतों में तो ज़मीन पहिली ज़मीन से भी ज़्यादा अच्छी निकल आई थी और उसकी उपज बढ़ गई थी।

शारदा ने एक सन्तोष की सांस ली कि आखिर परमात्मा ने उसकी बिगड़ी बात बना दी। उसने इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया।

(१०)

शारदा का गांव काशीपुर वकील अवधबिहारीलाल की जमींदारी में पड़ता था। अवधबिहारीलाल यहां फ़सल पर लगान वसूली के वक्त में आया करते थे। उनके कारिन्दे कुछ लगान वसूल करके रखते और कुछ उनके आने पर वसूल कर लेते। इस प्रकार जो कुछ वसूल होता उसको लेकर वे वापिस पटना लौट जाते। जबसे काशीपुर में भूचाल आया तब से उनकी आमदनी भी बहुत कम हो गई थी। उनके काश्तकारों की हालत ज़्यादा खराब थी, क्योंकि अवधबिहारीलाल ने उन लोगों से अपना पैसा कुल वसूल कर लिया था। सिर्फ़ सरकारी तौर पर जितनी कमी या छूट किसानों को मिल गई थी उतनी रकम उन्होंने उनसे वसूल नहीं की। बेचारों ने मुश्किल से अपने पशु और सामान बेचकर पहिले साल का लगान दिया, लेकिन दूसरे साल उनके पास देने के लिए कुछ नहीं बचा था, क्योंकि केवल कुछ खेत साफ़ किए जा सके थे और उनमें भी बहुत कम अनाज उगाया जा सका था।

अवधबिहारीलाल ने जब देखा कि सब किसानों से लगान वसूल नहीं हुआ तो उन्होंने उन पर नालिशें कर दीं। ज़्यादातर नालिशों में उनको जल्दी ही डिगरियां मिल गईं। कुछ किसान अदालत में ही नहीं गए। इसका नतीजा यह हुआ कि उन पर इकतर्फ़ा डिगरियां हो गईं। अब कुर्की और नीलाम का वक्त आया। ज्यादातर किसानों के पास उनके टूटे-फूटे से मिट्टी के घरों के अतिरिक्त और कोई जायदाद नहीं थी। इस हालत

में उनसे वसूल ही क्या किया जा सकता था। उनके ऊपर ज़मींदार अवध-बिहारीलाल का खर्चा भी बेकार गया। कुछ लोगों पर लगान की कई छमाहियां चढ़ गई थीं, उनको उन्होंने बेदखल कर दिया। इस तरह उन बेचारों को भूचाल में जो जबर्दस्त धक्का लगा था उसके अलावा उन्होंने यह मुसीबतों का पहाड़ अपने सिर पर और उठाया। अब उनके पास कोई खेत भी न थे। लेकिन उन लोगों की बेदखलियां भी अवधबिहारी-लाल ने फ़िज़ूल ही कराईं। खेतों में अभी तक बालू भरी हुई थी। किसानों ने इस आशा से कि बालू को देखकर लगान में कमी की जाएगी अभी तक बालू उठाई ही नहीं थी। असल में उनके हृदयों में इसके लिए कोई उत्साह भी नहीं था। इस स्थिति में खेत बालू के कारण बंजर बन गए थे। जब पहिले किसान उनसे बेदखल हो गए तो उन्होंने उनके पट्टे दूसरे किसानों को देने चाहे, लेकिन उतने रुपए में लेने के लिए कोई आगे नहीं आया। हारकर उन्होंने बेदखली किए हुए खेतों को पहिले ही किसानों को वापिस दिया। किन्तु अब किसान उनको उतने लगान पर लेने के लिए तैयार नहीं थे। वे उनको उतने लगान पर ले लेते तो फिर वे उतना रुपया कहीं से देते भी तो, क्योंकि उनमें तो अब उतनी उत्पत्ति होने वाली नहीं था। फलतः किसानों ने उनको पहिले से आधे लगान पर लेना मंजूर किया। यह तय हो गया कि खेत दो साल तक उनके कब्ज़े से निकाले नहीं जाएंगे; लेकिन जब किसानों ने दिन-रात लगे रहकर खेत साफ़ कर लिए तब अवधबिहारीलाल की आंखें बदल गईं। उन्होंने अपना वादा तोड़ दिया और किसानों से निश्चित से ज़्यादा लगान वसूल किया।

किन्तु शारदा का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होने से उसके प्रति किसानों का व्यवहार भिन्न प्रकार का था। उसके किसान इस ख़याल से नहीं कि वे उसके खेत जोतते थे बल्कि इस ख़याल से कि आज वह संकट में थी और संकट में मनुष्य को मनुष्य की सहायता करनी ही चाहिए, उसके लिए अपने खेतों की और घर की पैदावार की चीजें काफ़ी मात्रा में पहुँचाते

रहते थे यद्यपि वे स्वयं भूख और बेबसी की सीमा पर रहते थे। किन्तु अपने दुखी पड़ौसी की सहायता करने के लिए धनी होना कोई शर्त नहीं है, उसके लिए तो हृदय की विशालता चाहिए। यदि हृदय विशाल है तो गरीब, गरीब नहीं है। यदि हृदय में विशालता नहीं है तो फिर अमीर, अमीर नहीं है। शारदा के घर में संकट-काल में भी यह नहीं मालूम होता था कि वह भूखी मर सकती है।

किसान शारदा में बड़ी श्रद्धा रखते थे। उन्होंने शारदा को सारी स्थिति बताई। शारदा पढ़ी थी कुल मैट्रिक तक, लेकिन रमाशंकर ने उसको साम्यवादी साहित्य का कुछ अध्ययन अपनी छुट्टियों में करा दिया था। उसको सामाजिक अर्थ व्यवस्था का ज्ञान था। वह जानती थी कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में क्या दोष है और उन दोषों के कारण बेचारे ज्ञानहीन किसानों और मजदूरों को अत्यन्त बुरी तरह दरिद्रता की अग्नि में झुलसना पड़ता है। उसने किसानों को कहा, "आप लोग पहिले तो कमिश्नर साहिब की कोठी पर जाकर प्रदर्शन करें। कमिश्नर साहिब तिरहुत में रहते हैं। आप उनको अपनी कष्ट-कहानी बताएं। अगर वे आपकी बात न सुनेंगे तो फिर दूसरा उपाय आपको कांग्रेस बता सकती है। आप अपने पंच सूबा कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में भेजें। इस सम्बन्ध में मैं जो कुछ आपकी सहायता कर सकूँगी अवश्य करूंगी।"

किसानों ने इस सलाह के लिए शारदा का बड़ा अहसान माना, और तिरहुत जाने की तैयारी की।

भूचाल में सबसे ज्यादा हानि उनकी कमिश्नरी में ही हुई थी। भूचाल जिस इलाके में भयंकर रूप से आया उसका केन्द्र यह काशीपुर ही था। इसी के आसपास भू-गर्भ के पानी की झीलें भर गई थीं, इसी के आसपास जमीन की सतह में भयंकर दरारें फट गई थी जिनमें कितने ही पशु, बैलगाड़ियां और मोटर-तांगे घुस गए और जब दरारें कुछ सिकुड़ गईं तो उनमें दबे के दबे रह गए। इनको लोगों ने पीछे दरारों की मिट्टी खोद-खोदकर निकाला था। अग्नि रहित ज्वालामुखियों

के मुख (क्रेटर) इसी क्षेत्र में ज्यादा बने थे और गर्म पानी के फव्वारे (गेसर) इसी क्षेत्र में छह-छह सात-सात फीट ऊंचा गर्म पानी फेंकते थे। कितना विस्मयजनक दृश्य था वह; मानो पृथ्वी का हृदय फट गया हो और उसमें से रक्त बह रहा हो। आंख जैसे गोल छेद ऐसे मालूम होते थे मानो धरती माता अपनी आंखें खोलकर घोर दरिद्र बिहारियों की दुरवस्था के दृश्यों को विकल होकर स्वयं देख रही थी। छेदों में से जो गर्म पानी निकला वह मानों उसके दुख के आंसू थे। धरती माता भी बिहारियों की विपन्नावस्था पर रोये बिना न रह सकी; किन्तु माता के आंसू भी बिहारियों के दुखों को क्या कम कर सकते थे? उन्होंने तो उनके कष्टों को और भी अधिक बढ़ा दिया था।

कितनी ही जगहों में पानी की बाढ़ में खेतों का रेत तक बह गया था। जमीन में बड़े-बड़े खार बन गए थे जो बीसियों फीट गहरे थे। ये सब पानी ने काट दिए थे। जहां जमीन की सतह की यह अवस्था हो गई थी वहां अन्न क्या उत्पन्न हो सकता था? बेचारे किसानों ने खून के आंसू रोते हुए अपने खेतों की इस हालत को देखा और शोक-विमूढ़ से चुप बैठ रहे।

लेकिन ज़मींदार अवधबिहारीलाल ने जब यह खयाल तक न किया कि ये लोग लगान कहां से देंगे जब इनके खेत तक बह गए हैं और उनसे लगान का सख्त तकाजा किया, तब वे और भी ज़्यादा दुखी हुए। उनके ऊपर यह तो घोर अन्याय था। प्रकृति के सताए हुए किसान अब जमींदारों के हाथों सताए जा रहे थे। निस्सन्देह यह हृदयहीनता और अमानुषिकता थी। इससे किसानों के हृदय जमींदार के प्रति दुर्भावों से भर गए। किन्तु इसमें उन बेचारों का कोई भी दोष न था। जब समाज किसी भूख से मरते हुए और कंकाल बने हुए दरिद्र के मुँह में से सूखी रोटी का जूठा टुकड़ा भी छीन लेना चाहे या छीन ले तब वह समाज के प्रति विद्रोह न करेगा तो और क्या करेगा? ऐसे भूख से मरते हुए और कंकाल बने हुए दरिद्र ही विद्रोही बना करते हैं। जिस प्रकार भूखा

बाघ अपने शिकार पर अत्यन्त वेग और खूंखारी के साथ टूटता है उसी प्रकार वे अपने पीड़क वर्ग पर टूटते हैं और उनको चट कर जाते हैं। लोग इसी को तो क्रान्ति कहते हैं और इससे भय खाते हैं। क्रान्ति भुखमरे और चिथड़ों से सजे हुए शोषितों की आशा होती है, किन्तु विलासी और पूंजीवादी शोषक उससे भय खाते हैं।

किसानों की बात कमिश्नर ने सुनी और आश्वासन दिया कि वे काशीपुर की हालत की जांच खुद करेंगे। उन्होंने तुरत उसी समय नीचे के अफ़सरों को हुक्म दिया कि वे काशीपुर के भूचाल के नुकसान के कागज उनके पास भेजें। उन्होंने इधर यह कार्रवाई की, उधर किसानों को कहा, "आप लोग घबराएं नहीं, सरकार आप की मदद करेगी और आपके ऊपर जुल्म नहीं होंगे। आप बेफिक्र रहें। मैं अगली १६ तारीख को खुद गांव की हालत देखूंगा।"

किसान बड़े खुश हुए। उन्होंने कमिश्नर साहिब की बड़ी तारीफ़ की और दरअसल कमिश्नर बाइबर्ट बड़े ही रहमदिल थे। उनको किसानों के साथ बड़ी हमदर्दी थी, लेकिन राज-काज में जहां सैकड़ों कर्मचारियों के हाथों में इन्तज़ाम होता है और एक खास शासन-सूत्र ऊपर से उनको चलाता है तब एक व्यक्ति का अच्छापन भी स्थिति में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं कर सकता। शासन की जो नीति होती है वह दृढ़ता के साथ अमल में लाई जाती है और उसके लिए व्यक्तियों की रायों की पर्वाह नहीं की जाती। यद्यपि बाईबर्ट साहब ने सूबा सरकार से पहिले ही प्रार्थना की थी कि उनकी कमिश्नरी को बहुत सहायता की ज़रूरत है; किन्तु उनको जवाब मिला कि सरकार के पास जितने साधन होंगे उनके मुताबिक सरकार ज़रूर मदद करेगी; लेकिन किसानों का नुकसान बहुत अधिक है। उसमें कोई सहायता खास नहीं दी जा सकती। उनको घर बनाने और खाने के लिए कुछ तकावी दी जा सकती है। बस सरकार इतना ही कर सकेगी। उसे सरकारी इमारतों को फिर बनवाना होगा। शहरों में भारी बर्बादी हुई है उनको फिर बनाने में शहरियों की कुछ न कुछ

सहायता करनी ही होगी और फुटकर सहायताएं देनी होंगी। सड़कों की मरम्मत और रास्तों के पुनर्निर्माण में जिला-बोर्डों को सहायता देनी होगी, क्योंकि यह पूरा काम उनकी शक्ति के बाहर होगा। इसके अतिरिक्त कुछ लगान में छूट देनी होगी। उसकी कमी भी कहीं से पूरी करनी होगी अन्यथा शासन का खर्च कैसे चलेगा।

लेकिन कमिश्नर साहिब वास्तव में उनके कष्टों को अनुभव करते थे और उनको कम करने के लिए जो सहायता हो सकती थी वह देना चाहते थे। वे नियत तारीख़ पर काशीपुर गए। किसानों ने कमिश्नर साहिब को घेर लिया। ज़िले के कलक्टर साहिब भी साथ थे। दोनों ने किसानों की बातें सुनीं, उनकी तकलीफों को महसूस किया। और अन्त में उनसे वादा किया कि इसके बारे में सरकार अभी जल्दी ही, कारवाई करेगी।

किसान ख़ुश होते हुए अपने घरों को आए। वे शारदा के कृतज्ञ थे। उसने उनको अच्छी सलाह दी थी। उसी की सलाह का तो यह परिणाम था। किन्तु अभी हो ही क्या गया था ? कुछ दिन के बाद गांव में पटवारी की मार्फत सरकारी हुक्म आया कि गांव के खेतों की फिर जांच की जाए और नुकसान का खातेवार सही अंदाजा लगाकर उसको जल्दी दिया जाए, ताकि सरकार लगान में और ज्यादा छूट दे सके, या जहां जरूरत हो वहां लगान मुलतवी कर सके या और ज़्यादा तकावी बांट सके। पटवारी लोगों से मिला और उसने अपना सौदा पटाया, लेकिन लोगों के पास तो कुछ था ही नहीं। जिनके पास कुछ था, या जिनको कुछ इधर-उधर से उधार मिल गया था उन्होंने फिर अपने खेतों का नुकसान जितना था उससे ज़्यादा लिखा लिया। बेचारे गरीबों को फिर घाटा रहा, क्योंकि वे असमर्थ थे। फिर भी चूंकि कमिश्नर साहिब की सख्त हिदायत थी कि रिपोर्ट सच्ची हो इसलिए ग़रीबों का नुकसान भी काफी दिखा दिया गया था। शारदा के खेत भी इस बार नुकसान में शामिल कर लिए गए थे; किन्तु चूंकि पहिली रिपोर्ट से ज़्यादा फ़र्क दिखाना ठीक न था इसलिए गरीबों के साथ पूरा-पूरा न्याय होना असम्भव था।

और गरीबों को जो कुछ मिला उन्होंने उसी पर सन्तोष किया, लेकिन वे पटवारी से मन ही मन बहुत खार खाए बैठे थे। क्योंकि इस संकट-काल में भी उसने अपनी स्वार्थपरता के कारण उनको बहुत नुकसान पहुंचाया था। उसने उनको तकावी बंटवाते वक्त जब शिनाख्त की तब अपनी चौथ वसूल की, खेतों में तूफ़ान के नुकसान की जो रिपोर्ट की उसमें रिश्वतें खाईं और दूसरी तरह से वह अपनी मुट्ठी गर्म करता ही था। किन्तु लोगों की दृष्टि में सब कर्मचारी ही ऐसे थे। उनका ख़याल था कि पटवारी पुलिस और तहसीलों के चपरासी ये तो हक़-पानी लेते ही रहते हैं, इसलिए उनमें इनके प्रति कोई स्थायी रोष उत्पन्न न होता था। जब बुराई प्रथा बन जाती है तो वह लोगों को बुराई मालूम होते हुए भी उतनी अखरती नहीं। यही कारण था कि संकट-काल में सताए जाने पर भी वे सताने वाले कर्मचारियों के प्रति विद्रोही नहीं बन सके।

कमिश्नर और कलेक्टर की रिपोर्ट पर इस इलाके भर में लगान की वसूली मुल्तवी कर दी गई और जहां नुकसान ज्यादा था वहां काफ़ी छूट दे दी गई। किसानों को इससे कुछ राहत मिली। सरकार ने तहसीलदार को तकावी की दूसरी किश्त तुरंत बांटने की आज्ञा दी। उन्होंने यह भी हिदायत की कि तकावी में से पटवारी या कोई दूसरा कर्मचारी हिस्सा न बंटा ले जैसी कि उनसे शिकायत की गई थी।

(११)

रमाशंकर को भूकम्प के बाद जेल में जब शारदा का पत्र मिला तब वह उसी की चिन्ता में डूबा था। उसका यह पत्र जब आया था तब वह मद्रास की किसी जेल में था। उसमें शारदा ने लिखा था:—

"मैं आपकी ही याद में जीती हूं अन्यथा अब तक कब की मर गई होती। आपकी स्मृति में मैंने सब दुखों का भार हंसते-हंसते उठाने का निश्चय किया था, लेकिन अब क्या हो? भूचाल ने सारे खेतों में बड़ी-बड़ी दरारें कर दी हैं और उनमें बालू भर दी है जिससे उनकी उपज-शक्ति मारी गई है। इस साल शायद लगान न पटेगा। थोड़ा बहुत पट जाए तो भले ही पट जाए। जिन जमींदारियों के मुन्तज़िम मर्द हैं वे तो डराकर, धमकाकर, नालिश और कुर्की करके हर तरह से वसूलकर लेंगे। अगर किसानों के पास पैसा न होगा तो उनके ढोर और सामान ही नीलाम करवा देंगे, लेकिन मैं तो स्त्री ठहरी। मुझे कोई दे देगा और जितना दे देगा उतना ले लूँगी। भगवान जाने अब कैसे इस गृहस्थ की नौका पार लगेगी......"

रमाशंकर को खूब याद था कि वह उस पत्र को पूरा नहीं पढ़ सका था। आंखों के आंसुओं ने बीच में ही ऐसी सावन-भादों की सी झड़ी लगाई थी कि दिन में आंखों के सामने अंधेरा हो गया था। रमाशंकर वीर था, साहसी था, शरीर से बलिष्ठ था और हृदय से उदार था, किन्तु वह एक जगह कमज़ोर था। वह जगह कौन सी थी? वही जहां पति अपनी पत्नी की चिन्ता को संचित रखता है। शारदा उसके हृदय का

खंड थी। वह उसको असीम प्यार करता था। भोग क्या होते हैं यह शारदा जानती भी नहीं थी, किन्तु रमाशंकर को प्यार वह भी प्राणों से अधिक करती थी। वह उसको अपना समझती थी। उसके भीतर जब यौवन कहीं सोया पड़ा था और उसने करवट भी न ली थी तभी रमाशंकर राजनीति में कूद गया था। फिर वह सत्याग्रह आन्दोलन में जेल गया और अन्त में एक षडयन्त्र-केस में धर लिया गया। इस प्रकार राजनीति का तूफ़ान देवता को इससे पहिले ही अपनी प्रबल लहरों में बहा ले गया था जब उस पर बलिहार जाने के लिए एक कली सुवास संचय कर रही थी और अपने मनोरम अंगों का विकास कर रही थी। देवता कली को कली होने पर भी प्यार करता था, क्योंकि वह जानता था कि वह उसके ही लिए तप कर रही थी और खिलने का उपचार कर रही थी! दूसरी ओर कली भी देवता को प्यार करती थी, क्योंकि वह जानती थी कि उसे उसी के चरणों में अपने हृदय का सब सुगंध—भार चढ़ा देना था और वह उसी की पूजा के लिए खिल रही थी।

किन्तु लहरें बड़ी निठुर होती हैं। वे न देवता का लिहाज़ करती हैं और न कली का ख़याल। वे जड़ होती हैं और हृदयहीन होती हैं। वे केवल अपना काम करना जानती हैं। उनमें सोचने की कोई क्षमता नहीं होती। रमाशंकर को राजनैतिक समुद्र के अंधकार-मय-तल—इस कारावास में जो मद्रास प्रान्त में उसके घर से इतना दूर था इस कली का ख़याल आता था। वह कैसी होगी, उसका हृदय कितना दुखी होगा, माता-पिता आंखों से अंधे होगए, उसका सहारा अब कौन होगा और सबसे ऊपर था उसका आर्थिक संकट जो उस पर भूचाल के कारण आगया था। विचारों के इस उद्वेग में रमाशंकर ने लिख दिया:—

"मैं कारावास के इन सींखचों को यदि अपने दांतों से भी चबाकर तोड़ सकता तो अवश्य तोड़ डालता और तुम्हारी सहायता को आता, लेकिन कठोर प्रकृति ने मेरे दांतों को इतना कठोर नहीं बनाया। मैं इस प्रकाशमय दुनिया के बीच में अंधियारे रेगिस्तान की तरह बनी हुई इस

जेल में पंख कटा हुआ तोता हूँ। मेरे पंखों में उड़ने की शक्ति नहीं है, नहीं तो किसी दिन संध्या कि हलकी कालिमा में मैं कारावास के इस खुले सहन से उड़ आता ऊपर आकाश की ओर, और मैं तब समझता हूँ कि तुम्हारी इस मुसीबत में तुम्हारा सहारा बन जाता। मुझे अपने नेत्रहीन पिता और माता का ख़याल भी कम शोकाकुल नहीं करता, लेकिन मेरे भाग्य का निर्णय कराने वाली सत्ता का फैसला है कि मैं इस जेल की दीवारों से ही सिर मारते-मारते अपने प्राण दे दूं। आठ साल—लम्बे आठ साल और जेल का यह एकान्त! जिस दिन मैंने अदालत की कुर्सी पर बैठे हुए, स्वार्थी और झूठे गवाहों की गढ़ी हुई झूठी गवाहियों के आधार पर, मुझ जीवित अभियुक्त के मृतक बक्स में कील ठोकने वाले उन न्यायमूर्ति महोदय की, अदालत के हृदय को भी हिला देने वाली भी, उस वाणी को सुना जिसने यह कहा, 'अभियुक्त को मैंने दोषी पाया, इसलिए मैं उसको आठ साल का कठोर कारावास देता हूं,' तब मेरी आत्मा न्याय के नाम पर अन्याय करने वाली इस प्रणाली के प्रति घृणा से भर गई। मैंने न्याय की वह विडम्बना तिरस्कारपूर्ण भाव से अट्टहास करते हुए स्वीकार कर ली। लेकिन उसमें न्यायाधीश का दोष कम था और व्यवस्था का दोष अधिक। इस न्यायाव्यवस्था ने ही तो ये न्यायाधीश उत्पन्न किए हैं। और न्यायाधीश का दोष तो केवल इतना था कि वह अपने स्वार्थ के लिए उस न्यायाव्यवस्था के हाथों में कठपुतली बन गया था। शारदा! तुम धीर हो, वीरांगना हो और समझदार हो। मैं जानता हूँ कि स्त्री में असीम शक्ति होती है यदि वह उसको पहिचान ले। मैं जानता हूँ कि हमारा पूर्व इतिहास स्त्रियों के गौरवमय कार्यों की प्रशंसा करते-करते थकता नहीं। ऐसी स्थिति में मैं तुमसे बहुत कुछ आशा रखता हूँ।"

शारदा ने यह पत्र आंसुओं से भिगो दिया। वह उसके पति ने अपने हृदय के रक्त से लिखा था। उसकी आंखों के मोती लुटे जा रहे थे उसके पति के उन प्रेम भरे शब्दों पर जो उसके पति के हृदय से निकले थे।

लेकिन शारदा ने अपने मन को समझाया कि रोने-धोने से क्या होता है और रमाशंकर को लिख दिया कि अभी तो कई वर्ष जेवर वगैरा से ही गुज़र हो सकती है। वे चिन्ता न करें। परमात्मा ने जब चोंच दी है तब वह चुगा भी जरूर देगा।

इस बात को तीन वर्ष हो गए। शारदा ने अपना सब कुछ खर्च कर दिया फिर भी घर की ज़रूरतें पूरी होती दिखती न थीं। उसका सब ज़ेवर चला गया था और घर की चीजें भी बिक गई थीं। फिर भी उसने बिना किसी आमदनी के तीन साल तक गृहस्थी की गाड़ी को ढकेल दिया। यह क्या कम बात थी। उसने अत्यन्त धैर्य का परिचय दिया था।

लेकिन जब उसकी अवस्था इतनी खराब हो गई कि उसके पास जितनी पूँजी अवशेष थी उसका केवल एक लिफाफ़ा ही खरीदा जा सका तो वह बहुत ही दुखी हुई। उसका धीरज टूट गया, और जब वह अपने पति को पत्र लिखने लगी तो वह यह जानते हुए भी कि अपना दुख उनको सुनाने से उनका कारावास का असह्य कष्ट और भी असह्य हो उठेगा, उसने उसमें अपने हृदय का सारा शोक और क्षोभ एक पागल और विवेकहीन प्राणी की भांति उंडेल दिया। उसने पत्र के अन्त में लिखा:—

"मैं मर जाऊगी, लेकिन सहायता किसी से भी न मागूंगी। अब यह ख़याल करके आज मेरा हृदय फटा जा रहा है कि विवाह के दिन मेरे पास क्या नहीं था? पिता का भरा-पूरा घर मैं अपना समझती थी और श्वसुर की सम्पत्ति पाने की प्रसन्नता में मैं पागल हो रही थी। मैं सोने के भार से दबी जा रही थी और रेशम से परिवृत थी, किन्तु आज मेरे पास विष खाने के लिए भी एक पैसा नहीं। कपड़े भी फट चुके हैं और घर में अनाज भी समाप्त है। सिर्फ पांच सेर चावल बचे हैं इनको मैंने अपने अंधे श्वसुर और सास को जब तक मैं जीवित हूं तब तक जीवित रखने के लिए रखा है। जिस दिन उनके भूखा मरने का अवसर आएगा उस दिन आपकी शारदा सचमुच मर जाएगी।"

शारदा ने यह पत्र बंद करके डाकखाने में डालने के लिए किसी कस्बे को जाने वाले व्यक्ति के हाथ भेज दिया। उसके बाद वह देर तक अपने कमरे में बैठी रोती रही। उसने देखा कि उसके कमरे में ही उसके सिर के ऊपर रमाशंकर का चित्र टंगा था। कई वर्ष हो गए चित्र को वहां टंगे-टंगे; किन्तु वह अभी तक वैसा ही सुन्दर था। शारदा के आंसू कुछ रुक गए। उसको रमाशंकर को प्रसन्न और स्वस्थ देख कर शान्ति सी मिली, लेकिन थोड़ी ही देर में उसके हृदय ने कहा, 'पगली, यह तो चित्र है। चित्र पर काल और परिस्थितियों का प्रभाव नहीं के बराबर होता है, किन्तु मनुष्य तो काल और परिस्थितियों के द्वारा ही बनता या बिगड़ता है। वह काल और परिस्थितियों के हाथों में ऐसा ही विवश होता है जैसी विवश कुम्हार के हाथों में गीली मिट्टी होती है। वह चाहे तो उसका कुछ बना दे। वह उसको कोई भी रूप दे सकता है। वह उस मिट्टी का गणेश भी बना सकता है जिसकी पूजा कम से कम एक दिन समाज का एक बड़ा भाग करता है और वह उस मिट्टी का गधा या गाय भी बना सकता है जिसको बालक एक क्षण भर में तोड़ सकते हैं और घूरे पर फेंक सकते हैं। काल और परिस्थितियों ने रमाशंकर को क्या बना दिया होगा इसकी कल्पना करना कठिन है। इतने वर्ष हो गए रमाशंकर को जेल में निकृष्ट भोजन पर अपने शरीर को जीवित रखते हुए और श्रम की चक्की में पीसते हुए। उसमें क्या बचा होगा अब? वह तो बेचारा अस्थिचर्मावशेष मात्र होगा।' यह सोचकर शारदा के आंसू फिर उमड़ पड़े और उसका हृदय फट पड़ा।

इतने में ही शारदा की सास ने पुकारा, "बेटी शारदा, तेरे पिता की यह चिट्ठी आई है।"

शारदा ने हृदय थाम लिया और आंसू पोंछ लिए। उसने चिट्ठी खोली और पढ़ी। उसको अपने पिता के परिवार पर बड़ा रोष आया। उसने कहा, 'इतना धन है कम्बख्तों के पास, लेकिन फिर भी इतना नहीं हुआ कि मेरी खबर-सुध लेने के लिए कोई चला आता। आज तीन वर्षों

के बाद उन्होंने मेरी दुख-सुख की बात पूछी है। मेरे पति से उनकी लड़ाई है, मैंने उनका क्या बिगाड़ा था। लेकिन मेरे ऊपर विपत्ति आई है। इसका भार मुझको ही उठाना चाहिए। इसमें दूसरों से कोई आशा नहीं करनी चाहिए। और दूसरा कोई विपति में साथ भो कब देता है?'

यह सोचकर शारदा चुप हो गई और अपने काम-काज में लग गई। काम करते-करते जब उसका विवेक कुछ स्वस्थ हुआ तब उसको ख़याल आया, 'पत्र में मैंने उनको क्या-क्या लिख दिया। इससे उनको कितना आघात पहुंचेगा। मैंने बड़ी भूल की।'

अब उसको बड़ा पछतावा हुआ कि उसने यह क्या किया, किन्तु जब तीर तर्कश से निकल गया था तो पछताना व्यर्थ था। उसने सोचा, 'खैर कुछ भी हो। परमात्मा कुशल करेगा।'

किन्तु शारदा को फिर भी शान्ति नहीं मिली। उसने सोचा, 'दूसरा पत्र लिख दूं। ऊपर लिख दूंगी, पहिला पत्र रद कर दें।' किन्तु उसके पास तो पैसा एक भी न था। इस स्थिति में मन मारकर बैठे रहने के अतिरिक्त अब उसके पास कोई चारा न था।

(१२)

रमाशंकर को जेल में शारदा के पत्र पन्द्रहवें दिन मिलते रहते थे, परन्तु अब पत्र मिले पन्द्रह दिन से अधिक समय गुज़र गया था। उसने कई बार पूछा भी कि क्या उसका कोई पत्र आया था; किन्तु जब कोई पत्र आया ही नहीं था तब दिया कहां से जाता। जेलर ने उसको आश्वासन दिया, "आपका पत्र जब आएगा तो निश्चय रखिए मैं बिना देखे ही उसको फौरन आपके पास भिजवा दूंगा। मुझको आपके साथ बड़ी सहानुभूति है, किन्तु सरकार की हिदायतों के लिए मजबूर हूँ। सुपरिन्टेन्डेन्ट भी बड़ा सख्त है। मुझे भय लगा रहता है कि कहीं कोई शिकायत न कर दे, अन्यथा मेरी नौकरी भी जाएगी।"

रमाशंकर को अधिकारियों के विशेष संकेत से कहिये या क्रान्तिकारियों के प्रति सरकार की आम कठोर नीति के फल-स्वरूप कहिये इन वर्षों में भीषण यातनायें दी गई थीं। यदि वह असाधारण शक्ति और क्षमता का व्यक्ति न होता तो उसका हृदय कब का टूट गया होता और मस्तिष्क विकृत और विशृंखल हो गया होता। लेकिन जर्जर और दुर्बल काय हो जाने पर भी वह अपने आपको संभाले हुए था। फिर भी घर की चिन्तायें काठ के भीतर खाते हुए घुन की भांति उसे खाती रहती थीं।

जेलर की बात पर कुछ विचार करने के बाद उसने कहा, "आप जेल के कायदों के मुताबिक ही मेरे साथ व्यवहार करें। मैं आपसे कोई रियायत नहीं चाहता। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण आप किसी मुसीबत में फंस जाएं। मैंने जब अब तक के भीषण कष्टों के विरुद्ध शिकायत

नहीं की, तो अब ही क्या करूंगा।"

इस बातचीत के दूसरे दिन जेलर को रमाशंकर के घर से पत्र मिला। उसने उसको तुरंत वार्डर के हाथ भीतर रमाशंकर के पास भेज दिया। रमाशंकर ने वार्डर के हाथ से पत्र ले लिया और किसी अज्ञात अनिष्ट की आशंका से भरे हुए हृदय से उसको पढ़ा। उसने पत्र पूरा पढ़ लिया मानो उस पर उसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा। वह मौन रहा। १० मिनिट, २० मिनिट फिर १ घंटा और उसके बाद दो घंटे। शाम हो गई। उसके बाद रात भी बीतने लगी। वार्डर खाना रख गया था। वह एक ओर रखा था। रमाशंकर को वार्डर का कुछ पता न था। वार्डर ने उसको पुकारा होगा, लेकिन उसने वार्डर की आवाज़ ही नहीं सुनी। उसके बाद जब रात को सब कैदी सो गये और जेल में बिल्कुल सन्नाटा छा गया तब वह बड़े ज़ोर से हंसा। उसकी हंसी रुकती न थी। उसके बाद वह बड़े ज़ोर से रोया। फिर चुप हो गया और कुछ बड़बड़ाने लगा। वह कोठरी के दर्वाजे के पास बैठा था और किवाड़ बन्द थे। जब सुबह हुई और किवाड़ खुले, वह तब भी चुप बैठा था।

वार्डर ने देखा कि रमाशंकर ने खाना नहीं खाया। उसने जेलर को रिपोर्ट की। जेलर खुद दफ्तर से भीतर गोल चौक में आया। उसने रमाशंकर को देखा। उसकी आंखें लाल हो रही थीं। खाना एक ओर पड़ा था। चिट्ठी भी वहीं पड़ी थी। कपड़े अस्तव्यस्त थे। उसकी शक्ल जेलर को भयावनी मालूम हुई।

जेलर ने पूछा, "कहिए रमाशंकर जी, तबीयत कैसी है?" रमाशंकर हंसा। जेलर ने पूछा, "ठीक है, फिर रात को यह खाना क्यों नहीं खाया?" रमाशंकर अब और भी ज़ोर से हंसा। जेलर को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह इसको क्या हो गया। यह तो बड़ा समझदार और गम्भीर आदमी था। उसने वार्डर से पूछा, "ये कल तो अच्छे थे?"

वार्डर ने कहा, "हां हुजूर!"

जेलर ने पूछा, "फिर इनको यह क्या होगया है? तुम जानते हो?"

वार्डर ने कहा, "हुजूर, इन्होंने कल शाम जब यह चिट्ठी पढ़ी तब से ही इनका ऐसा हाल है। कैदी कहते हैं कि ये रात भर हँसे और रोए हैं।"

जेलर ने रमाशंकर के कन्धे पर हाथ रखा और बड़े प्रेम से पूछा, "रमाशंकर, मैं आपको अपने भाई की तरह मानता हूँ। आप मुझे बताइए कि क्या बात है? क्या घर से कोई बुरी खबर आई है?"

लेकिन रमाशंकर ने कुछ नहीं कहा। उसकी आंखों में आंसू भर आए। फिर वह ज़ोर से रोने लगा। यहां तक कि जेल में दूर तक आवाज़ जाने लगी। जेलर उसकी यह हालत देखकर डर गया। उसने समझ लिया कि इसको अवश्य कुछ हो गया है। वह वहां से चला आया और वार्डर को कह आया कि किवाड़ बन्द कर दे। किन्तु वह कुछ ही दूर गया था कि उसको याद आया, 'मुझे उसकी चिट्ठी तो देखनी चाहिए कि उसमें क्या है?' वह पीछे लौटा और वार्डर को कहा, "रमाशंकर के कमरे में से वह चिट्ठी उठा लाओ।"

वार्डर चिट्ठी लेकर जब आया तब जेलर जेल के डाक्टर से कह रहा था, "बड़ा समझदार और योग्य युवक था। उसका अध्ययन कितना विशाल है। लेकिन आज तो उसकी हालत देखकर दुख होता है। आप उसकी जांच कीजिए।"

डाक्टर ने कहा, "मैं अभी जाता हूँ। लेकिन अभी सुपरिन्टेन्डेन्ट साहिब भी आने वाले हैं।"

जेलर ने कहा, "ठीक, अभी ठहरिए।" जेलर ने शारदा का पत्र पढ़ा। वह बड़ा ही दुःखपूर्ण था। उसे उसने डाक्टर को सुनाया। डाक्टर की आंखों में पत्र सुनकर आंसू आगए। उसने जेलर को कहा कि इस पत्र ने ही रमाशंकर के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाला है और इसी के प्रभाव से उसका मस्तिष्क अपना काम ठीक नहीं कर रहा है।

जेलर ने कहा, "हां यही बात मालूम होती है।"

सिविल सर्जन ने जेल का मुआइना किया। फिर रमाशंकर को देखा।

उसने हमेशा की भांति हंसकर उसको सम्बोधन किया, लेकिन रमाशंकर ने उसी प्रकार खाली आकाश में अपनी टकटकी जमाए रखी। वह एक शब्द भी नहीं बोला और न अपने स्थान से ही हिला।

सिविल सर्जन ने पूछा, "इसकी यह हालत कैसे हुई? यह तो पागलपन की हालत है। यह इस समय बिल्कुल पागल है। इसको यहां से निकाल कर आराम से अस्पताल में रखो और इसका खाना और कपड़ा सब अच्छा कर दो। इसको मैं कल फिर देखूँगा। डाक्टर साहिब, आप हर वक्त इसका ध्यान रखिए। मैं बिहार सरकार को इसके बारे में लिखता हूँ।"

सिविल सर्जन मुआइना करके चला गया। रमाशंकर अस्पताल में पहुंचा दिया गया, किन्तु उसकी स्थिति वैसी ही बिल्कुल पागल की सी थी। दूसरे दिन सिविल सर्जन ने रमाशंकर को फिर देखा और राय दी, "इसका वही हाल है। उसमें कोई फर्क नहीं है। यह पूरा पागल होगया है। इसके दिमाग को कोई सदमा पहुंचा है। अब यह जल्दी अच्छा नहीं हो सकेगा।"

बिहार सरकार ने लिख दिया कि हमारा कैदी जल्दी से जल्दी वापिस कर दिया जाय। सरकार ने इरादा किया है कि उसकी बाकी सज़ा माफ़ कर दी जाएगी।

रमाशंकर पटना पहुंच गया और उसको सुरक्षित जेल के अस्पताल में पहुंचा दिया गया। उसके घर खबर कर दी गई कि रमाशंकर बीमार है। वह अकेला घर आने के लायक नहीं है। कोई आकर उसको ले जाए। लेकिन वह चिट्ठी शारदा के पास कभी नहीं पहुँच सकी। इसका कारण यह था कि जिस दिन की डाक में यह चिट्ठी शामिल थी उसमें डाकिये के पास मनीआर्डरों के लगभग सात सौ आठ सौ रुपए थे जिनका भेद पाकर भूखे लोगों ने डाकिए पर दिन दहाड़े एक चौड़े मैदान में, जिसके आसपास एक-एक कोस तक कोई गांव न था, हमला कर दिया और बबूल काटने के कुल्हाड़ों से उसको गोदकर एक जंगली अंधे कुएं में फेंक

दिया। उन्होंने नकद रुपए और नोट तो उसके थैले में से निकाल लिए और पत्रों से भरे हुए थैले को भी उसी में फेंक दिया।

रमाशंकर जेल से छोड़ दिया गया और उसको काशीपुर के पास रानीखेड़ा स्टेशन का टिकिट दिला कर गाड़ी में बिठा दिया गया। उसने कुछ देर होश की सी बातें की। इससे जेल के कागजों में लिख दिया गया कि डाक्टर ने रिहाई के वक्त मस्तिष्क स्वाभाविक अवस्था में पाया।

लेकिन रमाशंकर तो ठीक था नहीं। उसके एक-दो परिचित मित्र गाड़ी में मिले। उनको देखकर वह चुप ही बैठा रहा। उन्होंने उसका अभिवादन किया, लेकिन फिर भी वह बोला नहीं। उन्होंने अपने मन में कहा कि कदाचित यह कुछ ठीक नहीं है। उन्होंने उसको हाथ पकड़कर उतारकर ले जाना चाहा। रमाशंकर उनके साथ बीच में ही उतर गया। उसके मित्र उसको अपने घर ले गए, लेकिन रमाशंकर बोला वहां भी नहीं। वे लोग हैरान थे कि आखिर यह बात क्या है। उन्होंने उसको पूछा, "क्या आज आपका मौन है?" रमाशंकर हंस दिया। उन्होंने फिर पूछा, "कहो, अब शारदा कैसी है?" रमाशंकर रोने लगा। उसके एक मित्र ने दूसरे से कहा, "रमाशंकर की तबीयत ठीक नहीं मालूम होती। इसकी हजामत बनवाओ, इसको नये खादी के कपड़े पहिनाओ और इसको खाना खिलाकर अभी सो जाने दो। इससे पीछे बातें करेंगे।"

दूसरे मित्र ने उसकी बात समझ ली और नौकर को कुछ कहा। फिर एक आदमी ने रमाशंकर को आराम कुर्सी में बिठा दिया। रमाशंकर उदास बैठा रहा।

उसके मित्रों ने आपस में कहा, "यह तो मद्रास प्रान्त में कैद था। यह यहां कैसे आया, कब छूटा और ऐसी हालत में कैसे है, यह भेद इससे ज्ञात नहीं हो सकता; क्योंकि यह तो बोलता ही नहीं। अच्छा यह हो कि शारदा को तार दे दिया जाए। निदान शारदा को तार दे दिया, 'रमाशंकर यहां है, ले जाइये। हालत खराब है। कुछ पागलपन सा है।'

---

(१३)

रम्भा ने अवधबिहारीलाल के सन्देह करने पर भी अपना मार्ग नहीं बदला। सुशील के साथ उसकी खिलवाड़ अब भी जारी थी। सुशील भी धीरे-धीरे उसका अभ्यस्थ बना जा रहा था, यद्यपि उसको स्वयं उसके खतरे का ज्ञान न था। जब कोई जलधारा किसी चट्टान पर होकर दीर्घ काल तक लगातार बहती है तो उससे पत्थर पर घिसाव पड़ जाता है, किन्तु जब तक किसी बड़ी नदी की पहाड़ी घाटी में जहां पानी तेज़ बहता है जाकर ध्यानपूर्वक नहीं देखा जाए तब तक यह घिसाव मालूम ही नहीं पड़ता। पत्थर समझता है कि पानी जैसी नरम चीज़ उसको क्या घिस डालेगी, लेकिन दीर्घ काल में उसके हृदय का गर्व चूर-चूर होजाता है। गंगा की घाटी में किनारों के साथ पानी का ही घिसाव है। पहाड़ों के ढालों पर पानी के घिसाव के कारण ही पत्थरों में चिकनापन आता है। सुशील को जो बात पहिले बहुत बुरी लगती थी वह नहीं जानता था कि वही बात उसको अब इतनी मीठी क्यों मालूम पड़ती थी। वह जिस दिन रम्भा के घर नहीं जाता उस दिन रम्भा तो उससे शिकायत करती ही, किन्तु उसका हृदय भी न जाने क्यों रम्भा के घर की रह-रह कर याद करता था।

रम्भा को अपने इस जीवन में अब रस आने लगा था। वह सुशील के सामने मिठास-भरे गीत गाती। उसका स्वर मीठा था जैसा किसी तरुणी का हो सकता है। सब जानते हैं कि इस अवस्था में लड़कियों के स्वर में विशेष मिठास आजाती है। उनमें गाने की रुचि भी बढ़ जाती है। वे

अपनी सखी-सहेलियों से और अपनी मामियों और चाचियों से नये-नये गीत बहुत जल्दी सीख लेती हैं। इसके लिए उनको किसी खास शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। यह कला उनमें सुनते-सुनते ही विकसित हो जाती है। वे चलते-फिरते और काम करते उन्हीं गीतों को गुनगुनाती रहती हैं। विवाह और दूसरे उत्सवों में तो उनके बंधे गले मानों खुल जाते हैं। कितने ही गीत अच्छे भी होते हैं और कितने ही बुरे भी, किन्तु प्रायः सभी स्त्री-स्वभाव के परिचायक होते हैं। शायद ही कोई गीत ऐसा हो जिसमें स्त्री का हृदय व्यक्त न हुआ हो। वास्तव में अपने हृदयों के भावों को प्रकट करने का उनके पास इससे भिन्न अन्य साधन ही क्या होता है। स्त्रियों के विकास के प्रायः सभी मार्ग बन्द रहते हैं। लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा का समाज बहुत कम प्रबन्ध करता है, उनके भरण-पोषण की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना लड़कों के भरण-पोषण की ओर दिया जाता है। उनको घरों से बाहर खुले में रहने की लड़कों की अपेक्षा बहुत कम स्वतंत्रता रहती है। ऐसी स्थिति में जिस प्रकार सब ओर से रोका हुआ पानी एक ओर का बांध तोड़कर बह निकलता है उसी प्रकार स्त्रियां अपने हृदयों का गुबार विवाह और दूसरे उत्सवों में गीत गाकर निकालती हैं। रम्भा को याद था कि उसके विवाह में लड़कियों ने गीत गाया था, 'अब तोकूँ ईंगुर बरनी होय रे! सिन्दूरी बर्ना।' रम्भा ज़्यादा पढ़ी-लिखी तो न थी, लेकिन फिर भी उसको गान में रस तो आता ही था। वह सोचती, 'इस गीत में उपमाएं कैसी अच्छी हैं! बर्ना कैसा है सिन्दूरी।' सिन्दूरी रंग शुद्ध रक्त का लाल रंग होता है। वह स्वस्थ तरुणाई का रंग होता है। वह इतना मोहक और आंख को खींचने वाला होता है कि ऐसे युवक पर से स्त्रियों की तो क्या पुरुषों की भी आंखें नहीं हटना चाहतीं। किन्तु दोनों की आंखों में फ़र्क होता है। स्त्रियों की आंखों में लोभ होता है और पुरुषों की आंखों में ईर्ष्या। स्त्री कहती है, 'अगर मैं इसे प्यार कर सकती, किन्तु पुरुष कहता है, 'अगर मैं भी ऐसा ही स्वस्थ होता।' कहने का तात्पर्य यह है कि सिन्दूरी बर्ना अब तरुण

हो गया, इसलिए स्त्रियां कहती हैं कि अब उसके लिए एक बर्नी चाहिए, किन्तु वह बर्नी बर्ना के अनुरूप ही होनी चाहिए। उससे हीन नहीं। स्त्रियां कहती हैं कि हे बर्ना! तेरे अनुरूप तो वह बर्नी हो सकती है जिसका रंग ईंगुर जैसा गहरा लाल हो। सिन्दूरी लाल के साथ ईंगुर का गहरा लाल रंग ठीक फबेगा। रम्भा की दृष्टि में बर्ना और बर्नी का यह रूप समाया हुआ था। वह जब सुशील को कुर्सी पर कांच के सामने बैठा देखती तो उसके पीछे जा खड़ी होती और तब देखती कि दोनों का रंग कैसा है। वह कहती, "सुशील का रंग सिन्दूरी है और मेरा ईंगुर का सा; लेकिन परमात्मा ने मुझको सुशील जैसा बर्ना नहीं दिया।" इसके विपरीत जब वह पीले रंग के और सूखे हुए मुँह के अवधबिहारीलाल को देखती तो कहती, "यह मटियाला बर्ना इस ईंगुर बर्नी के भाग्य में लिखा था। फूट गई मेरी तक़दीर!" वह उनसे कुढ़ जाती और कभी अच्छी तरह से न बोलती।

अवधबिहारीलाल समझते कि आजकल रम्भा अधिक गम्भीर हो गई है। वह उनसे ज्यादा बोलती ही नहीं। वह उनसे कुछ अलग सी शायद इसी कारण रहती है। किन्तु उनको यह ध्यान नहीं था कि आकाश में एक उपग्रह अपने ग्रह से तभी दूर होता है जब कोई दूसरा ग्रह उसको अपनी ओर खींचता है। आकाश में उल्कापात का कारण भी यही है। जब आकाश में चलते-चलते कोई उल्का थक जाता है और उसकी शक्ति कम हो जाती है तो उसको कोई अधिक शक्तिमान पिंड अपनी ओर आकर्षित करता है। वह उल्का उसी के हृदय पर जा गिरता है। यही बात स्त्रियों और पुरुषों के सम्बन्धों के बारे में है। रम्भा को सुशील अपनी ओर खींच रहा था, इसलिए वह अवधबिहारीलाल से दूर हटती जा रही थी। वह इसमें विवश थी। यदि अवधबिहारीलाल इसको समझ नहीं सकता था तो इसमें रम्भा का ज्यादा दोष न था। रम्भा का दोष तो केवल इतना ही था कि वह सामाजिक आकाश में अराजता उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रही थी। वह समाज-नियम से परिचित थी; किन्तु उसको

आंखें बन्द करके लांघ जाना चाहती थी। उसका परिणाम क्या हो सकता था यह वह जानती थी, किन्तु उसकी भयंकरता उसको अनुभव नहीं हो रही थी।

रम्भा सुशील से प्रेम करती थी और वह सुशील के सम्मुख उसे व्यक्त करने में सकुचाती न थी। वह रहन-सहन, बोलचाल. और प्रत्येक व्यवहार में उसके सम्मुख अपने प्रेम का परिचय देती। उसको देखकर मानों उसकी आत्मा खिल जाती और उसकी मुखाकृति गुलाब की भांति अपनी सुन्दरता की किरणें बखेरने लगती। ऐसा लगता मानो रम्भा स्वयं कुमुदनी है और सुशील चन्द्र है। दोनों में से किसी को ज्ञान नहीं था कि वे यह क्या कर रहे हैं। वे उस नशे में, जो तरुणाई में चढ़ना आरम्भ होता है और यौवन में पूरा चढ़ जाता है, यह भूल गए थे कि वे संसार के प्रवाह में खड़े हैं और उनको उस प्रवाह के साथ ही बहने की आवश्यकता है। वे नहीं जानते थे कि यदि वे इस प्रवाह के विरुद्ध बहने का प्रयत्न करेंगे तो प्रवाह अवश्य उनके पैर उखाड़ देगा और तब वे अनिच्छा से प्रवाह के साथ बहेंगे।

वे यह जानते थे कि संसार उन लोगों को अच्छा समझता है जो अपनी इच्छा से प्रवाह के साथ बहते हैं। वे अनुभव करते थे कि वे इच्छा से प्रवाह के साथ नहीं बह रहे थे, बल्कि उसके साथ बहने के लिए उनकी अनिच्छा थी। वे यह भी जानते थे कि वे प्रवाह के विरुद्ध नहीं जा सकते। इस अवस्था में अनिच्छा होने पर भी प्रवाह उन्हें बहा ले जायेगा और उस स्थिति में उन्हें अनिच्छा से उसके साथ बहना पड़ेगा।

किन्तु वे सोचते कि अपनी इच्छा से प्रवाह के साथ बहने में और अनिच्छा से प्रवाह के साथ बहने में अन्तर ही क्या है? अन्तर साफ़ था। इच्छा से प्रवाह के साथ बहने में बहने वाले थकते नहीं, उनको उसका प्रतिरोध नहीं करना पड़ता; बल्कि उसकी सहायता लेते हुए वे किसी किनारे से लगने का प्रयत्न करते हैं और वे किसी किनारे पर लग भी जाते हैं, किन्तु प्रवाह के विरुद्ध जाने का प्रयत्न करने वाले अपनी सीमित

शक्ति को प्रवाह की असीम शक्ति से टकराकर चूर-चूर कर लेते हैं और जब उनके हाथ और पैर बिल्कुल शक्तिहीन होकर अपना काम बन्द कर देते हैं तब वे मुर्दे के भांति उसमें बेहोश होकर बहने लगते हैं। वे किसी किनारे से लगने की इच्छा करते हैं, किन्तु उनमें शक्ति नहीं रहती। थके हुए हाथ-पैर प्रवाह के वेग को उसके साथ बहते हुए भी नहीं काट सकते और बिना प्रवाह के वेग को काटे वे किनारे से लग नहीं सकते। किन्तु कभी-कभी संयोगवश वे उसके किसी ऐसे मोड़ या घुमाव पर जा पहुंचते हैं जहां प्रवाह मोड़ की चट्टान से रुककर अपना पानी सामने के दूसरे किनारे की ओर फेंकता है। उस अवस्था में प्रवाह में बहती हुई कितनी ही चीजों की भांति वे मोड़ के सामने के किनारे से टकराते हैं। वहां वे ऐसे पानी में पहुँच जाते हैं जहां वेग कम होता है। यदि उनमें कुछ भी शक्ति अवशेष होती है तो उनके लिए उसमें से निकलना सम्भव भी होता है अन्यथा वे उसी में लाश बने सड़ते रहते हैं।

इसका सीधा-साधा अर्थ यह था कि रम्भा और सुशील दोनों अनजाने संसार के प्रवाह के विरुद्ध जाने का प्रयत्न कर रहे थे और साथ ही वे, अर्ध चेतन अवस्था में एक दूसरे से खिलवाड़ करते जाते थे। रम्भा के वक्ष में वासना खेलती थी। वह उसको कभी भी डस सकती थी, किन्तु मोहान्ध रम्भा उसको अपनी शोभा बढ़ाने का हार समझे हुई थी और उसे सुशील की आंखों से बचाकर अपने अंचल में छुपाये हुए हंस रही थी। सुशील जानता था कि उसके अंचल में कुछ न कुछ है, लेकिन वह भी उसकी भयंकरता को उसके पूरे रूप में अनुभव न करता था।

रम्भा अभी तक सुशील से नियमित रूप से पाठ पढ़ती थी और थोड़ा-बहुत काम भी अवश्य करती थी। यदि वह इतना भी न करती तो फिर सुशील के घर में बुलाने का कोई आधार भी नहीं रह जाता। सुशील इसी बहाने से तो घर में बुलाया जा सकता था और सुशील स्वयं भी इसी उद्देश्य को लेकर आता था। उसको सन्तोष था कि रम्भा कम से कम

कुछ तो अवश्य पढ़ रही थी। अवधबिहारीलाल भी देखते थे कि रम्भा कुछ न कुछ उन्नति अवश्य कर रही थी। वह सुशील से कुछ न कुछ सीख रही थी और सुशील का परिश्रम सार्थक कर रही थी। लेकिन रम्भा के लिए सुशील शिक्षक की अपेक्षा मनोरंजन का साधन अधिक था। वह शिक्षक सुशील के बिना बड़ी प्रसन्नता से रह सकती थी, लेकिन मनोरंजन के साधन सुशील के बिना उसको एक दिन भी बिताना कठिन होता था।

रम्भा इस प्रकार अपना समय यापन कर रही थी और एक अंधेरी पगदंडी पर, जो एक ऊंची पहाड़ी से एक नीचे खड्ड की ओर बहुत कम ढाल लिए हुए लम्बाकार सी दौड़ती थी, बड़े उत्साह से आगे को बढ़ रही थी। उसकी आंखों में विकार की गहरी धुंध छाई हुई थी जिससे उसको पगदंडी की भयानक स्थिति और खड्ड की गहराई दिखाई नहीं देती थी। उसको अभी तक यह खयाल हो रहा था कि उसके सम्मुख यही मार्ग सबसे ज़्यादा सुखद और कल्याणकर था। उस पगदंडी के सहारे खड्ड के एक किनारे पर सुशील खड़ा था, किन्तु वह सुदृढ़ आधार पर था। वह रम्भा को उस खतरनाक पगदंडी पर आगे बढ़ता हुआ देखता था और यह भी समझता था कि अगर यह कुछ और आगे बढ़ेगी तो अवश्य इसकी हड्डियां चूर-चूर हो जाएंगी और हाड़ और मांस का एक मृत लोथड़ा भर रह जाएगी। किन्तु उसको यह विश्वास था कि रम्भा होश में थी और जो कुछ कर रही थी वह खेल में कर रही थी, गम्भीरता-पूर्वक नहीं। जब वह उस स्थान पर पहुंचेगी जहां से अगाध खड्ड में उसका पतन सम्भव था तो तो वह वहां अवश्य रुक जाएगी और पीछे को लौट पड़ेगी, क्योंकि कोई भी समझदार व्यक्ति इस प्रकार का पागलपन नहीं कर सकता।

किन्तु उसने एक दिन बड़े आश्चर्य और दुख के साथ देखा कि रम्भा उसको कह रही थी, "सुशील, तुम मुझको मौसी न कहो। मुझे मेरा नाम लेकर पुकारो। मेरी और तुम्हारी उम्र में कोई बड़ा अन्तर नहीं, इसलिए

मेरा नाम लेने में कोई हर्ज नहीं।"

सुशील ने चौंककर कहा, "भला, मां का भी कोई नाम लेता है? आप तो पागल हो गई हैं। मुझसे यह नहीं होगा। भला मां या पिता जी या अन्य कोई भी मुझको आपका नाम लेते हुए सुनेंगे तो क्या कहेंगे? मैं तो भाभी जी का भी नाम नहीं लेता। मुझे तो उनका नाम लेने में भी संकोच मालूम होता है।"

रम्भा ने कहा, "नहीं, सबके सामने नहीं। मेरे सामने तो ले सकते हो।"

सुशील ने कहा, "इससे लाभ?"

रम्भा ने कहा, "यह मुझे अच्छा लगता है।"

सुशील चुप हो गया, मानो उसे सांप सूंघ गया हो।

रम्भा को बड़ी आशंका हुई। उसने सोचा कि कहीं सुशील का मन उलट तो नहीं रहा। तब उसने कहा, "इस पर ज़्यादा मत सोचो। मैंने तो ऐसे ही कह दिया था।"

सुशील पढ़ाकर उस दिन कुछ उदास सा गया। उसने मार्ग में सोचा कि मौसी जी को क्या हो गया है। उसकी समझ में कुछ न आया। फिर उसको याद आया कि उन्होंने यह शायद ऐसे ही कह दिया था। उन्होंने पीछे से तो यह बात प्रकट की थी। सम्भवतः ऐसी ही बात होगी।"

रम्भा को उस रात नींद नहीं आई। वह देर तक यह कल्पना ही करती रही कि उसने आज जो कुछ कहा था उसका सुशील पर क्या प्रभाव पड़ा होगा। उसने अपने मन में कहा, 'पति पत्नी का नाम सबके सम्मुख लेने में सकुचता है, विशेषतः नवयुवक पति। किन्तु जब एकान्त में पति और पत्नी केवल दो ही प्राणी सुनते होते हैं तब वह अपनी पत्नी का नाम निस्संकोच लेता है और वह उसके हृदय के पूरे प्रेम का द्योतक होता है। मैं सुशील से यही तो चाहती थी, किन्तु वह बेचारा यह नहीं कर सका। कितना सीधा सादा है सुशील।'

उसने फिर कहा, 'किन्तु रम्भा, तू बड़ी कलुषित हृदय है। तूने एक निर्मल हृदय युवक को वासना के पंक में खींचने का प्रयत्न किया

और वह युवक भी कौन है—तेरी सौत का लड़का।'

किन्तु थोड़ी ही देर में उसका यह विचार न जाने कहां चला गया। उसकी आंखों के सम्मुख सुशील का मधुर और मोहक रूप सजीव और साकार होकर आगया था। उसकी आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं। उसके लाल ओठ हंसी से और लाल हो गए। उसने मुँह खोल हलका सा शब्द निकालते हुए कहा, 'किन्तु रम्भा इन बातों की परवाह नहीं करती।'

उसके पिता ने उसके साथ बहुत बुरा किया था। वह उसका विवाह किसी अच्छे युवक से कर सकता था। वह इस वृद्ध को अपने पूरे हृदय से प्यार नहीं कर सकती। वह तो प्रेम की प्यासी थी और अब अधिक प्यासी नहीं मर सकती। उसका इस परिवार से ऐसा क्या सम्बन्ध होगया था? सुशील बेटा है, यह उसके हृदय ने कभी स्वीकार नहीं किया। वह उसको प्रेम करती थी और प्रेम ऐसा नहीं करती जैसा प्रेम मां बेटे पर करती है। उसने उसको सदैव एक ही दृष्टि से देखा था। वह दृष्टि वही है जो एक युवती स्त्री की अपने प्यारे पति की तरफ़ होती है। सुशील उसका पति होने के योग्य था। वह उसको अपने पूरे हृदय से प्रेम कर सकती थी और अपना जीवन सुखी बना सकती थी। अब भी वह उसको पूरे हृदय से प्रेम करती थी। उसके हृदय में उसके लिए जितना प्रेम था उससे अधिक प्रेम अन्य किसी के लिए नहीं था। वह जानती थी कि सुशील से अधिक प्रेम वह अन्य किसी को कभी कर भी न सकेगी। उसके हृदय में प्रेम का कोई भाग अब बचा नहीं रह गया था। उसके हृदय में सुशील के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए स्थान ही नहीं था। वह सुशील को नहीं छोड़ सकती थी। वह चाहे लोक-निन्दा की शिकार हो जाती और चाहे उसको दुनिया बुरी कहती, किन्तु वह अनुभव करती थी कि वह सुशील के बिना नहीं रह सकेगी।

किन्तु उसको यह भान हो रहा था कि सुशील अभी तक वैसा ही सुशील था जैसा उसके घर में पहिली बार आते वक़्त था। उसने पहिली दृष्टि में ही रम्भा को पूज्य दृष्टि से देखा था और उसकी वह पूज्य दृष्टि

उसकी ओर अभी तक पूर्ववत ही बनी हुई थी। रम्भा यह सोचने में असमर्थ थी कि उसका हृदय वह किस प्रकार परिवर्तित करेगी। वह यह नहीं समझ पाती थी कि आख़िर सुशील को वह किस प्रकार अपने हृदय को खोलकर दिखाएगी। उसको प्रेम ने विवश कर दिया था। पहाड़ी के शिखर पर खड़े होकर उसने देखा था कि सुशील गहरे खड्ड में खड़ा है, किन्तु यह तो उसकी आंखें धोखा खा रहीं थीं। सुशील तो खड्ड के ऊपर एक ओर सुदृढ़ चट्टान पर खड़ा था। रम्भा उसको खड्ड में समझ खड्ड की ओर भयंकर लम्बाकार पगडंडी पर होकर नीचे उतरना चाहती थी। उसने सुशील को जब यह कहा कि वह उसे रम्भा कहकर सम्बोधन किया करे तब उसने सुशील को यही कहा था कि वह उसके पास उस खड्ड में आना चाहती थी जहां वह था, किन्तु सुशील ने उसको तुरन्त कह दिया कि यह तो उसकी आंखें धोखा खा रही थीं। वह कभी खड्ड में नहीं था और न कभी खड्ड में होगा। किन्तु रम्भा अभी तक संभल नहीं पाई थी। वह उसी खड्ड की ओर जाना चाहती थी। अन्त में आज उसने निश्चय किया कि वह अवश्य उसी खड्ड में जाएगी।

(१४)

दूसरे दिन सुशील जब आया तो उसको अवधबिहारीलाल अपने कपड़े पहिने हुए और बिस्तर बांधे हुए कहीं जाने के लिए तैयार खड़े मिले। एक नौकर भी उनके साथ जा रहा था। अवधबिहारीलाल ने सुशील को देखते ही कहा, "मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। मैं काशीपुर जा रहा हूं। किसान लगान नहीं दे रहे हैं और कुछ झगड़े भी खड़े हो गए हैं। चूंकि तुम्हारी मौसी अकेली रहना नहीं चाहती और तुम्हारी मां के पास जाने की भी उसकी इच्छा नहीं, इसलिए तुम यहां रहना। अपना काम-काज भी यहां ही करना और इन दिनों में तुम्हारा खाना-पीना भी यहां ही रहेगा।"

सुशील यह सुनने के लिए तैयार न था, और इसके स्वीकार करने के लिए भी तैयार न था; लेकिन अवधबिहारीलाल ने यह सब इस ढंग से दर्वाजे की ओर पैर बढ़ाते हुए कहा कि सुशील को कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं हुई। उसको यही कहते बना, 'अच्छा।' लेकिन उसके उत्तर में बड़ी झिझक सी थी।

अवधबिहारीलाल ने कहा, "क्यों, कुछ असुविधा होगी क्या? तुम्हारी मौसी तुमको किसी बात की असुविधा न होने देगी। तुम बेफिक्र रहो। मैंने उसको अच्छी तरह से और कह दिया है। तुम्हारा स्वभाव अभी तक संकोची है। तुम उससे अब भी संकोच करते हो, यह ठीक नहीं है।"

सुशील ने कहा, "नहीं, मैं संकोच नहीं करता; किन्तु उनको ही कुछ असुविधा हो तो?"

सुशील का यह उत्तर बिल्कुल आश्चर्यजनक था। अवधबिहारीलाल जानते थे कि रम्भा की ऐसी शिकायत कभी नहीं हुई, बल्कि उसने तो सदैव सुशील के स्वभाव की सराहना की थी। उन्होंने कहा, "सुशील, तुम ऐसी बात कहते हो जिसकी मुझे तुमसे आशा नहीं थी। तुम तो कभी भी ऐसे न थे। क्या तुमको यहां रहने में कुछ आपत्ति है?"

सुशील से कोई उत्तर नहीं बन पड़ा। वह नहीं सोच सका कि उसकी ओर से उनको जो उनके प्रति अप्रेम का सन्देह सा होगया था उसको वह कैसे दूर करे। ऐसी स्थिति में उसने चुपचाप उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लेना ही ठीक समझा। उसने कहा, "पिता जी, स्वयं मुझे रत्ती भर भी आपत्ति नहीं है। मैं तो बड़ी प्रसन्नता से आधी रात किसी भी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हूँ। आप जो कह रहे हैं मैं उसको अवश्य करूंगा।"

इस उत्तर से अवधबिहारीलाल प्रसन्न होगए। उन्होंने उसको जेब में से पांच सौ रुपए के नोट दिए और कहा कि इनको वह अपने पास रखे और जिस कार्य में जितने आवश्यक समझे खर्च करे। सुशील ने नोट ले लिए और जेब में रख लिए।

अवधबिहारीलाल चले गए, और सुशील मुँह लटकाए घर में आया। वह सोच रहा था कि यह क्या हो गया। वह तो इस घर से भागने का प्रयत्न करता था, लेकिन जितना वह भागने का प्रयत्न करता था उतना ही वह वहां उलझता जाता था। उसने घर को शीला को एक पर्ची पर जो कुछ बात हुई थी वह सब लिख भेजी और उसको इत्तिला कर दी कि वह रात को नहीं, सुबह घर आयेगा।

रम्भा बड़ी प्रसन्न थी कि अवधबिहारीलाल भी गए और अब सुशील भी घर में ही रहेगा। उसके हृदय में वासना खेल रही थी। उसने सुशील को कमरे में ले जाकर कुर्सी पर बिठाया और उससे पाठ पढ़ा। उसने सारा दैनिक कार्य शान्ति के साथ किया। उसको अब कोई चिन्ता या उतावली नहीं रही थी। जिस प्रकार कोई कंगला अपनी मांग के अनुसार

धन पाकर शान्त हो जाता है उसी प्रकार रम्भा अपने हृदय का धन पाकर शान्त होगई थी। उसने पाठ समाप्त करने के बाद सायंकाल का भोजन बनाया। सुशील तब तक उदास कुर्सी पर ही बैठा रहा। रम्भा जानती थी कि उसके हृदय में क्या द्वन्द्व चल रहा था, लेकिन फिर भी वह उसको न समझने का बहाना कर रही थी। उसने सुशील को यह तक न पूछा कि वह गम्भीर क्यों है। उसने कहा, "सुशील आओ, मैं खाना बनाती हूँ। तब तक तुम कुर्सी डालकर यहां मेरे पास बैठ जाओ। मेरा मन तुम्हारे बिना नहीं लगता। तुम पास बैठ जाओगे तो हंसते-बोलते खाना अच्छा बन जाएगा।"

सुशील ने कुर्सी लाकर रसोईघर के पास आंगन में डाल ली और उस पर बैठ गया। रम्भा ने खाना बनाया। वह सुशील से बातें करती जाती थी, जिस प्रकार कोई हंसनी मृदु कंठ से बोलती है। सुशील उसको उत्तर देता जाता था, लेकिन वह अपनी ओर से उसको कुछ भी नहीं कह रहा था। अन्त में रम्भा के प्रश्न खत्म होगए। उसके सामने समस्या आगई कि अब वह क्या पूछे। उसके हृदय में जो तूफ़ान उठ रहा था उसके अनुकूल तो अभी समय ही नहीं आया था। इसलिए वह उसको तो अभी छुपाए ही रखना चाहती थी। अन्त में वह भी चुप हो गई; किन्तु वह चुप तो रह नहीं सकती थी। उसके हृदय में प्रसन्नता समाती नहीं थी। अन्त में वह उसके होटों के किनारे से मृदु संगीत बनकर सुरीले स्वर में बह निकली और उस कमरे को रस से भरने लगी। सुशील को रम्भा का गीत भला मालूम दे रहा था। उसको उसमें रस आ रहा था, क्योंकि वह उसके हृदय को छू रहा था। रम्भा गा रही थी, 'गोरा बदन, काली फरिया, हमें लग जाएगी नजरिया!'

गीत की तान बहुत मीठी थी। फिर उसके अर्थ में एक चमत्कार था। उसमें एक सौन्दर्य-शास्त्र का रहस्य था। सुशील को उसी ने आकर्षित कर लिया था। वह सोच रहा था, 'सच, गोरे शरीर पर काला वस्त्र बहुत ही खुलता है। उससे गोरे शरीर की सुन्दरता में चार चांद लग

जाते हैं।' उसने कड़ी के बाकी आधे हिस्से पर ध्यान दिया, 'हमें लग जाएगी नजरिया।' उसने देखा कि आज रम्भा स्वयं चटकीली काली साड़ी पहिने थी और उसको पहिने हुए आज वह स्वर्ग की अप्सरा जैसी सुन्दर लग रही थी। उसने काली साड़ी को इससे पहिले भी देखा होगा, किन्तु गीत को सुनकर उसकी दृष्टि में 'गोरे बदन पर काली फरिया' की अनुकूलता बिल्कुल भर गई। उसने तुरंत समझ लिया कि अवश्य ही गोरे बदन पर काली फरिया इतनी सुन्दर लगती है कि नजर लग सकती है।

रम्भा के मुंह से गाए जाने पर गीत में इतना मिठास आगया था कि चाहे रम्भा को काली साड़ी पहिन लेने पर नज़र न लगती, किन्तु उस गीत को सुनकर उसके कंठ को तो किसी की नज़र अवश्य ही लग जाती। सुशील को अब प्रसन्नता हो रही थी और वह उसकी आंखों से झलक रही थी। उसने रम्भा को कहा, "यह गीत बड़ा मीठा है। कहां से सीखा?"

सुशील का प्रश्न रम्भा को अच्छा लगा। जो सुशील बात-बात में उसको मौसी जी कहता था वह अब मौसी कहना भूल गया था। रम्भा ने सोचा, 'सुशील पर उसका प्रभाव हो रहा है।' उसने गीत बंद कर दिया और सुशील को कहा, "सुशील, जरा मेरे पास आओ। एक बात कहूंगी।"

सुशील रम्भा के पास गया। रम्भा ने अपने दोनों हाथों से उसका सिर अपने मुंह के पास लाकर धीरे से कहा, "आज मेरी एक बात मानोगे?"

सुशील ने शंकित होकर कहा, "कहिए।"

रम्भा ने कहा, "आज तुम मेरे साथ एक थाल में खाना खाओगे?"

सुशील ने कहा, "यह तो कोई बात नहीं। मैं तुम्हारे साथ ही खा लूंगा। मुझे अभी भूख भी नहीं है।"

रम्भा को अपनी विजय पर गर्व होरहा था। उसने सोचा, 'यह अब 'आप' के बजाय 'तुम' कहने लग गया। अब शायद 'रम्भा' भी

कहेगा।' उसने कहा, "सुशील, तुम जब मुझे 'तुम' कहते हो तो मुझको अच्छा लगता है। तुम मुझे 'आप' न कहा करो।"

सुशील चुप रहा। उसने अनुभव किया कि उसके मुँह से अनजान में 'तुम' निकल गया और अब उसको सावधान रहना चाहिए कि कहीं उसके मुँह से ऐसी ही कोई अन्य बात न निकल जाए।

रम्भा ने कहा, "सुशील, तुम मेरा नाम बता सकते हो?"

सुशील ने कहा, "हां, क्यों नहीं?"

रम्भा ने कहा, "अच्छा, तो बताओ।"

सुशील ने कुछ झिझककर कहा, "आपका नाम रम्भा है।"

रम्भा ने कहा, "ऐसे नहीं, खाली नाम बताओ।"

सुशील ने कहा, "रम्भा।"

रम्भा ने हंसकर कहा, "तुम तो कहते थे कि तुम मेरा नाम मेरे सामने भी न लोगे। अब क्यों लिया?"

सुशील ने अपने मन में सोचा, 'आज मुझे इनको प्रसन्न करना है। मेरा इसमें बिगड़ता ही क्या है। ये जो कहती जाएंगी, मैं वह करता जाऊंगा।" यह सोचकर उसने कहा, "आज आप हारेंगी और मैं जीतूंगा। आज आप जो कुछ कहलाएंगी मैं वह कह दूंगा।"

रम्भा ने कहा, "अच्छा देखा जाएगा। पहिले खाना खालें।"

इसके बाद सुशील और रम्भा ने एक थाल में खाना खाया। रम्भा ने सुशील को अपने हाथ से खिलाया, क्योंकि आज उसको इसमें रस आ रहा था और सुशील ने निश्चय कर लिया था कि जब तक कोई भद्दी बात सामने नहीं आती तब तक वह रम्भा की बात मान लेगा।

रम्भा ने सुशील को आज जितना वह खाता था उससे अधिक खिला दिया था। उसके बाद उसने दूध भी उसको ज्यादा ही पिला दिया। सुशील का पेट उफन रहा था। वह इतना ज़्यादा कभी नहीं खाता था। अन्त में उसको नींद आने लगी। उसने कहा, "मुझे तो नींद आती है। मेरी चारपाई कहां है?"

रम्भा ने कहा, "अभी इस पलंग पर ही सोओ। इसको अब दूसरी जगह कहां उठाया जाए।"

सुशील ने सोचा, 'कोई बात नहीं। मेरे यहां सोने में भी कोई हानि नहीं।' उसने कहा, "अच्छा, आज मैं यहां ही सो जाऊंगा।" वह सोने लगा।

रम्भा ने कहा, "अभी से सोते हो?"

सुशील ने कहा, "हां, मुझे नींद आती है।"

रम्भा ने कहा, "अच्छा सो जाओ, मैं भी सोती हूं।"

उसने बत्ती बुझा दी, क्योंकि नवोदित चन्द्रमा का स्निग्ध प्रकाश कमरे की विशाल खिड़कियों में होकर उसमें प्रवेश कर रहा था और पलंगों पर अपनी चादर फैला रहा था।

रम्भा अपने पलंग पर जा लेटी, किन्तु उसके मन में जो वासना खेलती थी वह रम्भा को काट खाने की ताक में थी। वह उसे सोने नहीं देती थी। वह कई बार उठी और साहस की कमी के कारण फिर लेट गई। अन्त में वह साहस करके कुछ सोचकर एक बार फिर उठी। इस बार वह वापिस अपने पलंग पर नहीं गई। उसने सुशील के सिर के पास खड़े होकर उसको धीरे से छुआ।

सुशील जग गया, किन्तु बोला नहीं। वह संदेह और संकोच में डूबा हुआ पड़ा था। वह अपनी सांस रोककर प्रतीक्षा करने लगा कि अब क्या होता है। रम्भा उसके सिर के समीप बैठ गई और उसका सिर दबाने लगी।

सुशील ने कहा, "क्यों, क्या आप सोई नहीं?"

रम्भा ने कहा, "आपने कहा था न कि आज जो कुछ मैं कहूँगी आप वही करेंगे। मैं आपका सिर दबाना चाहती थी, आपको इसमें ऐतराज़ नहीं होना चाहिए।"

सुशील ने कहा, "अच्छा आप सिर दबा लीजिए।"

रम्भा ने कहा, "अब मैं आपको 'आप' कहूंगी और आप मुझे

'तुम' कहिए।"

सुशील चुप रहा।

रम्भा ने कहा,"आपको मेरा हाथ गर्म तो नहीं मालूम देता?"

सुशील ने कहा, "नहीं।"

सुशील ने अनुभव किया कि रम्भा का अंचल उसके सीने पर आ पड़ा है। उसको बड़ा अजीब सा मालूम पड़ा यह। रम्भा का हाथ उसके शरीर को भला मालूम दे रहा था। उसका अंचल भी उसको अच्छा मालूम दिया। अन्त में रम्भा ने उसके हाथ-पैर दबाने शुरू कर दिए। सुशील चुप पड़ा था, मानो वह किसी नशे में हो। अन्त में रम्भा उसके ऊपर झुकने लगी। उसने सुशील के हाथ उठाकर अपने सीने पर रख लिए और धीरे से कहा, "आप मुझे अपना प्यार दे सकते हैं?"

सुशील चौकन्ना हुआ। उसने कहा, "मैं आपको कब प्यार नहीं करता था?"

रम्भा ने कहा, "वैसा प्यार नहीं। मैं जैसा प्यार चाहती हूँ ऐसा प्यार।"

सुशील ने अब उसको मौसी कहना उचित न समझा, इसलिए उसने कहा, "रम्भा, तुम बदनामी से नहीं डरती?"

रम्भा ने कहा, "नहीं।"

सुशील ने कहा, "लोगों को पता चले तो वे क्या कहेंगे?"

रम्भा ने कहा,"किसी को पता न चलेगा। यहां मैं हूँ और आप हैं। अब मैं आप के बिना नहीं रह सकती।"

सुशील ने कहा, "किन्तु रम्भा, यह अनुचित है।"

रम्भा ने कहा, "अनुचित रहा करे।"

सुशील ने कहा, "यह पाप-व्यवसाय है।"

रम्भा बोली, "रहने दीजिए।"

सुशील ने कहा, "तुम जानती हो कि मैं तुम्हारा क्या लगता हूं?"

रम्भा ने कहा, "वह भूल जाइए। मैं मानती हूं कि मैं आपके योग्य

थी। यदि पहिले भूल होगई तो क्या उसे सुधारना न चाहिए ?"

सुशील ने कहा, "लेकिन, रम्भा, वैवाहिक भूल का ऐसा सुधार त्याज्य होता है। कम से कम दुनिया तो उसको पाप ही कहती है।"

रम्भा ने कहा, "पाप को मैं नहीं समझती और न समझना चाहती हूं। मैं तो दुनिया में एक पाप-पुण्य के ज्ञान से शून्य प्राणी की तरह रहना चाहती हूं। क्या इसमें कुछ बुराई है ?"

सुशील ने कहा, "लेकिन, रम्भा, तुम इस समय मदान्ध हो रही हो। जब तुम्हारा काम-मद उतर जाएगा तब तुम अवश्य रोओगी।"

रम्भा ने कहा, "मुझको उस रोने में भी सुख मालूम देगा।"

सुशील ने कहा, "रम्भा, तुमको भले और बुरे का कोई ज्ञान नहीं है ?"

रम्भा बोली, "आप मुझे नीतिशास्त्र न पढ़ाइए। मैं इस भले और बुरे के तत्व-ज्ञान में कोई अभिरुचि नहीं रखती। मैं तो समझती हूँ कि दुनिया में न कुछ भला होता है और न कुछ बुरा। लोगों ने एक मन-मानी कसौटी बना ली है जिस पर प्रत्येक मनुष्य वस्तुओं की बुराई या भलाई कसना चाहता है। मैं अपनी कसौटी फेंक चुकी हूं, इसलिए मैं अब बुराई और भलाई दोनों से ऊंची उठ गई हूं।"

सुशील ने कहा, "लेकिन, रम्भा, यह तुम्हारा भ्रम है। जब तक कोई मनुष्य बिल्कुल पागल न हो जाए या किसी कारण अपना विवेक न खो बैठे तब तक वह अपनी कसौटी को कदापि नहीं फेंक सकता। दुनिया में कोई भी मनुष्य बिना कसौटी लगाये नहीं रहता। कहने का तात्पर्य यह है कि कसना मनुष्य का धर्म होगया है। यदि उसका यह धर्म नष्ट हो जाएगा तो मनुष्य भी नष्ट हो जाएगा। जिस प्रकार अग्नि का धर्म ऊष्णता है उसी प्रकार मनुष्य का धर्म कसना है। अग्नि यदि ऊष्ण रहना छोड़ देती है तो वह मृत समझी जाती है। इसी प्रकार मनुष्य यदि कसना छोड़ देता है तो वह भी मृत समझा जाता है। पाप और पुण्य क्या हैं यह अभी तुम्हारी समझ में न आएगा, क्योंकि तुम अपना विवेक

कहीं भूल आई हो। ऐसी स्थिति में, रम्भा, अभी तुम ठहरो। मैं यहां ही हूं। मैंने तुमको वादा किया था कि तुम जो कहोगी वह मैं करूंगा। मैं अपने वादे पर पक्का हूं लेकिन किसी काम को करने से पहिले तुम उस पर भली भांति सोच लो।"

रम्भा ने कहा, "कदाचित आप यह नहीं जानते कि सोचना ही तो मनुष्य की कमज़ोरी है। जो सोचता है वही भला और बुरा करता है। जब मैं सोचना ही बन्द कर चुकी हूं तो मैं न भलाई करती हूं और न बुराई। मैं तो आपसे भी कहूँगी कि आप भी सोचना बन्द कर दें। आप दुनिया में सुखी रहें और मुझे भी सुखी रखें। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है? लोग शराब क्यों पीते हैं? क्योंकि वे उसको पीकर सोच नहीं सकते। इससे यह बात मालूम होती है कि मनुष्य दुखी ही इस कारण है, क्योंकि वह सोचता है। इसके विपरीत यदि मनुष्य प्रत्येक बात को शराबी की भांति भूल जाना सीख जाए तो वह फिर दुखी न होगा। भूल जाना ही सुखी होना है। छोटा बालक क्यों सुखी होता है, इसलिए कि वह सारी बातें भूला हुआ होता है। कितने ही पागल क्यों बहुत ज़्यादा हंसते हैं, केवल इसलिए कि वे पागल होकर अपने दुखों को भूल जाते हैं। आप क्या समझते हैं कि हम अपने दुखों को नहीं भूल सकते?"

सुशील ने कहा, "रम्भा, मैं देखता हूँ कि आज तुम्हारा विवेक ठिकाने नहीं है। जो लोग दुखी होते हैं यदि वे अपने दुखों का कारण न खोजकर उनको भूल जाने की कोशिश करते हैं तो वे कभी सुखी नहीं होते, क्योंकि दुख का कारण दूर किए बिना दुख कदापि दूर नहीं हो सकते। जो लोग अपने दुखों को भूल जाने के लिऐ मद्यपान करते हैं वे भी दुखों का मूल दूर नहीं कर सकते, इसलिए वे भी दुखों को दूर नहीं कर सकते। दुखों को दूर करने के लिए उनके कारण खोजने की आवश्यकता होती है जो विवेक के प्रकाश में ही खोजे जा सकते हैं। शराबी और पागल जो अपना विवेक खोकर अपने आपको सुखी समझ लेने की भूल करते हैं, अज्ञानी होते हैं; किन्तु रम्भा तुम तो उनकी श्रेणी में नहीं हो। फिर तुम अपने

आपको बलात् क्यों अज्ञानी बनाती हो ? तुम अपना विवेक क्यों नहीं जागृत करतीं ?"

रम्भा ने कहा, "तो आपके ख़याल से मैं भूल कर रही हूं ?"

सुशील ने कहा, "निस्सन्देह ! तुमको यह तक ज्ञान नहीं रहा है कि मैं तुम्हारा क्या लगता हूँ ?"

रम्भा कुछ लज्जित होगई; किन्तु वह अभी पराजित नहीं हुई थी। उसने कहा, "मैंने कह तो दिया कि आपको मैं प्रेम करती हूँ; आप चाहे मेरे कुछ भी लगते हों।"

सुशील ने उत्तर दिया, "लेकिन तुम क्या यह अनुभव नहीं करतीं कि अमर्यादित प्रेम सच्चा प्रेम नहीं और इसलिए वह श्रेयस्कर भी नहीं ?"

'अमर्यादित प्रेम ?' रम्भा को ये शब्द अखरे। क्या वह सुशील को सच्चे हृदय से प्रेम नहीं करती ? अवधबिहारीलाल के साथ उसका विवाह क्या सच्चे प्रेम का द्योतक है जो उसकी प्रेम-भावना पर ही कुठाराघात करता है ? विषय-भूख युवावस्था में किसे नहीं सताती। वह भी शरीर का धर्म है। सहज प्रकृत-प्रेरणा है। जिस प्रकार भूखा प्राणी भरपेट और तृप्तिकर भोजन की आकांक्षा करता है उसी प्रकार प्रत्येक स्वस्थ युवक या युवती अपनी इस स्वाभाविक भूख की भी मनोनुकूल तृप्ति चाहता है। यदि वह उसे प्राप्त नहीं होता तो फिर उसका भटकना स्वाभाविक है। समाज इसी को तो अमर्यादा कहता है।

रम्भा को यह भूख लगी थी और वह अत्यन्त तीव्र थी, किन्तु उसकी मनोनुकूल तृप्ति नहीं हो सकी। वह इस स्थिति में अपने साथ किये गये अन्याय को तीव्रता के साथ अनुभव कर रही थी।

इतना ही नहीं इस अन्याय के प्रति उसका रोष सुशील को अपने सामने पाकर और भी तीव्र हो गया था। उसकी अवस्था वैसी ही थी जैसी किसी कई दिन के भूखे भिखारी की तश्तरियों में सजे हुए किसी अमीर की दावत के सामान को देखकर होती है। जिस प्रकार भिखारी यह अनुभव करता है कि उसे इस भोजन से वंचित करके उसके साथ महान अन्याय किया जा रहा है, उसी प्रकार की एक तीव्र भावना रम्भा अपने भीतर

अनुभव कर रही थी। उसके सामने उसकी विषय-भूख को तृप्त करने वाला स्वादु भोजन सजा हुआ रखा था, जिसकी सुगंध और महक ने उसकी भूख को दुर्दमनीय कर दिया था। उसके भोग के मार्ग में सुशील का समाज-भय बाधक था। दूसरे शब्दों में समाज उसके मार्ग का रोड़ा था। इसलिए वह समाज के प्रति रोष की भावना से अतिभूत हो रही थी। वह रोष के वेग से कांपने लगी, और कुछ कहने के लिए तैयार ही हुई थी कि सुशील ने उसकी ओर देखकर कहा, "रम्भा, उठकर तनिक बल्ब तो जलाओ।"

रम्भा ने तुरंत आज्ञा-पालन किया।

सुशील ने कहा, "अच्छा, अब अपनी आकृति तनिक कांच में देखो।"

रम्भा ने इस आज्ञा का भी पालन किया।

सुशील ने कहा, "अच्छा देख चुकीं तो अब तनिक बताओ कि क्या तुम वही रम्भा हो जो कल सायं थी।"

रम्भा ने देखा कि उसकी मुखाकृति पर अब संकोच और चिन्ता-जनक पीलापन आगया था। अब वह अपनी लज्जा खो चुकी थी। उसने अपना मुँह अपने हाथों से छुपा लिया और कहा, "सुशील, तुम अब मुझे कुछ न कहो। मुझे सोचने दो कि मैंने यह क्या किया है?"

सुशील ने कहा, "अवश्य। यही तो मैं भी कहता था।"

रम्भा कुर्सी पर बैठ गई और सोचने लगी। सुशील सो गया था, क्योंकि वह अधिक जग नहीं सकता था। कमरे से अब चन्द्रमा का प्रकाश हट गया था। रम्भा कुर्सी पर से उठी। उसने खिड़की से बाहर झांका। उसने देखा कि बाहर चन्द्रमा का स्निग्ध प्रकाश अब भी वैसा ही खिल रहा था। वह अधिक देर खिड़की के पास भी न खड़ी हो सकी और आकर पलंग पर लेट गई। परन्तु उसकी आंखों में नींद कहां थी? उसका मन उद्विग्न था। वह किसी निश्चय पर पहुँच ही नहीं पाती थी। यहां तक कि इसी अवस्था में उसको लगभग प्रातःकाल होने को आया। तब

वह अचेतन हो गई। वह कब सोई उसे उसका कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। उसको यह ज्ञान भी न रहा कि सुशील कब उठ गया था। अन्त में रम्भा को सोते सोते नौ बजने को आए। नौकर ने उसको बाहर से आवाज दी, "बहू जी, आज क्या शाक लाना है?"

रम्भा ने कहा, "अभी आती हूँ। बाहर ही बताऊंगी।" उसको बड़ी लज्जा अनुभव हो रही थी। यह नौकर अपने मन में क्या कहेगा। आज वह नौ बजे तक सोती रही। वह इसका कारण क्या समझेगा, किन्तु अब उसका पछताना व्यर्थ था।

(१५)

शारदा को बहुत दिन से रमाशंकर का कोई पत्र नहीं मिला था। उस दिन जब उसकी हालत बहुत ख़राब थी तब उसने दुख में भरकर रमाशंकर को पत्र लिखा था और उसे डाक में डालकर उसको यह पश्चात्ताप हुआ था कि उसने वह पत्र क्यों लिखा। उसकी जगह दूसरा पत्र लिखने के लिए उसके पास पैसे न थे। जब इस बात को कई दिन व्यतीत होगए तब शारदा यह प्रतीक्षा करने लगी कि रमाशंकर का पत्र आता ही होगा। किन्तु जब रमाशंकर का पत्र एक मास बीत जाने पर भी न आया तब उसने दूसरा पत्र लिख दिया और उसमें लिखा, "अब आर्थिक दशा अच्छी है। परमात्मा को धन्यवाद। घर बैठे कांग्रेस के कताई-केन्द्र से कताई का काम आजाता है। चार-पांच आने रोज का कत जाता है। इतना हमारे खर्च के लिए बहुत है। फिर अब तो किसान लगान भी दे गए हैं। उन्होंने एक पाई भी नहीं रखी, बिना मांगे सब दे दिया है। अब हमको कातने की भी ज़रूरत नहीं है, किन्तु जिस चीज़ ने हमारी विपत्ति में हमको आशा का सन्देश दिया उसको हम न छोड़ेंगी। मां जी का भी समय चर्खे से अच्छा कट जाता है और मेरा भी, लेकिन आपका पत्र न आने से बड़ी बेचैनी है। आशा है आप सकुशल होंगे। स्वामी, यदि आप यहां हों तो मैं इस घर के सामने स्वर्ग को भी तुच्छ समझूं, लेकिन आपके बिना मुझे इसमें सब अंधेरा लगता है। अपने बूढ़े श्वसुर और सास की मैं सेवा कर पाती हूँ इससे मुझे अपने जीवन से कुछ सन्तोष होता है। यदि ये न होते तो मेरा जीवन मुझको ही भार हो गया

होता। दोनों स्वस्थ हैं और प्रसन्न हैं। आप भी जेल में प्रसन्न रहिए और धैर्य रखिए। परमात्मा चाहेगा तो वह आपको एक दिन हमारे पास अवश्य लाएगा।"

शारदा का यह पत्र मद्रास गया। वहां से वह लौटाकर बिहार सरकार के पास भेज दिया गया, और बिहार सरकार ने कैदी रमाशंकर के सम्बन्ध में जेल-विभाग से तहक़ीक़ात कर के उसको भेजने वाले को वापिस कर दिया और उसके साथ एक पत्र भेज दिया जिसमें लिखा था, "रमाशंकर को पटना के जेल-अस्पताल से एक सप्ताह पूर्व बरी कर दिया गया।"

शारदा ने पत्र को पढ़ा तो उसकी चिन्ता बढ़ गई। आज रमाशंकर को बरी हुए कई दिन होगए और वे घर तक नहीं आ पहुंचे। उसने पहिले तो ख़याल किया कि पटना से उनके मित्रों ने उनको नहीं आने दिया होगा, किन्तु फिर उसको ख़याल आया कि रमाशंकर पहिले सीधे घर आते। वे मार्ग में इतने दिन कहीं भी नहीं रुक सकते थे। फिर यदि वे रुकते तो घर को तो पत्र लिख ही देते। उसको जहां रमाशंकर के जेल से रिहा होने की प्रसन्नता थी वहां इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि वे कहां रह गए और घर क्यों नहीं आए। यही चिन्ता रमाशंकर के पिता और मा को थी।

शारदा ने पटना के कांग्रेस-दफ्तर को चिट्ठी लिखी और उसके सम्बन्ध में जानकारी चाही। चौथे ही दिन उनका उत्तर आया, जिसमें लिखा था कि जेल पर पूछताछ करने से पता लगा है कि उनको अब से दो सप्ताह पहिले रिहा किया गया था और काशीपुर का टिकट देकर गाड़ी में बिठा दिया गया था। यह भी मालूम हुआ कि मद्रास में उनका मस्तिष्क कुछ खराब सा हो गया था, इसलिए सरकार ने उनको रिहा कर दिया। लेकिन जेल के अफ़सर कहते हैं कि रिहाई के वक़्त उनकी हालत ऐसी थी कि वे घर तक का सफर भली प्रकार कर सकते थे।

शारदा इस पत्र को पाकर घबरा गई, लेकिन इसके दूसरे ही दिन भोजपुर से पत्र मिला। उस पर पता लिखा था, 'श्रीयुत रमाशंकर जी,

काशीपुर पो० श्रौ० रानीखेड़ा।' शारदा ने पत्र खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था— मेरे मित्र ! आपका मस्तिष्क उस समय कदाचित ठीक काम नहीं कर रहा था। रात में ही उठकर चल दिए। यह अच्छा हुआ कि पर्चे पर अपने सीधे घर जाने की बात लिख गए। हमने सायंकाल को ही आपके घर को शारदा बहिन के नाम तार भेजा था। वह शायद उन्हें मिला नहीं, अन्यथा वे तुरंत आतीं। खैर यह सब तो जो कुछ हुआ सो हुआ ही, आपने वादा किया था कि आप घर पहुंचते ही पत्र देंगे। क्या आप घर जाकर हमको इतने भूल गए? हम जानते हैं कि आपके लिए, जो सालों बाद जेल से छूटे हैं, यह बात स्वाभाविक है, किन्तु हम भी तो आपके लिए चिन्तित हैं। दो शब्द हमें भी लिख भेजिए, केवल अपनी और अपने परिवार की कुशल। आपके मित्र—"

शारदा को मालूम हो गया कि भोजपुर तक रमाशंकर के पहुँचने का पता लगता है। वहां से वे रात में कहीं चले गए। कहां चले गए, वे कहां जा सकते हैं, क्या वह स्थान ससुराल हो सकता है? उसने अपने पिता के पास चिट्ठी देकर तुरंत आदमी भेजा। किन्तु तीसरे दिन आदमी ने लौटकर बताया कि रमाशंकर वहां नहीं गए। वह स्वयं भोजपुर को गई, किन्तु वहां उसको उससे अधिक कोई बात न मालूम हो सकी जितनी चिट्ठी में लिखी थी। केवल उनकी अवस्था का कुछ ज्ञान हो गया। रमाशंकर के जिस मित्र ने उसको अपने घर रखा था उन्होंने बताया कि जब उनसे 'शारदा कैसी है' यह प्रश्न पूछा गया तो वे रोने लगे थे।

शारदा समझ गई कि क्या बात हुई है। उसने जान लिया कि उसकी उस चिट्ठी का रमाशंकर के मस्तिष्क पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने शायद यह समझ लिया कि शारदा ग़रीबी से तंग आकर मर चुकी होगी, इससे वे पागल हो गए होंगे। किन्तु जो कुछ हो गया था उसके लिए पछताने से अब क्या हो सकता था। अब तो रमाशंकर का पता लगाने की आवश्यकता थी। रमाशंकर के मित्रों ने शारदा को कहा, "बहिन आप तो घर चलें, क्योंकि आपके बिना पिता जी और मां को कष्ट होता

होगा और उनको आपसे धीरज भी बंधा रहता होगा। हम आपसे वादा करते हैं कि हम रमाशंकर जी का पता लगाने में कोई कोर-कसर न रखेंगे। निश्चय ही वे कहीं आसपास होंगे और उनका पता भोजपुर के समीप के गांवों से ही लगेगा। हम उनको तलाश किए बिना चैन से न बैठेंगे।"

शारदा को उनकी इस बात से बड़ा आश्वासन मिला। वह रानीखेड़ा होकर काशीपुर लौट आई और अपने श्वसुर और सास को सब बात बता कर समझा दिया कि वे अब शायद जल्दी ही मिल जाएंगे।

(१६)

अवधबिहारीलाल जब काशीपुर में पहुंचे तो वहां बड़ा बावेला मचा था। किसान अपनी बैलगाड़ियों में अपना सामान लाद रहे थे और कहीं दूसरी जगह चले जाने की तैयारी में लगे थे। इसका कारण यह था कि खेतों में कुछ भी उत्पन्न न हुआ था। पिछली फसल में खेती उनकी गांठ का बीज भी ले गई थी। भला बालू में क्या उग सकता था? सरकार ने जिन खेतों के लगान में पिछले साल छूट दे दी थी, उनका लगान तो इसी वर्ष का देना था; जिनका लगान पिछले साल मुल्तवी होगया था उनका तो दोनों वर्ष का लगान वाजिब था। ज़मींदार के कारिन्दों ने वसूली के लिए सख्ती की तो वे गांव छोड़कर ही भागने लगे। भूचाल को आए यह तीसरा साल था और उसकी मार से उनमें अभी तक होश नहीं आया था। जो कुछ पास था वह सब खा गए। इसके अतिरिक्त महाजनों और साहूकारों का बहुत सा रुपया अपने ऊपर कर्ज़ कर लिया, लेकिन फिर भी उनका पूरा न पड़ा। ऐसी स्थिति में गांव छोड़कर भाग जाने के अतिरिक्त उनके पास चारा ही क्या था? ऐसी ही हालत भूचाल के क्षेत्र में कितने ही गांवों की थी।

अवधबिहारीलाल ने यह हाल देखा तो उनको बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने सोचा कि यदि ये लोग चले जाएंगे तो इन बालू भरे खेतों में नये किसान कभी काम न करेंगे। इसलिए जैसे हो वैसे इनको रोकना चाहिए। उन्होंने खुद जाकर गाड़ियों को रुकवाया और कहा, "भाई आप लोग जहां चाहें वहां जा सकते हैं; लेकिन ऐसे न जाएं। पहिले एक बात

हमारी सुन लें और एक अपनी कह दें। हमसे आपकी हालत कोई छुपी नहीं है। जब आप जा ही रहे हैं तो हमसे दो-दो मन अनाज और लेते जाएं, क्योंकि नई जगह में जाते ही आपके लिए कुछ खाने को तो चाहिए। कुछ खाकर ही तो कमाया जा सकता है। नई जगह में जाते ही अनाज कोई बरस तो पड़ेगा नहीं।"

किसानों ने अवधबिहारीलाल की बात सुनकर गाड़ियां रोक लीं। दोनों तरफ़ से बातें हुईं। किस के साथ क्या सख्ती हुई और कारिन्दों ने क्या बेजा कार्रवाई की, ये सभी बातें हुईं। जब किसान अपनी दुख भरी दास्तान कह चुके तो अवधबिहारीलाल ने कहा, "अब हमारी बात मानोगे?"

किसानों ने कहा, "मानेंगे क्यों नहीं, बाबू जी? अब तक आपकी बात तो मानते ही आए हैं।"

अवधबिहारीलाल ने अपने मुख्य कारिन्दा को कहा, "मोहन, हर एक किसान को फ़ी हल पांच-पांच मन धान दे दो और बीस-बीस रुपए लागत के लिए दे दो। इस फसल को ये सब लोग अच्छी तरह कमाएंगे तो परमात्मा इनको सब कुछ देगा। हम समझते हैं कि इतनी मदद से ये लोग अपने दिन काट ले जाएंगे। सरकारी लगान सब चुका दिया गया है। हम अपना अब तक का बक़ाया सब माफ़ किए देते हैं। सब को उसकी रसीदें काट दो। यह काम मेरे सामने ही कर दो।"

इसके बाद उन्होंने किसानों की तरफ मुड़कर कहा, "अब आप और क्या चाहते हैं? आप लोग अपने खेतों में से अभी और बालू उठाइए। यदि हल चलाने से पहिले पूरी बालू उठा ली गई होती तो तुम्हारी फ़सल न मारी गई होती। रमाशंकर के किसानों को देखो। वे भूचाल के बाद से ही उन्हीं खेतों से फ़सल ले रहे हैं।"

किसानों ने कहा, "लेकिन बाबू जी, उन्होंने दो साल के लगान में एक पाई भी अपने ज़मींदार को नहीं दी, इसलिए उन्होंने बालू उठाने में जो रुपया लगाया वह उनको अखरा नहीं। हमारे पास क्या रखा था जो हम इन खेतों में लगा देते। अब आपकी कृपा हुई है तो सब बालू

भी उठ जाएगी और नया खाद भी खेतों तक पहुँच जाएगा। अच्छी तरह जोतेंगे और बोएंगे तो आपका यह क़र्ज भी सिर पर से उतार देंगे। हम समझते हैं कि अब सब लोग गांव में रहेंगे। बाबू जी, यह तो ज़मींदार के हाथ बात है कि चाहे वह किसानों को गांव में रखे और चाहे गांव से निकाल दे। गरीब किसान की क्या बिसात है जो वह ज़मींदार के कोप को सह सके।

अवधबिहारीलाल ने जब देखा कि यह मामला तो ठीक हो गया वे एक हफ्ते गांव में रहकर चले आए और मुख्य कारिन्दा को कह आए कि अगर किसानों को और ज़्यादा जरूरत पड़े और वे अनाज या कुछ रुपया मांगें तो वह उनको बिना पूछे दे दे। जैसी हालत है उसमें इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखता था।

किसानों ने अपनी ज़मीनों को साफ़ करना आरम्भ किया। काम यद्यपि कठिन था, किन्तु मिहनत के सामने कठिनाइयां नहीं टिकतीं। उन्होंने खेतों में से धीरे धीरे सब बालू उठा ली, उनको चौरस किया और उनमें खाद डालकर उनको जोता। सिंचाई का इन्तज़ाम कुंओं से किया। पानी पहिले ही ऊंचा था। अब वह भूचाल के बाद और भी ऊंचा आगया था। उन्होंने कड़ी मिहनत के बाद जमीन तैयार करके उसको बो दिया। फसल अच्छी उगी। वह धीरे धीरे बढ़ने लगी और अन्त में पककर तैयार हो गई। फसल में खूब अनाज हुआ। चारे की भी कमी नहीं रही। किसानों ने ज़मींदार का वाजिब रुपया दे दिया और उनके पास अगली फसल तक के लिए खाने, पहिनने और बीज डालने के लायक बच भी गया।

तमाम बिहार प्रान्त में जहां भूचाल आया था ज़मीन बहुत कुछ पहिली ज़मीन की तरह ही उपजाऊ होगई। यह ख़याल करना भी कठिन था कि यहां कभी भूचाल आया था।

गांवों में और शहरों में गिरे हुए मकान बन चुके थे और उनका सब मलवा (ईंट पत्थर और मिट्टी) ज़मीन में जहां का तहां जम गया था।

इस प्रकार प्रकृति में पूर्वावस्था बहुत कुछ आगई, किंतु मानव-समुदाय में वही अवस्था लाना कठिन था। जो लोग मर गए थे, वे अब कहां से लाए जा सकते थे और जिन के हाथ और पैर टूट गए थे और जो अन्य प्रकार से विकलांग हो गए थे उनको भी किस प्रकार पूर्वावस्था में लाया जा सकता था।

(१७)

विगतपुर महानदी गंगा के किनारे उसके मोड़ पर वहां बसा है जहां वह बंगाल में कूद पड़ने के लिए उछाल मारती है। यहां दृश्य बड़ा सुन्दर है। एक ओर विशाल हरे-भरे वन हैं और गंगा की बाढ़ का पानी वर्षा में उमड़कर झील बन गया है और दूसरी ओर पहाड़ हैं। विगतपुर प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच में मनुष्य का बनाया हुआ सौन्दर्य था। वहां मन्दिरों की कमी नहीं थी और उनमें कुछ थे अति प्राचीन जो पत्थर होने पर भी महात्मा बुद्ध के गौरव की गाथा को दर्शकों से सहस्त्र मुख बनकर कहते थे। सम्भव है यहां कभी कोई बौद्ध विहार रहा हो। बिहार प्रान्त महात्मा बुद्ध की तपोभूमि थी। गया का प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ बिहार में ही है जहां बोधिवृक्ष के नीचे गौतम ने बुद्ध रूप प्राप्त किया था। यह बोधि-वृक्ष वट जिस प्रकार अपनी पलवार फैलाता है बुद्ध का धर्म भी संसार में इसी प्रकार कभी फैला था। वह अपनी जन्मभूमि में इतना घना फैला कि उसमें विहार ही विहार बन गए और उनके कारण मगध के प्राचीन नाम का लोप होकर उसके स्थान में नये नाम विहार का आगम होगया। लेकिन समय सदैव एक समान नहीं होता। वट-वृक्ष का स्वभाव होता है कि उसकी पलवार अपनी स्वतन्त्र जड़ें भूमि में भेज देती हैं और मुख्य जड़ से अपना पोषण बन्द हो जाने पर भी जीवित रहती हैं। बौद्ध-धर्म के वट-वृक्ष की पलवार का भी यही हाल हुआ। उसकी मुख्य जड़ का, जो विहार में थी, क्षय हो गया और वहां विहार मिट गए; लेकिन लंका, ब्रह्मा, स्याम, मलाया, हिन्दचीन, महादेश चीन और

जापान में अभी उसकी पलवार अपनी स्वतन्त्र जड़ों से पोषण लेकर हरी-भरी है। बिहार में अब विहार नहीं हैं, लेकिन फिर भी वह महात्मा बुद्ध का स्मारक है। विगतपुर उस बुद्ध की तपोभूमि का कोई महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा यह अनुमान उसकी प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण स्थिति से भी होता था।

इस विगतपुर में भी भूचाल ने कुछ हानि पहुँचाई थी; लेकिन यहां वह हानि मकानों के ध्वंस तक ही सीमित थी। यहां जमीन नहीं फटी थी, केवल एक स्थान में कुछ दूरी तक बालू निकल कर फैल गई थी। लेकिन उसके नीचे चट्टान थी जिसके एक किनारे से गंगा की धारा अज्ञात काल से अपना सिर पटकते रहने पर नहीं घिस पाई थी। इस चट्टान पर ही एक युवक ने कुछ समय से आकर एक कुटिया बनाई है। कुटिया के द्वार पर लिखा है 'शारदा-कुटीर।' कुटिया किसी साधु की कुटिया नहीं है, किसी विद्रोही की कुटिया है, किन्तु फिर भी वह सरकार की दृष्टि में ख़तरनाक नहीं था, क्योंकि वह कहीं आता-जाता न था। उसके बारे में पुलिस की रिपोर्ट थी कि वह पागल है। लेकिन उसके भक्तों की कमी न थी।

इस देश में जिसको कुछ लोग पागल कहते हैं, उसको ही दूसरे बहुत से लोग पहुंचा हुआ महात्मा समझते हैं। उनकी दृष्टि में महात्मा वह व्यक्ति नहीं हो सकता जिसमें कोई असाधारणता न हो। जो व्यक्ति उनमें से ही एक हो भला वे उसको अपने से ऊंचा कैसे मान सकते हैं? किन्तु शारदा-कुटीर का युवक तपस्वी उनमें से तो एक नहीं था। वह अवश्य ही असाधारण था। वह अंग्रेजी भाषा का पंडित था। जब उसके पास अपने हृदय में उत्सुकता और जिज्ञासा छिपाए हुए अंग्रेजी की ऊंची शिक्षा पाए हुए वकील, प्रोफ़ेसर और उच्च सरकारी कर्मचारी पहुँचते और उससे बातें करने लगते तब वह उनको भी प्रभावित करता। वह धाराप्रवाह विशुद्ध अंग्रेजी बोलता और उसके विचारों में क्रान्ति की चिन-गारियां छुपी हुई होतीं जिनसे उसके श्रोताओं के हृदय जगमग-जगमग

होते चलते; किन्तु अन्त में वह पागल का पागल ही रहता। वह कहता, 'महानुभावो, मैं आप लोगों के विरुद्ध हूँ। मैं आप लोगों का नाश करना चाहता हूं। आप लोगों ने समाज का रूप विक्रान्त कर दिया है, मैं उसमें उत्क्रान्ति चाहता हूँ। मैं आपको हटाकर आपके स्थान में नया रक्त रखना चाहता हूँ। मुझे आपसे कोई आशा नहीं है। जिन लोगों के रक्त में उष्णता नहीं रही है उनमें क्रान्ति करने की कोई शक्ति नहीं है। वे तो क्रान्ति के मार्ग की अवरोधक चट्टानें हैं, जिनको हमें निर्दयतापूर्वक छेनी और हथोड़े से काटना होगा। मैं इस समाज में आग लगा देना चाहता हूँ जिसमें पुलिस, अदालतें और अन्य दूषित संस्थाएं हैं। आप क्या नहीं जानते कि पुलिस जनता का रक्त शोषण करती है। पुलिस कहने के लिए जनता की रक्षक है। जनता में सत्तानवें फी सदी निर्धन हैं; पुलिस उनकी भक्षक है। जो उसको चार पैसे चटा सकते हैं, वह उनका काम कर देती है। पुलिस के कुत्ते उनको दो टुकड़े फेंक देने वाले के पीछे-पीछे अपनी पूछें हिलाते फिरते हैं। वे ग़रीबों के फटे और मैले कपड़ों को देख कर उनके ऊपर भोंकते हैं। अमीर ग़रीबों को लूटते हैं, और विदेशी व्यापार करने वाले डाकू उनकी कमाई का एक बड़ा भाग उनसे बलात छीन ले जाते हैं; किन्तु यह पुलिस उनको नहीं रोकती, क्योंकि वह उनसे रिश्वत खाती है। क्या आप समझते हैं कि ऐसी पुलिस में सुधार करने से काम चल जाएगा? नहीं, हमको उसको नये सिरे ही संगठित करना होगा। क्या आप यह कार्य कर सकते हैं?'

लोगों की समझ में उसकी दलील आती थी यह तो ठीक था; किन्तु वे यह कैसे कह सकते थे कि जो कुछ वह कहता था वह उनके बूते का काम था। कुछ विचारशील लोग कुटीर से जाते समय कहते, 'इस महात्मा के विचार तो टाल्स्टाय की भांति क्रान्तिकारी हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि वे व्यवहार्य कहां तक हैं? उसके पास कोई कार्यक्रम ऐसा नहीं जिस पर लोग चल सकें।'

इस महात्मा को लोग क्रान्तिकारी बाबा ही कहते थे। क्रान्तिकारी

बाबा जब ग़रीबी का वर्णन करते तो सुनने वाले रो जाते थे। स्वयं उनकी आंखों से भी आंसुओं की वर्षा होने लगती। वे अपना उन्नत ललाट, यौवन के अरुण और चमकीले रक्त से भरा हुआ शरीर लिए हुए आकर्षण और प्रभाव का स्रोत बने हुए थे। उनके पास नित्य बीसियों राष्ट्रीय और अराष्ट्रीय व्यक्ति, दूकानदार और किसान और सभी श्रेणियों के लोग आते, किन्तु क्रान्तिकारी बाबा अपनी बात सब से कहते। इस प्रकार क्रान्तिकारी बाबा की ख्याति पत्रों में भी होने लगी। कितने ही लोगों ने उनके सम्बन्ध में अपने अनुभव छपवाए इससे लोगों में शारदा-कुटीर की ओर आकर्षण और भी अधिक हुआ। विशेषतः युवक-समाज और उसमें से भी राष्ट्रीय कार्यकर्ता क्रान्तिकारी महात्मा की कुटिया को देखने के लिए बहुत लालायित रहते। उनमें से कितने ही महात्मा के पास जाते तो वहां कुछ समय तक ठहरने का आग्रह करते, किन्तु वास्तव में वहां ठहरने के लिए तब तक अधिक प्रबन्ध नहीं था। अन्त में इस कमी को महात्मा जी के एक प्रिय शिष्य ने अनुभव किया और एक छोटा सा युवक-आश्रम वहां खोल भी दिया। इसमें भी जब युवकों की कई टोलियां जंगलों और देहातों में पैदल यात्राएं करतीं और नया-नया ज्ञान संचय करती हुईं क्रान्तिकारी महात्मा के दर्शन के लिए आ धमकतीं तो आश्रम के छप्परों के नीचे भी स्थान न रहता।

और आश्रम भी क्या था? गंगा के किनारे उस उच्च और समतल भूमि में जहां से गंगा की चौड़ी जलधारा पिघली हुई चांदी की रुपहली धारा के समान धूप में चमचमाती हुई दिखाई देती थी, विशाल वृक्षों के नीचे बनी हुई मिट्टी की कुछ कुटियायें और फूस और घास से बांस की टट्टियों पर छाई हुई झोंपड़ियां थीं। विगतपुर आश्रम के सामने गंगा की धारा के उस पार एक मील हट कर था। आश्रम में आने के लिए नाव का आश्रय लेना पड़ता था। कई बार अगन-बोटों से गंगा के ऊपरी भाग की ओर यात्रा करने वाले लोग शारदा-कुटीर में उतर जाते और महात्मा से बातें करके तब जाते।

आश्रम में स्त्रियां भी महात्मा के दर्शन के लिए आतीं, किन्तु क्रान्तिकारी महात्मा तो ऐसे महात्मा थे नहीं। वे कहतीं, 'ये कैसे महात्मा हैं, ये न तिलक लगाते हैं और न माला पहिनते हैं, न घंटा बजाते हैं और न पूजा करते हैं, किन्तु फिर भी उन्हें उनको देखकर शान्ति मिलती। वे ब्रह्मचारी थे और श्रमशील थे। कुटिया के आसपास उन्होंने फलों के पेड़ और पौधे लगाए थे। वे उनके लिए चट्टान के खड़े किनारे से नीचे उतर कर गंगा की धारा में से घड़े में पानी भरकर लाते और पेड़ों और पौधों को पिलाते। इसमें उनको कोई संकोच न होता। इससे उनका शरीर बलिष्ठ हो गया था। उनके श्रद्धालु भक्त भी उनके इस कार्य में सहायता करने में अपना गौरव समझते। पेड़ों और पौधों को सींचते हुए क्रान्तिकारी महात्मा कहते, 'जो हमको अपने फल खाने के लिए और अपने फूल वायु शुद्ध करने के लिए देते हैं उनकी सेवा में क्या संकोच ? हम इतने कृतघ्न क्यों बनें कि अपने उपकारी के उपकार का प्रतिफल भी देना भूल जाएं। उनको इस ग्रीष्म-काल में पानी की आवश्यकता है। वह हमें उनको अवश्य देना चाहिए।'

क्रान्तिकारी महात्मा अपनी कुटिया की सफ़ाई स्वयं करते और सारे आश्रम को प्रातःकाल ही साफ़ करवा देते। पेड़ों के नीचे गिरे हुए पत्ते सब पेड़ों की जड़ों की मिट्टी खोदकर उसमें मिला दिए जाते ताकि वे खाद बन सकें। अपने निर्वाह के लिए वे पहिले विगतपुर में जाते थे, किन्तु बाद में उनके भक्त स्वयं उनके लिए भोजन ले आते थे। आश्रम में जो लोग रहते थे वे अपना भोजन स्वयं बना लेते थे।

आश्रमवासियों का समय बिल्कुल भरा हुआ रहता। स्वयं क्रान्तिकारी महात्मा उनको कुछ न कुछ समझाते रहते। यहां एक पुस्तकालय सा खुल गया था जिसमें संसार के प्रसिद्ध विचारकों की पुस्तकें संग्रह की गई थीं। बातचीत के बाद आश्रमवासियों का जो समय बचता वह पुस्तकों के अध्ययन में जाता था। पुस्तकों के अध्ययन में उनके सम्मुख जो शंकाएं उपस्थित होतीं वे उनका समाधान क्रान्तिकारी महात्मा से

कराते। क्रान्तिकारी महात्मा उन्हीं बातों को जो पुस्तकों में थीं अपने देश की भाषा में और अपनी मौलिक शैली में उनको समझाते थे। इस प्रकार वे उनकी शंकाओं का आसानी से निवारण कर देते थे। अध्ययन और मनन का यह कार्यक्रम जब पूरा हो जाता तो आश्रम के सदस्य अपने-अपने स्थानों को वापिस चले जाते, ताकि वे वहां संचित उस ज्ञान पर अमल कर सकें। वे यद्यपि यह जानते थे कि उन सिद्धान्तों पर अमल करना कितना कठिन है, किन्तु फिर भी वे यथाशक्ति प्रयत्न करते थे।

आदर्श एक वस्तु होती है और व्यवहार दूसरी। ये दोनों बिल्कुल एक नहीं हो सकते। इन दोनों का आपस में समझौता करना पड़ता है। इसका अर्थ होता है दोनों का अपनी-अपनी जगह से हटकर एक जगह कहीं बीच में आना और फिर आपस में हाथ मिलाना। यदि आदर्श अपनी जगह पर ही खड़ा रहे, नीचे को न उतरे तो वह व्यवहार से कभी हाथ नहीं मिला सकता। इसी प्रकार यदि व्यवहार अपनी जगह से कुछ ऊंचा न चढ़े तो वह भी आदर्श से हाथ नहीं मिला सकता। आदर्श वह होता है जिसको जन-साधारण अपनी ऊंचाई से इतना ऊंचा समझते हैं कि उस तक अपनी पहुंच असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य मानते हैं। जो लोग जन-साधारण की शक्ति से कुछ अधिक शक्ति लिए हुए होते हैं वे आदर्श की ओर बढ़ने का साहस करते हैं। जन-साधारण उनके इन प्रयत्नों को आश्चर्य और आशंका की दृष्टि से देखते हैं और यह समझते हैं कि इस प्रकार से प्रयत्न करने वाले ये लोग पागल हैं।

और वास्तव में आदर्शवादी लोग पागल होते हैं। जो लोग साधारण मार्ग को छोड़कर असाधारण मार्ग पर चलते हैं और साधारण कामों को छोड़ कर असाधारण कार्य करते हैं वे जन-साधारण की दृष्टि में या तो महान पुरुष बन जाते हैं या पागल। आदर्शवादी में और पागल में कितना अन्तर होता है? बहुत थोड़ा। आदर्शवाद से एक पग आगे बढ़ाएं और आप पागल गिने जाएंगे। सीधे खड़े हुए पहाड़ की चोटी में और उसके नीचे मुँह फाड़े पड़े हुए गर्त में कितना अन्तर है उतना ही अन्तर

आदर्शवाद और पागलपन में है। अगर कोई सीधे खड़े हुए पहाड़ की चोटी से आगे पग उठाएगा तो सीधा गर्त में चला जाएगा। यही बात आदर्शवाद और पागलपन के बारे में सही है।

संयम रखो यह आदर्श है, किन्तु सब लोग सब स्थानों और सब कालों में संयम रखें यह पागलपन है। अपने श्रम की कमाई खाओ, यह आदर्श है, किन्तु सब लोग अपने हाथों से जो कुछ कमा सकें केवल वही खाकर रहें यह पागलपन है। सबको समान अधिकार दो यह आदर्श है, किन्तु उसमें स्वस्थ मस्तिष्क और पागल मस्तिष्क का भी भेद न करना पागलपन है। संसार में जो वस्तुएं हैं उनमें से सबको समान भाग दो, यह आदर्श है, किन्तु बालक और युवा, रोगी और स्वस्थ का भेद भी न करना यह पागल-पन है। निस्सन्देह आदर्शवाद और पागलपन के बीच कहीं कहीं एक क्षीण रेखा का ही अन्तर रह जाता है। इस अवस्था में यदि जन-साधारण आदर्शवादियों को पागल समझने की भूल करते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

स्वामी दयानन्द ने जब अंधविश्वासों के विरुद्ध अपनी बुद्धिवाद की मशाल लेकर प्रचार किया तो लोगों ने समझा कि अवश्य यह कोई पागल है। स्वामी रामतीर्थ जब अकिंचन होकर अपनी आत्मा का आनंद दुनिया भर में छिटकाते फिरते थे तो कितने ही लोग उनको पागल समझते थे। जो लोग अपने परिवारों, अपने ऊंचे पदों और दुनिया के सुख-सम्भोगों को छोड़ देते हैं और एकाकी पग दंडियों पर चलने लगते हैं वे जन-साधारण की आंखों में पागल ही जंचते हैं।

ईसा, बुद्ध और मुहम्मद इसी श्रेणी के लोग थे। वे आदर्शवादी थे, इसलिए पागल लगते थे। किन्तु क्रान्तिकारी महात्मा के शिष्य तो उतने बड़े पागल न थे। वे उतने बड़े पागल बन नहीं सकते थे, क्योंकि पागल बनना कोई साधारण बात नहीं है। फिर भी क्रान्तिकारी महात्मा बड़े पागल थे। उन्होंने तो अपने पागलपन के लिए अपना सब कुछ परित्याग कर दिया था, किन्तु नहीं अभी तो उनको भी जगत का माया-

जाल लगा था, अन्यथा वह शारदा-कुटीर क्यों होती ? जो साधु होने पर भी घर बांधता है वह पूरा पागल नहीं हो सकता। घर छोड़ देने पर फिर घर बांधना ही इस बात का चिह्न है कि वह पूरा पागल नहीं हुआ। तो क्रान्तिकारी महात्मा भी पूरे पागल नहीं बन पाये थे।

अन्त में क्रान्तिकारी महात्मा को यह बात सूझी कि जब वे सब कुछ छोड़ बैठे तब वे यह कुटीर भी क्यों रखें ? किन्तु नहीं, वे ऐसा नहीं कर सकते थे। वे अब दुनिया में अधिक घूमना नहीं चाहते थे। वे तो एक वर्ष पूरे पागल बनकर घूम चुके थे। पूरे एक वर्ष तक वे पागल रहे। पूरे एक वर्ष तक वे बेघर-बार के सच्चे आवारा रहे। उनको कभी घर की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, किन्तु एक वर्ष बाद जब उनका पागलपन कुछ कम हुआ तो उनको स्मरण आया कि वे तो पागल हो गये थे और उस पागलपन में वे कहीं अपना घर भूल गये थे। उन्होंने अपने घर का स्मरण किया। उनको अपने घर का द्वार याद था, अपने घर का आंगन याद था और उनको वह स्थान भी याद था जहां वह कॉलेज से आकर आंगन में अपनी मां के पास बैठा करते थे और कोई स्वर्ग की अप्सरा की भांति सुन्दर कोमलांगी नारी, नहीं, नारीत्व की ओर पग बढ़ाती हुई नारी की रेखा-प्रतिमा ओठों पर मुसकान की बिजली और आंखों की पुतलियों में हर्ष की घटा लिए उनकी ओर देखकर नूपुरों की मधुर ध्वनि करती हुई इस ओर से उस ओर को निकल जाती थी। जब उनकी खोई हुई स्मृति वापिस मिली तो वे धनुष पर से छूटे हुए तीर की भांति सीधे अपने गांव कि ओर चल दिये। उनको अपने माता-पिता का नाम याद था और अपनी प्रियतमा पत्नी का भी। भला वे शारदा को कैसे भूल जाते। वे अपने गांव में गये। किन्तु दिन में नहीं। उन्होंने किसी को कुछ नहीं पूछा। वे गांव के बराबर जाकर कुएं पर खड़े हो गए। अंधेरे में कोई कुएं पर पानी खींच रहा था। उन्होंने उसे कहा, "भैया, मुझे ज़रा पानी पिला दोगे। बहुत प्यासा हूं।"

उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और सिर के केश भी। उनका स्वर बदल

गया था और उनका रूप भी। वे न जाने कितने दिन से नहाये न थे। नहाये भी होंगे, किन्तु उनको इसका कोई ज्ञान न था। पागलपन में उन्होंने क्या किया, वे कहां-कहां गये, किसने उनको सताया, उन्होंने क्या पहिना और क्या खाया यह उनको कुछ भी ज्ञात न था; किन्तु उनको धुँधला ख़याल था कि उनको कितनी ही जगह लोगों ने मारा-पीटा। उन्होंने कभी भ्रमवश किसी स्त्री को अज्ञान में शारदा कह दिया, और उससे उसकी कुशल-क्षेम पूछी तो लोगों ने उनको डांट-फटकारा और कुछ ने मारा भी, किन्तु दुनिया में सब एक समान निर्दय नहीं होते। कुछ अपने सीनों में हृदय भी रखते हैं। कुछ ऐसे भलेमानुम भी थे जिन्होंने कहा, 'अरे, इसको मारो मत। इसको कोई ज्ञान नहीं है। यह तो पागल है।' तब बालक उनको छोड़ देते।

किन्तु उनको जब कोई पागल कहता तो वे उस पर हंसते थे। यह बात भी क्रान्तिकारी महात्मा भूले नहीं थे। उनको यह स्मरण था कि पागल होने पर भी वे अपने धारा-प्रवाह अंग्रेजी ज्ञान से लोगों को चमत्कृत कर देते थे। बड़े-बड़े पढ़े-लिखे और प्रतिष्ठित लोग कहते थे, 'कर्मों का लिखा नहीं मिटता। कैसे सोने सी निर्मल काया है। कैसा भूपों का सा रूप है। कैसे विशाल नेत्र हैं और ललाट कैसा चमकता है। किसी ऊंचे घर का लड़का है और अच्छा पढ़ा-लिखा है। मुँह से अंग्रेजी ऐसे निकलती है जैसे इसने जन्म से ही बोली हो। अगर पागल न होता तो जज होता या किसी और भी बड़े ओहदे पर जाता।'

उनको ये बातें अभी याद थीं। उनको भय था कि कहीं अब उनको कोई मारे-पीटे नहीं। उनको भय था कि कहीं अब भी वे कोई ऊट-पटांग बात न कह बैठें। इसलिए उन्होंने कुंए पर पानी खींचते हुए आदमी से अत्यन्त दीनता से पानी मांगा था।

"क्या पानी पियोगे? कहां के हो?" उसने कहा।

पिछले प्रश्न के उत्तर में वे क्या कहते। फिर भी उन्होंने कहा, "कहीं का नहीं। मैं पटना का हूं।"

उसने पूछा, "यहां कैसे आए ? कहां जाओगे ?"

उन्होंने कहा, "जाऊंगा तो मैं मुज़फ्फ़रपुर लेकिन आज तो यहां ही ठहरूंगा।"

आदमी ने उसकी ओर ध्यान से देखकर कहा, "तुम पागल हो, जो इतना लम्बा सफ़र पैदल कर रहे हो। फिर दिन में कहीं क्यों न ठहर गए। अच्छा, लो पानी तो पियो।"

उन्होंने पानी पिया। वे बहुत प्यासे थे। उन्होंने लोगों की भीड़ से बचने के लिए न कहीं पानी मांगा और न खाना। फिर वे मांगते कैसे ? उन्होंने तो कभी मांगा न था। जब तक वे पागल थे तब लोग उनको स्वतः खिलाते थे, क्योंकि तब तक उनके प्रति सबकी सहानुभूति थी और सहानुभूति तो अब भी होती, किन्तु पागल न होने पर भी पागल का सा व्यवहार करना अब उनके लिए सम्भव न रहा था। उनको अब अपने पागलों के से वेश से और बढ़ी हुई दाढ़ी और लम्बे केशों से लज्जा हो रही थी। इस कारण वे दिन भर के भूखे-प्यासे उस गांव में ही जा निकले जिसको शायद वह कुछ पहिचानते थे। उन्होंने पानी पी लिया और पूछा, "क्या यह काशीपुर है ?

उस आदमी ने कहा, "हां।"

उन्होंने पूछा, "यहां ठाकुर हरिनारायणसिंह रहते थे वे तो अब मर गए होंगे। उनके घर में कोई है ?"

उस आदमी ने आश्चर्य से पूछा, "तुम कैसे जानते हो उनको ? वे तो मर गए। अब उनके घर में कोई नहीं। उनके एक ही लड़का था जो कि जेल में पागल हो गया था। वह, न जानें, कहां गया। ठाकुर हरनारायणसिंह और उनकी बूढ़ी पत्नी दोनों ही पुत्र के जेल जाने पर पहिले ही अन्धे हो गये। जब वह पागल हो गया और लोगों ने उनको कहा कि वह शायद मर गया तो उन्होंने भी अपने प्राण दे दिए। लोगों ने उनको बहुतेरा कहा, किन्तु उन्होंने फिर अन्न-जल ग्रहण न किया। वे श्रवण की भांति पुत्र-शोक में ही मर गए।"

वे उदास हो गए। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे और उनकी हिलकी भर गई।

उस आदमी ने पूछा, "तुम क्यों रोते हो भाई?"

उन्होंने कहा, "उनका लड़का मेरे साथ पढ़ा था। बड़ा भला लड़का था और अपने पिता और माता का बड़ा भक्त था, किन्तु वह तो देशभक्ति की लहर में जेल चला गया। पीछे उसको सरकार ने फंसा लिया। कहते हैं कि उसकी पत्नी की कोई चिट्ठी उसके पास ऐसी गई थी जिसको पढ़ कर ही वह पागल हो गया और फिर न जाने उसका क्या हुआ। लेकिन ऐसे पिता और माता भी किसी के न होंगे। मुझे उन्हीं का ख़याल कर के रोना आगया था।"

उन्होंने कुछ ठहरकर फिर पूछा, "क्यों जी, उसकी स्त्री का क्या हुआ फिर?"

उस आदमी ने तिरस्कार के भाव से कहा, "तुम भी बड़े पागल हो। स्त्री कब अपने पति के ठिकाने पर बैठ कर खाती है। वह न जाने तभी की कहां गई?" यह कहकर वह आदमी बोला, "यहीं मन्दिर पर आराम करो। मैं तुम्हारे लिए रोटियां लाता हूं।" उन्होंने पहिचान लिया कि यह आदमी कौन था। उनका हृदय अपने आपको प्रकट करना चाहता था किन्तु अभी तो उनमें पागलपन बाकी था। उनमें अभी इतना साहस ही नहीं आया था कि वे अपना परिचय दे सकते। किन्तु नहीं, एक बात और भी थी। जब उनके पिता और माता मर गए और स्त्री कहीं चली गई तब वे कहां ठहरते, किसके लिए। वे बहुत दिन में पागलपन से कुछ होश में आये थे, किन्तु अब वे उस होश को किसके लिए कायम रखते। इस असह्य शोक को सहन करने के लिए उनको फिर किसी पागलपन की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने सोचा, 'रमाशंकर, अब तुम यहां प्रकट मत होओ। इस लज्जाजनक वातावरण को ओढ़ कर तुम यहां कैसे रहोगे? लोग कहेंगे, पागल है, सिड़ी है। स्त्री भी भाग गई। पिता और मां गरीबी में मर गए। एम० ए० तक पढ़कर इस लड़के ने

कुछ नहीं किया। इतना ही नहीं, रमाशंकर, जब तुम्हारे रिश्तेदार तुम्हारे आजाने की खबर पाएंगे तो वे भी तुमको देखने आएंगे और तब तुम अपना यह मुँह कहां छुपाओगे जिस पर कलंक की कालिमा पुत गई है। तुम्हारे कारण तुम्हारे पिता और माता मर गए और तुमने एक फूल जैसी कोमलांगी तरुणी का जीवन नष्ट कर दिया और फिर भी अभागे, तुम अभी जीते हो। तुम पागल नहीं हो यह अच्छा नहीं हुआ, इसलिए तुम फिर पागल हो जाओ।'

वे यह सोचकर फिर पागल हो गए। जब वह आदमी रोटियां लाया तो उन्होंने रोटियां ले लीं, किन्तु रोटियां खाना किसे कहते हैं। उनको देखकर उनकी हिलकी बंध गई। उनको खयाल आया कि इस गांव में उन्होंने अपनी मां के हाथ की रोटियां खाई थीं। उनमें बड़ी मिठास थी। मां की बनाई रोटियां कैसी स्वादिष्ट लगती थीं यह अभी तक उनको याद था। जब कभी शारदा खाना बनाती तो वे कम खाते। शारदा थी बेचारी नई आई हुई लड़की। उसको अच्छी रोटी सेकना आता न था। उसकी रोटियों में उसके सामने दोष निकालना वे ठीक न समझते। उसके सामने वे कहते, 'शारदा तुम्हारे हाथ का खाना बड़ा मीठा लगता है।' लेकिन अपनी मां से कहते, 'मां, रोटी तुम अच्छी सेकती हो। तुम बनाओगी तो शाम को खाऊंगा, नहीं तो नहीं। आखिर मां बनाती और खिलाती।

लेकिन उनको स्मरण आया, 'और शारदा जब तुम्हारी बात को समझ जाती कि तुम क्यों उसकी रोटी पसन्द नहीं करते हो तब वह बढ़िया से बढ़िया रोटी बनाने का कितना ध्यान रखती थी।' उनको उस प्रेम की याद भी अभी तक थी जो उन रोटियों में मिला हुआ रहता था।

उन्होंने मन में कहा, 'ये रोटियां दोनों में से किसी एक का भी स्वाद लिए नहीं हैं। इनको मैं कैसे खाऊं? रमाशंकर! जब तुमको रोटियां बनाकर खिलाने के लिये न तो तुम्हारी स्नेहमयी मां ही रही और न प्रेम-मयी पत्नी, तब तुम किसी अज्ञात नारी की उपेक्षापूर्वक भीख में दी हुई इन रोटियों को इस गांव में क्या खाओगे?'

वे रोटियों को हाथ में पकड़े खड़े रहे और वह आदमी भी खड़ा हुआ उनकी ओर देखता रहा। उनको भय हुआ कि वह उनको कहीं पहिचान न ले। उन्होंने मन में कहा, 'अंधेरा है यह अच्छा है। चलो रमाशंकर, इस अंधेरे में ही तुम इस गांव से चले चलो।'

रमाशंकर उलटे पैरों जिस मार्ग से आया था उसी पर लौट पड़ा। वह आदमी चिल्लाता ही रहा, 'रास्ता खतरनाक है। रास्ते में जंगली जानवर हैं। रात में जाना ठीक नहीं' लेकिन रमाशंकर के पग न रुके। वे उसी कच्चे दगरे की धूल में भरे उस अंधेरे में हलका शब्द करते हुए उठते चले गए। अन्त में रमाशंकर एक जंगल के कोने पर आये। वन भीषण था। उसमें गीदड़ बोल रहे थे और कई अन्य जानवरों के शब्द भी सुनाई पड़ रहे थे; किन्तु उनको जीवन का मोह न रहा था। उन्होंने अपना पागलपन देकर अब जो नया पागलपन मोल लिया था वह निर्भयता देने वाला था। उसने उनको ऊंचा उठाया और पागल से क्रान्तिकारी महात्मा के महत्वपूर्ण पद पर आसीन कर दिया।

अन्त में अब उन्होंने विगतपुर में अपनी कुटी बना ली थी।

यह सब पुरानी आपबीती अभी तक उनके मस्तिष्क में घूम रही थी।

(१८)

शारदा के पिता और रमाशंकर के मित्रों के बहुत खोज करने पर भी जब रमाशंकर का कोई पता नहीं चला तो शारदा को घोर मानसिक वेदना हुई। उसको अपना भविष्य सूना और अन्धकारमय दीखने लगा। अब तक वह रमाशंकर पर दृष्टि जमाए हुए ही तो सारे कष्टों का सामना कर रही थी। रमाशंकर की इस प्रकार की दुरवस्था की खबर ने उसको भी विक्षिप्त बना दिया। उसका खाना-पीना सब छूट गया और वह सूख-सूखकर कांटा होने लगी। उसके श्वसुर और उसकी सास उसको बहुत समझाते, किन्तु उनका समझाना व्यर्थ था। स्वयं वे भी क्या कम दुखी थे। उनके कंठों से नीचे भी तो कई दिनों से अन्न के दाने नहीं उतरे थे। अन्त में हुआ वही जो ऐसी स्थिति में होता है। बूढ़ा और बूढ़ी दोनों खाट गह गए। वे बिना बीमारी के ही स्थायी बीमार हो गए और अन्त में इस दुनिया से उठ गए। पहिले बूढ़ा चला गया और उसके बाद बुढ़िया भी गई। अब सचमुच शारदा को धैर्य बंधाने वाला वहां कोई न था। गांव वाले और पड़ौसी कोई किसी को बहुत दूर तक थोड़े ही ले जा सकते हैं। उनकी भी अपनी मर्यादाएं होती हैं। उनकी सहानुभूति उन मर्यादाओं तक ही सीमित रहती है। शारदा की ओर भी कुछ दिन में लोगों की आंखें बदल गईं। सभी उससे अपना मतलब गांठना चाहते थे। कोई उसका खेत चाहता था तो कोई उसका घर। उसकी घरेलू चीजों के ग्राहक भी बहुत थे; किन्तु शारदा बेचारी जानती थी कि ये सब स्वार्थी हैं। सब बनी के साथी हैं। इनमें से कोई भी बिगड़ी

अवस्था में साथ न देगा। इस स्थिति में वह अपने घर की चीजों को क्यों योंही किसी को बांट देती?

जब लोगों की कामनाएं पूरी नहीं होतीं तो उनको क्रोध आता है। फलतः वे अपने उपकारी के साथ भी अनुपकार करने की बात सोचते हैं। शारदा ने अपने किसानों के साथ कम उपकार नहीं किए थे और गांव के लोगों को भी भूचाल के बाद कमिश्नर के पास अपना मामला ले जाने की सलाह उसी ने दी थी और उससे उनको लाभ हुआ था। किन्तु अब जब काशीपुर में उसका कोई न था, उसकी सहायता किसी ने न की। एक निराश्रय स्त्री के साथ किसी ने भी सहानुभूति न दिखाई। प्रत्युत उन्होंने उसको हतभागिनी समझा, क्योंकि जिस दिन से वह अपने श्वसुर गृह में आई उसी दिन से उस परिवार पर अनेक प्रकार के कष्ट आए। उसके पति को जेल हुई। उसका कालेज छूटा। फिर भूचाल में उसके श्वसुर की ज़मींदारी बर्बाद हुई और परिवार में निर्धनता का नाच होने लगा। उसके श्वसुर और सास अन्धे हो गए। उसका पति पागल हो गया और अन्त में उसका क्या हुआ, यह कोई न जानता था। सबका खयाल था कि वह किसी कुँए या तालाब में गिर कर मर गया। उसके बाद अब बूढ़े श्वसुर और सास ने भी अपनी छाया उसके ऊपर से हटा ली। शारदा के बाप और मां ने भी उसकी अधिक सहायता नहीं की और उससे बैर सा माना। ऐसी स्त्री सौभाग्यशालिनी कैसे गिनी जा सकती थी? कितने ही लोग कहते कि अगर शारदा सुबह-सुबह उनके सामने निकल जाती तो उनको उस दिन अवश्य कोई न कोई हानि होती थी।

शारदा को थोड़े ही दिनों में यह मालूम हो गया कि वह सारे गांव की सहानुभूति खो बैठी है। उसने अपने जीवन में पहिली बार अपने नारीत्व का यह अपमान देखा था। इस अपमान की चोट से उसका स्वाभिमानी अन्तर तिलमिला उठा। उसने निश्चय किया कि वह यहां नहीं रहेगी। वह यह अनुभव करती थी कि इस असहानुभूतिपूर्ण वातावरण में वह अधिक दिन सांस नहीं ले सकेगी। निदान जब उसके पिता ने

उसकी हालत देखने के लिए उसके बड़े भाई सुधीन्द्र को भेजा तो शारदा का खंड-खंड हृदय बिखर गया और वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसने अपने मन में कहा, 'मैं बड़ी हतभागिनी निकली। मेरे दुर्भाग्य से मेरे श्वसुर का भरा हुआ घर उजड़ गया। यह इतना बड़ा घर और इसमें एक निराश्रय शारदा ! भला मन इसमें कैसे लग सकता है, किन्तु यहां से जा भी कहां सकती हूँ ? मेरे भाई तक मुझको भूल गए। अब जब मेरे ऊपर दुख का पहाड़ टूट पड़ा है तब मेरे आंसू पोंछने आये हैं। जिस शारदा के आंसू पोंछने वाला उसके श्वसुर-गृह में कोई न रहा और जिसके ऊपर किसी भी रूख की छाया न रही हो उस शारदा के साथ इतनी सी सहानुभूति भी बहुत है।

सुधीन्द्र का हृदय बहिन के इस दुख को देखकर फट गया। वह आंसुओं में बह गया और स्त्रियों की भांति रोने लगा, किन्तु मुँह से बिना दुख का कोई शब्द निकाले हुए उसका गला रुंधा हुआ था। अपनी बहिन को जीर्ण और मलिन वसनों में देखकर उसके हृदय में सोते हुए भगिनी प्रेम को करारी ठोकर लगी थी। अपनी बहिन को देखने की तीव्र इच्छा होने पर भी उसके पिता ने उसको काशीपुर आने की अनुमति नहीं दी थी। किन्तु उसको यह पता न था कि शारदा की ऐसी विपन्न अवस्था होगी। यदि वह यह जानता तो किसी दूसरे बहाने से ही वह शारदा के पास अवश्य आता।

शारदा अब भी उसके कन्धे पर मुँह रख कर सिसक रही थी। उसकी आयु क्या थी ? कुछ नहीं। उसने दुनिया का क्या देख लिया था अभी ? कुछ नहीं। फिर उस पर विपत्ति का ऐसा पहाड़ क्यों टूटा ? क्या परमात्मा इतना निर्दय है ? शारदा ने क्या पाप किया था जिसका उसको यह कठोरतम दंड मिला है। सुधीन्द्र यही सोच रहा था कि शारदा ने उसको पूछा 'मां अच्छी तरह है ? दोनों छोटे भाई ? भाभी, वह चाची और उनके बच्चे ? गांव का फलां आदमी ? मेरी वह फलां सहेली ?' अन्त में जब वह गांव के सब आदमियों को याद कर चुकी तो उसने पूछा, "अब हमारे

आंगन का वह नीम तो बड़ा होगा जो आपने लगाया था और जिसको मैं नित्य कलश में कुंए से पानी लाकर सींचती थी ? हमारा पुराना मकान तो नया बन गया है ? कैसा है ?"

वह फिर बोली, "अच्छा भैया, आप स्नान कीजिए। हमको बहुत देर हो गई। मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है उसके लिए आप काहे को दुखी होते हैं ? किसी के भाग्य का साथ किसने दिया है ?"

सुधीन्द्र चुप हो रहा था। शारदा उसके हृदय पर अब भी अनजाने घाव कर रही थी। वह उठ बैठा। उसने स्नान किया। गांव में पता चला कि शारदा का भाई आया है। लड़कियां और स्त्रियां आँगन में इकट्ठी हो गईं। गांव की स्त्रियों की सहानुभूति अब शारदा के साथ कुछ ही क्षणों में अधिक हो गई थी, यह देखकर शारदा आश्चर्य कर रही थी। उन्होंने जब शारदा के सिर पर उसके भाई की छाया देखी तो उनको अनुभव हुआ कि शारदा का भाग्य सुधर रहा है। शारदा अब उतना हतभागिनी नहीं है, जितनी प्रतीत होती थी। ऐसी स्थिति में उन्होंने उसकी ओर से समेटी हुई अपनी सहानुभूति उस तक फिर फैला दी।

शारदा अपने श्वसुर के घर की स्थिति बिगड़ जाने पर अपने पिता के घर बिना बुलाए जाने में क्यों झिझकती थी ? वह जानती थी कि प्रायः पिता और माता भी धनिक परिवार में ब्याही गई लड़की का अधिक आदर-सम्मान करते हैं। इसके विपरीत दरिद्र या कम धनी परिवार में ब्याही हुई लड़की का उतना आदर नहीं करते। भाई भी धनी बहिन का अधिक आदर करते हैं, क्योंकि वह उनसे कुछ मांगती नहीं ? किन्तु इसके विपरीत वे दरिद्र बहिन के प्रति अपना आकर्षण कम कर लेते हैं क्योंकि वह उनकी पैत्रिक-सम्पत्ति में से भाग चाहती है।

कुछ लोग कहेंगे, 'किन्तु ये तो ओछे हृदयों की बातें हैं। अवश्य ही उनका यह कथन सत्य है किन्तु यह सब विश्लेषण यह बताता है कि यह ओछापन यदि समाज में नियम नहीं बन गया है तो कम से कम अपवाद भी नहीं है। जनता के बहुमत की मनोवृत्ति यही है। माताओं

की प्रवृत्ति हमेशा अपनी दरिद्र लड़की की सहायता करने की ही रहती है, यह सही है। वह सावन-सलूने उनको कुछ चीजें और कपड़े भेजने का अवश्य ध्यान रखती है। हिन्दुओं में यह प्रथा है। अन्य धर्मों के लोगों में भी यही मनोवृत्ति अन्य विविध प्रथाओं के रूप में प्रकट हुई है।

इस मनोवृत्ति का असर दूसरी ओर लड़कियों पर भी अवश्य ही होता है। दरिद्र परिवारों में व्याही गई लड़की अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए धनी पिता और माता के घर अधिक जाना पसन्द नहीं करती। वह अपने पितृ-गृह में अपनी दरिद्रता का प्रकाश करने वाली बातें भूल कर भी नहीं करती। यदि उसके पिता और माता उसको कोई चीजें देते हैं तो वह कई बार उनकी आवश्यकता होने पर भी और समाज में स्वीकार करने की प्रथा होने पर भी उनको स्वीकार नहीं करती, क्योंकि उसको भय बना रहता है कि उसके पितृ-गृह में कहीं वह दरिद्र न गिनी जाए और उसका स्वागत-सम्मान भी इस कारण कम न हो जाए। इसके विपरीत धनी परिवार में ब्याही गई लड़की को इसका भय नहीं रहता, क्योंकि वह जानती है कि उसको दरिद्र समझ लिया जाना सम्भव नहीं, इसलिए पितृ-गृह से कोई भी चीज़ ले जाना दरिद्रता का सूचक नहीं समझा जा सकता। वह तो उसका अधिकार है जिसकी समर्थक सामाजिक प्रथा है।

शारदा अपने पति-गृह की सामाजिक हीनता के भाव को अनुभव करती थी। इसी कारण वह दरिद्रावस्था आजाने पर स्वाभिमान-वश अपने पिता और अपनी माता से आर्थिक सहायता न मांग सकी। वह इसी संकोच के कारण लोचनपुर जाने का साहस न कर सकी। उसने सोचा, 'मेरी मां मेरी अवस्था पूछेगी और मैं उससे उसको छुपा न सकूंगी। इससे यदि मैं वहां जाऊं ही नहीं, तो अच्छा रहेगा। पीछे जब हालत सुधर जाएगी तो मैं अपने पति के साथ स्वाभिमानपूर्वक जाऊंगी।'

किन्तु शारदा ने जो योजना सोची थी नियति के अज्ञात कर ने उसको उलट-पुलट दिया। अब तो शारदा के लिए स्वाभिमान की रक्षा का कोई मार्ग न रह गया था। वह इस चिन्ता के कारण भी क्षीण हो गई थी।

परिवार के नष्ट होने का जो महान दुख उसके ऊपर पहाड़ की भांति आ पड़ा था उसमें यह दुख वज्रपात की भांति विशेष रूप से कष्टकर हो उठा था। उसकी लज्जा कहती थी 'शारदा ! तू अपने पिता और माता के घर से किस रूप में आई थी और आज तू उसी घर को इस रूप में जाएगी ? क्या इस बोझ को तू उठा सकेगी ?' शारदा का हृदय उसके वक्ष में विद्रोह कर रहा था और कह रहा था, 'नहीं, मुझसे यह कदापि न होगा।'

शारदा ने भाई को खाना खिलाया और स्वयं कुछ खाया-पिया। दोनों भाई और बहिन में फिर बातें होने लगीं। शारदा ने पूछा, "मां ने क्या कहा है ?"

सुधीन्द्र ने कहा, "मैं तुमको साथ ले चलूंगा। यहां ज़मींदारी का प्रबन्ध करने के लिए एक कारिन्दा रख देंगे। तुम्हारे ऊपर पिता जी अब कोई भार रखना नहीं चाहते। तुम अब यहां नहीं रहोगी।"

शारदा चुप हो गई। उसके हृदय का विद्रोह सुधीन्द्र के दृढ़ शब्दों से दब गया। उसने कहा, "जैसी आप सब लोगों की मर्जी। मैं तो कुछ कहना नहीं चाहती। अगर कुछ कहूँ भी तो मैं कुछ कर नहीं सकती।"

शारदा सुधीन्द्र के साथ लोचनपुर को चली गई। वहां जब उसकी मां ने उसकी जर्जर हालत देखी तो उसको बड़ा दुख हुआ। मां को अपने इकलौते बेटे की मृत्यु का जितना दुख होता है उतना ही और कदाचित उससे भी अधिक दुख अपने जामाता की मृत्यु पर होता है। लड़की अपनी मां के अधिक निकट होती है और लड़का अपने पिता के अधिक निकट। अपनी लड़की को विधवा के श्वेत वसन पहिने देख कर मां को तीव्र संताप होता है। वह उसके माथे की सुहाग का लाल बिन्दु पुछा देख कर बहुत विकल होती है; किन्तु उसके हाथ में उसका कोई इलाज नहीं होता, इसलिए हृदय पर पत्थर रख कर वह उस सबको सहन करती है।

किन्तु शारदा तो विधवा नहीं हुई थी। उसका सुहाग-बिन्दु अभी उसके माथे पर से पुछा न था। फिर भी वह वहां दीखता न था। वह विधवा

के श्वेत वसन नहीं पहिनती थी। फिर भी उसकी इच्छा रंगीन-चटकीले वस्त्रों पर से हट गई थी। इसका कारण यह था कि शारदा विधवा न होने पर भी विधवा थी। जिस स्त्री का पति उसकी आंखों के सामने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाए वह स्त्री संतोष कर के तो बैठती है। वह समझ लेती है कि उसके ऊपर जिस पुरुष की मंगल-छाया थी वह अब इस पृथ्वी-तल पर जीवित नहीं है। वह उससे पुनर्मिलन की आशा तोड़ चुकती है; लेकिन शारदा का पति रमाशंकर उसकी आंखों के सामने मरा नहीं था। वह पागलपन की दशा में कहीं चला गया था। इसका निश्चय नहीं था कि उसका कहीं शरीर-पात हो गया है। ऐसी दशा में वह कभी भी आ सकता था। यह सम्भावना बहुत थी कि रमाशंकर पागलपन की अवस्था में कहीं मारा-मारा फिरता हो और कभी भाग्य से उसका पागलपन मिट जाए। उस दशा में शारदा का सुहाग उसको फिर वापिस मिल सकता था। उसके माथे का लाल बिन्दु तब फिर उसकी शोभा बढ़ाने का कारण हो सकता था और रंगीन और चटकीले वस्त्र फिर उसके चित्त को आह्लाद देने का कारण बन सकते थे। तब शारदा की स्थिति क्या थी? वह रमाशंकर के फिर आने की आशा में जीवित थी। यह आशा उसके शरीर को हरा रख रही थी, अन्यथा वह कभी का सूख कर निष्प्राण हो गया होता। उसको यह विश्वास था कि जब कभी उसके प्राणाधार उसके जीवन के सूखे उपवन के मेघ बन कर आएंगे और उसमें रिमझिम करके सुख की बूँदें गिराएंगे तो यह ठूंठ, जिसे अब भी लोग शरीर कहते हैं, फिर हरा हो जाएगा। वह अपने प्रियतम को पाकर फिर पत्रों और पुष्पों से सज जाएगा और उसमें समय पाकर फल भी लग सकते हैं। शारदा सोचती थी कि उसके जीवन में वह सुखमय घड़ी भी आ सकती है। उसका हृदय उसको अब भी यह कहता था कि शारदा, अगर रमाशंकर जीवित है तो वह उसे भूल नहीं सकता। पागलपन दूर होते ही वह उसकी याद करेगा और उसे खोजता-खोजता यहां आजाएगा। और उसको यह विश्वास था कि रमाशंकर मरा हुआ

हो नहीं सकता। वह अभी अवश्य कहीं जीवित है। किन्तु उसकी स्मृति मूर्छित होने से वह इस योग्य न होगा कि अपनी शारदा को याद कर सके।

इस प्रकार शारदा अपनी काया के दीप में अपने पुनीत रक्त का स्नेह भर कर और उसमें सतत स्मरण की बाती संजोकर अपने प्रियतम की आगमन- वेला की प्रतीक्षा कर रही थी। इस प्रतीक्षा में उसको एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते और होते-होते पूरे तीन वर्ष व्यतीत हो गए। तब वह निराश हो गई। उसकी वह सतत निराशा सतत खिन्नता के रूप में स्थायी हो गई। उसकी आंखें गड्ढे में बैठ गईं। मुख का वर्ण पीला हो गया, और दांत बाहर निकल आए। उसका यौवन मनो बुढ़ापे ने आ घेरा था। अन्त में उसको एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता का रोग हो गया। उसको निश्चित समय-भाग व्यतीत हो जाने पर दौरे होते और उनका पुरा प्रभाव दौरे खत्म हो जाने पर भी कई दिनों तक रहता। वैद्यों का इलाज चला, डाक्टरों की चिकित्सा हुई और साधुओं और महात्माओं की जड़ियां और बूटियों के प्रयोग भी करके देख लिये, किन्तु शारदा ठीक नहीं हुई। न उसकी वह दुर्बलता गई और न उसके वे दौरे। अन्त में उसके मस्तिष्क ने उसका साथ देना बंद कर दिया। वह पागलों की भांति घर से निकल पड़ती और उसको अपने वस्त्रों का भी होश न रहता। शारदा की यह अवस्था उसके परिवार की एक स्थायी चिन्ता बन गई। वे उसको इधर उधर से ढूंढ कर बार-बार घर लाते, किन्तु वह बार-बार बाहर चली जाती। एक दिन मेंह बरस रहा था और अंधियारी झुक रह थी। शारदा ने उसी पागलपन में अपना घर छोड़ा और चल दी धीरे-धीरे जिस ओर उसका मुंह उठा उस ओर।

(१९)

अवधबिहारीलाल का देहान्त हुए अब तो बहुत दिन हो गए। अब रम्भा और मनोरमा की अवस्था में कोई अन्तर न था। दोनों एक समान विधवाएं थीं, किन्तु मनोरमा की अवस्था ढल चुकी थी और रम्भा का मध्य-यौवन था। इस प्रकार एक अवधबिहारीलाल की मृत्यु ने दो प्राणियों के जीवनों को उनकी निजी स्थितियों के अनुसार दो प्रकार से प्रभावित किया था। केशिनी विधवा थी ही और शीला अपने स्वभाव के कारण सुशील को खो बैठी थी। सुशील अपनी जायदाद का प्रबन्ध एक मुनीम के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त हो गया था। यह मुनीम मकानों का किराया संग्रह करता और सुशील के स्थान में घर के व्यवस्थापक का कार्य करता। अब सुशील कहां रहता है और क्या करता है, यह देखना है।

सुशील ने मधुवनी के पास रतन-ज्योति गांव में एक छोटा सा सेवा-केन्द्र खोला था। उसमें कुछ रोगियों का स्थायी प्रबन्ध भी हो सकता था. इसके लिए वहां छप्परदार झोंपड़े बने हुए थे। बस्ती से बाहर एक कुँआ, उस कुँए में से लगे हुए नलों का एक जाल, कुछ स्नानागार, कुछ फुहार-स्नान करने के फव्वारे, पीली बालू बिछी हुई व्यायाम-शाला, जिसमें अस्वच्छता का कहीं नाम तक नहीं था, एक पाठशाला, जिसमें केवल हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध था और गायों के बांधने का एक बाड़ा—यह था सेवा-केन्द्र का स्वरूप। सेवा-केन्द्र की हद में कुछ जंगल प्रान्तीय सरकार से मांग लिया गया था और उसमें कुछ अन्न आश्रम-

वासियों के लिए और कुछ चारा गायों के लिए उग आता था। जंगल में गायें चरतीं और मस्त रहतीं। केन्द्र में केवल दो मुख्य कार्यकर्त्ता थे, एक सुशील स्वयं और दूसरा एक युवक भारती जो डाक्टर था। उसकी प्राकृतिक चिकित्सा में विशेष रुचि थी। वहां देहातों से जो रोगी सुशील की निःस्वार्थ-सेवा की चर्चा और ख्याति सुन कर आते उनकी सेवा बड़े प्रेम से की जाती। कितने ही रोगी जिनके बचने की आशा न थी उस सेवा-केन्द्र को यश दे गए थे। किन्तु जहां औषधियों का रोगी के रोग पर असर होता था वहां आश्रम की शुद्ध वायु, स्वास्थ्यबर्द्धक और पाचक जल, गायों का दूध और हलके खाने और प्राकृतिक चिकित्सा भी जिसमें उपवास, फुहार-स्नान, वाष्प-स्नान, सूर्य-स्नान और मृत्तिका-चिकित्सा मुख्य थी, विशेष प्रभाव डालते थे। यदि किसान अपने घरों में इतनी स्वच्छता से, स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए रहें तो उनको रोग ही क्यों हों। किन्तु वे बेचारे अज्ञानवश इन सब बातों को भूल जाते हैं, स्वास्थ्य के नियमों को भंग करते हैं और फिर दुखी होते हैं। सुशील ने अपने ऊपर अधिक उत्तरदायित्व लिए बिना शुद्ध सामाजिक सेवा करने का यह साधन उपस्थित किया था। केन्द्र के द्वार पर लिखा था, "सेवा हमारी साधना है। वह हमारी आत्मा को निर्मल करती है और यही हमारा पुरस्कार है।"

सुशील की दृष्टि ऐसी किस प्रकार बन गई यह कोई नहीं जानता। किन्तु एक बात स्पष्ट थी। भूचाल के बाद जब वह एक अस्पताल में पड़ा अपनी चिकित्सा करा रहा था तो एक युवक डाक्टर की निर्मल सेवा-भावना का उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उसका विश्वास था कि यदि वह न होता और उसकी इतनी पर्वाह न करता तो कदाचित सुशील की जीवन-लीला भी भूचाल की एक दुर्घटना होती। उसने भूचाल में पटना की आहुतियों में एक आहुति की वृद्धि करदी होती। जब वह युवक डाक्टर अपनी सरलता से भरी हुई हृदय में बर्फ की सी शान्ति उंडेलने वाली कोमल वाणी से सुशील को कुछ पूछता तो सुशील

का रोग बहुत कुछ तो उसी से दूर हो जाता। फिर वह उसकी चोटों पर 'बोरिक' और दूसरी औषधि मिले हुए गर्म पानी से सेंक करता और उसके बाद कुछ खाना खिला कर और दूध पिला कर उसको सुला देता। यदि सुशील के खाने के बर्तनों में कहीं भी अस्वच्छता होती, यदि उसके खाने में कोई भी कमी रह जाती, यदि उसके वस्त्रों में कोई वस्त्र बिल्कुल स्वच्छ न होता और उसकी सेवा में कोई भी अपूर्णता उसकी दृष्टि में आती तो वह उसको कदापि सहन न करता था। सुशील उस युवक डाक्टर का बड़ा कृतज्ञ था। जब वह स्वस्थ हो कर अस्पताल से निकला तो उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से उस युवक डाक्टर की ओर देखा और कहा, "आप मेरे ऊपर एक कृपा कीजिएगा। आप मेरे घर अवधबिहारीलाल वकील की कोठी पर आज सायंकाल आइएगा?"

युवक डाक्टर ने देखा कि इस समय इसका हृदय तोड़ना ठीक नहीं है। इसके पिता का तार आया है कि मोटर ले कर आओ। उसकी मां अस्वस्थ है। इसके भाई और बहिन मकान में दब कर मर गए हैं। यदि वह उसकी प्रार्थना न मानेगा तो बड़ी क्रूरता होगी। उसने यह सोच कर कहा, "मैं अवश्य आऊंगा। मैं आपकी जो भी सहायता कर सकता हूँ वह आधी रात करूंगा।"

जब सायंकाल आया और युवक डाक्टर वहां पहुंचा तो दो नौकर और सुशील उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने डाक्टर का स्वागत किया। डाक्टर बैठ गया। नौकरों ने दोनों को खाना खिलाया। दोनों ने बड़े प्रेम से बातें कीं। जब डाक्टर विदा होने लगा तो सुशील ने कहा, "डाक्टर, आज आप मुझे यह कहिए कि आप आवश्यकता पड़ने पर मेरा साथ देंगे।"

डाक्टर ने कहा, "इससे आपका मतलब?"

सुशील ने कहा, "आप मतलब न पूछिए। मेरे पास धन है और आपके पास गुण है। क्या मैं और आप कभी इनका समन्वय नहीं कर सकते और रोगों से मरते हुए समाज के प्राण नहीं बचा सकते?"

डाक्टर ने सुशील के वक्ष के भीतर छुपा हुआ मानवतायुक्त हृदय देख लिया। उसने कहा, "सुशील, यदि आप अपने धन का सदुपयोग करना चाहेंगे तो मुझको भी अपने आपको रोगी मानवों की सेवा करने में पीछे न पाएंगे।"

जब अवधबिहारी मर गए और सुशील अपनी इच्छा के अनुसार अपना जीवन कार्य चुनने के लिए स्वतन्त्र हुआ तो उसने युवक डाक्टर को स्मरण किया और युवक डाक्टर ने तुरन्त सुशील को दिया हुआ अपना वचन निबाहा। उसने सरकारी अस्पताल की नौकरी छोड़ दी और अपना संक्षिप्त सा डाक्टरी सामान लेकर सुशील के साथ रतनज्योति में अपने झोली-झंडे डाल दिए। उसने सेवा-केन्द्र को जमाने में सुशील की बड़ी सहायता की। यदि वह न होता तो कदाचित सुशील का सेवा-केन्द्र का स्वप्न अपूर्ण ही रह जाता और दुखी मानवों की सेवा की उसकी प्यास अतृप्त की अतृप्त ही रह जाती।

भारती बड़ा सरल हृदय था। सेवा के अतिरिक्त उसकी दूसरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। सेवा-केन्द्र में प्रातःकाल ४ बजे से और रात के ८ बजे तक, दो गठीले शरीरों के समान आयु के युवक गेंद की भांति जीवन शक्ति से भरे हुए इधर से उधर को गति करते हुए दीख पड़ते थे। नये आए हुए व्यक्तियों को तो प्रतीत होता कि केन्द्र में ये सेवा-परायण युवक दो नहीं छह हैं। किन्तु जब वह उनकी आकृतियों पर दृष्टि गड़ा कर देखता तो उसको ज्ञात होता कि सारे आश्रम की प्रगतियों का संचालन केवल दो ही युवक कर रहे थे। प्रत्येक कार्य का समय नियत था। नियत समय-भाग में नियत कार्य-भाग अवश्य पूरा हो जाता। प्रातःकाल रोगियों की सेवा में डाक्टर का सारा समय चला जाता। उसको उससे एक क्षण का भी अवकाश न मिलता। उस समय सुशील शाला चलाता। ९ बजे तक यह कार्य समाप्त करके सब रोगी अपना-अपना भोजन भोजनशाला से ले लेते और उससे निवृत हो कर अपनी-अपनी झोंपड़ियों में आराम करते। वे प्रायः सभी कार्य अपने हाथों से कर लेते,

केवल उन लोगों की सेवा का विशेष प्रबन्ध होता जो अपना कार्य स्वयं करने में असमर्थ होते। दोपहर बाद के समय में विद्यार्थियों का काम था, कातना, बुनना, लकड़ी की चीजें बनाना, रस्सी बनाना, लोहे की चीजें बनाना और दूसरी चीजें तैयार करना। अध्यापक भी विद्यार्थियों के साथ काम करते और जो चीजें तैयार होतीं वे बाजार में जातीं या सेवा-केन्द्र से बिक जातीं। सेवा-केन्द्र से प्रति वर्ष टाट-पट्टियां, मेजें, कुर्सियां, अलमारियां, मूढ़े और कई चीजें बड़ी तादाद में बिकती थीं। इससे सेवा-केन्द्र के खर्च में बड़ी सहायता मिलती थी। इसके अतिरिक्त जितने रुपए की आवश्यकता होती वह किसी को पता न था कि कहां से आता है। केवल सुशील और डाक्टर जानते थे कि सुशील के पिता की ज़मींदारी की ओर से ही उसकी पूर्ति होती है।

रतनज्योति सेवा-केन्द्र मधुवनी के क्षेत्र में बहुत अर्से तक यह सेवा-कार्य करता रहा और उसकी बहुत ख्याति हो गई।

जब आश्रम में स्त्री-रोगियों का आना शुरू हुआ तब यह प्रश्न आया कि इनकी सेवा का कार्य कौन करे। सुशील को याद आया कि उसकी भाभी केशिनी का हृदय बड़ा स्नेहपूर्ण है। वह इस कार्य के सर्वथा योग्य है। उसने पटना जाकर केशिनी से यह बात कही और केशिनी ने यह प्रस्ताव सर्वथा स्वीकार कर लिया। केशिनी के साथ रम्भा ने भी आश्रम में चलने की इच्छा प्रकट की, किन्तु वह सुशील को स्वीकार न हुई। उसने साफ़ इन्कार तो नहीं किया, किन्तु उसने कहा कि अभी तक तो वहां केशिनी के लायक ही काम है। यदि वहां काम बढ़े और दूसरी स्त्री की आवश्यकता हो तो अवश्य रम्भा भी सेवा-केन्द्र में रह सकती है। इस स्थिति में केशिनी रतन-ज्योति सेवा-केन्द्र में चली आई, और रम्भा जाने की इच्छा रहते हुए भी न जा सकी।

सुशील जानता था कि रम्भा में परिवर्तन हुआ है। उस दिन की घटना के बाद जब सुशील बहुत कहने पर भी रम्भा को पढ़ाने के लिए न गया तो रम्भा ने पुस्तकें उठाकर एक ओर रख दीं और चर्खा उठाया।

उसने खादी का बाना धारण किया और राष्ट्रीय हलचलों में कुछ-कुछ भाग लेना आरम्भ किया। अब वह नित्य 'सेवा' अखबार पढ़ती थी। एक प्रकार से यह सेवा-युग था। संसार में जब कोई प्रवृत्ति बहुत बढ़ती है तो लोग उससे ऊब जाते हैं और तब उसकी विरोधी प्रवृत्ति उतने ही वेग से बढ़ने लगती है। अब तक संसार में व्यक्तिवाद की धूम थी। लोग स्वार्थ पूजा में रत थे, किंतु इससे उनको शांति न मिली; बल्कि आशा के विरुद्ध उनकी अशान्ति में वृद्धि हो गई। व्यक्तिवाद जितना अधिक बढ़ा लोगों की अशान्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ी। तब उन्होंने उस प्रवृत्ति को छोड़ा। फिर समष्टिवाद की प्रवृत्ति चली। यह व्यक्तिवाद की विरोधी प्रवृत्ति थी। व्यक्तिवाद में व्यक्ति अपने स्वार्थ से संचवित है, किन्तु समष्टिवाद में सबका स्वार्थ ध्येय होता है। 'सेवा' अखबार इस नये वाद का ही प्रचारक था, किन्तु उसकी मान्यता थी कि यह समष्टिवाद निस्स्वार्थ सेवा के मार्ग से बड़ी आसानी से लाया जा सकता है। वह हिंसा और रक्तपात को समष्टिवाद तक पहुँचाने का हीनतम मार्ग कहता था। उसने अभी लिखा था, "स्वार्थ मनुष्य में बर्बर युग के प्रतिनिधि के रूप में अभी तक जीवित है। इस स्वार्थ को हटाने के लिए उसी बर्बरता का आश्रय लेना उस बर्बर युग को वापिस निमंत्रण देना है। हम यदि व्यक्तिवाद—स्वार्थ-भाव—का उन्मूलन शस्त्रों और सेनाओं की सहायता से करते हैं तो हम स्वयं उतने ही बर्बर बन जाते हैं, जितने बर्बर ये व्यक्तिवादी होते हैं। हम जब तक व्यक्तिवादियों के तरीकों का इस्तैमाल करते हैं तब तक हम अबर्बर कदापि नहीं हो सकते। इसलिए आइए, हम व्यक्तिवाद का उन्मूलन शुद्ध 'सेवा-भाव' से करें। हम कहते हैं कि यदि हम उन लोगों की सेवा आरम्भ करदें जो सेवा के अभाव में पतित हो रहे हैं और मर रहे हैं तो हम व्यक्तिवाद का उन्मूलन एक बड़ी सीमा तक कर देंगे। जिनके पास सेवा के साधन हैं यदि वे उनको उन लोगों तक पहुंचाएं जो सेवा के साधनों से हीन हैं, किन्तु जिनमें सेवा करने की शक्ति है तो फिर कोई कारण नहीं है कि संसार में शान्ति की वृद्धि न

हो। संसार में अशान्ति होने का कारण ही यह है कि सब लोगों को सेवा का समान भाग प्राप्त नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए एक डाक्टर की सेवा की सबसे अधिक आवश्यकता उन लोगों को है जो भयंकर रोगों से पीड़ित हैं। किन्तु व्यक्तिवादी उसकी सेवा को अपनी सम्पत्ति की शक्ति से क्रय कर लेते हैं और उसे केवल अपने स्वार्थ के लिए सुरक्षित कर लेते हैं। इस प्रकार डाक्टर की सेवा की आवश्यकता जिन लोगों को सबसे अधिक है वे उसके अभाव में प्राणों को मिट्टी की भांति रोगों से लुटा रहे हैं। यही तो हमारी समाज-व्यवस्था का दोष है। समय की आवश्यकता यह है कि डाक्टर अपनी योग्यता और शक्ति शुद्ध-सेवा में लगा दे। वह व्यक्तिवादी से सम्पत्ति लेकर उसको अपनी शक्ति बेच देता है तो यह तो कोई सेवा नहीं है। यह तो व्यक्तिवादी समाज-व्यवस्था का ही एक दोष है। डाक्टर को अपनी सेवा निस्स्वार्थ भाव से उन लोगों को देना वाञ्छनीय है जिनको उसकी सेवा कि अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार इस क्षेत्र में कभी समष्टिवाद आजाएगा।"

अखबार ने आगे लिखा था, "यदि हम सेवा के अन्य विभागों के द्वार भी उन लोगों के लिए, सेवा के अभाव में जिनकी आत्मा पतित और शरीर जर्जर हो रहे हैं, उनसे बिना कुछ लिए खुले कर दें तो हम अवश्य अपने समाज में समष्टिवाद की स्थापना कर चुकेंगे। दूसरे शब्दों में सेवा और समष्टिवाद एक वस्तु के दो नाम है। हम जो अपने आपको समष्टिवादी कहते हैं यदि अपनी सेवाएं निःस्वार्थ भाव से उन लोगों में वितरित नहीं करते जिनको उनकी अत्यन्त आवश्यकता है तो हम समष्टिवादी नहीं हैं। इसका अर्थ यह है कि हम बिना मूल्य लिए अपनी सेवा की शक्ति को ज़रूरतमन्द लोगों में बांटना नहीं चाहते। हम उसका पूरा मूल्य उगाहना चाहते हैं। यही तो व्यक्तिवाद है। व्यक्तिवाद, व्यष्टिवाद और पूंजीवाद, ये एक ही चीज़ के विविध नाम हैं। ये सब पर्यायवाची हैं। इसके विपरीत समष्टिवाद, साम्यवाद और समाजवाद एक ही चीज के विविध नाम हैं। ये सब भी पर्यायवाची हैं।

'सेवा' के ऐसे लेखों ने रम्भा की ज्ञानधारा को बदल दिया था। जो रम्भा सुशील को कभी मलिन दृष्टि से देखती थी वह अब मर चुकी थी। कदाचित नई रम्भा पुरानी रम्भा का ख़याल करके लज्जा अनुभव करती थी। क्यों? नई रम्भा सोचती कि पुरानी रम्भा ने भूल की थी।

रम्भा उस समय की अपनी मनोदशा का जब विश्लेषण करती तो उसको बड़ी लज्जा और ग्लानि होती। वह कहती, 'रम्भा तू पतिता है। किसी को मलिन दृष्टि से देखना ही उसके साथ आधा पतित होना है, किन्तु पतन कभी आधा नहीं होता। जिस प्रकार मृत्यु विभाजित नहीं होती, उसी प्रकार पतन भी विभाजित नहीं होता। पतन पतन है चाहे वह कितना ही क्यों न हो। निदान, तू पतिता है। और सुशील? सुशील जैसा सदाचारी और विवेकशील युवक ही था जो इतने बड़े प्रलोभन के होने पर भी संभल गया। बारूदघर में चिनगारी आकर गिर जाए और फिर भी बारूदघर भभक न उठे तो इसे बारूदघर का भारी संयम ही समझना चाहिए। रम्भा! तूने सुशील को गिराने के लिए क्या नहीं किया। तुझे स्मरण है कि तूने उसके सम्मुख अपने रूप का नंगा प्रदर्शन करने में भी हिचक नहीं की। तूने उसके साथ उतना बलात्कार किया जितना कोई स्त्री कर सकती है, किन्तु उसने अपने आपको कितना संभाल कर रखा। तूने उसको पुत्ररूप में पाया किन्तु फिर भी उसको मलिन दृष्टि से देखा। तूने उसको अपना शिक्षक बनाया, किन्तु फिर भी उसकी ओर तेरा दुर्भाव बदला नहीं। जहां तू उन दिनों में चौबिसों घंटे मैली आंखें लिए रही वहां उसकी आंखों में एक क्षण के लिए भी मैल नहीं आया। तूने उसको उन दिनों में चौबीस घंटों में एक क्षण भी पुत्र-रूप में नहीं देखा, किन्तु उसने तुझको उन दिनों में कभी एक क्षण के लिए भी माता से भिन्न किसी अन्य रूप में नहीं देखा। रम्भा, कहां तू और कहां सुशील? सुशील अमलिन होने पर भी अपना हृदय रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में यत्नपूर्वक निरन्तर धो रहा है, मानो उसको कोई मलिनता लग गई हो। किन्तु रम्भा, तू मलिनता में सनी हुई होने पर भी

अभी आत्म-शुद्धि के लिए चिन्तित तक नहीं है।'

रम्भा आगे सोचती,'किन्तु रम्भा, तेरी अन्तरात्मा उस समय कितनी काम-मूर्छित थी। तूने पति और पुत्र में कोई भेद नहीं किया। पति और पुत्र का भेद मूर्छित-आत्मा पशुओं में नहीं होता, तब तू मानो पशु थी। किन्तु नहीं, पशुओं में भी जोड़े होते हैं और उनमें आपस में बड़ी वफ़ादारी होती है। फिर रम्भा, पशु और मनुष्य में बड़ा भेद है। मनुष्य में विवेक होता है और पशु विवेकहीन होता है। यदि विवेकवान विवेकहीन का सा ही आचरण करे तो यह निसन्देह अत्यन्त लज्जा की बात है। किन्तु प्रकृति ने ही मनुष्य को इतना कामान्ध क्यों बनाया है? फिर यदि उसने मनुष्य को इतना कामान्ध बनाया था तो उसने अपनी ओर से ही ऐसी कोई मर्यादा क्यों न बना दी कि मनुष्य बिना प्रयत्न किए अनायास ही बुरे मार्ग पर अग्रसर होने से बच सकता। प्रकृति ने मनुष्य के सामने ये कुमार्ग क्यों खुले छोड़ दिए हैं? प्रकृति यदि सदाचार चाहती है तो उसको सदाचार की रक्षा के लिए स्वतः ही ऊंची मर्यादाएं बना देनी थीं जिनको पार करके मनुष्य का कुमार्ग पर जाना ही असम्भव हो जाता।'

अन्त में वह इस परिणाम पर पहुंची, 'किन्तु कदाचित प्रकृति तो दुराचारिणी है। वह किसी भी लोक-मर्यादा का लिहाज़ नहीं करती। उसकी दृष्टि में मनो लोक-मर्यादा है ही नहीं। लोक में पति और पत्नी के सम्बन्ध विशिष्ट हैं। लोक की मर्यादा है कि वे उन्हीं दोनों के बीच तक सीमित रहें। वे इसी को सदाचार कहते हैं और जहां यह मर्यादा टूटती है उनकी दृष्टि में वहां ही से दुराचार का आरम्भ होता है। प्रकृति केवल नर और मादा का ही भेद जानती है। वह इससे आगे नहीं बढ़ती। उसकी दृष्टि व्यभिचारिणी है। प्रकृति नर को किसी भी मादा से संभोग करने से नहीं रोकती और न किसी मादा को किसी नर से संभोग करने से रोकती है। यही कारण है कि पशु और पक्षी केवल नर और मादा का भेद मानते हैं। उनमें प्रत्येक नर का प्रत्येक मादा से पति और पत्नी का सम्बन्ध निहित है, किन्तु प्रकृति ने मानव को पशु

से भिन्न बनाया है । उसने मानव को विवेक दिया है जो लज्जा और लोक-मर्यादा की सीमाओं में मनुष्य को घेरना चाहता है। यदि मनुष्य को मनुष्य रहना है तो उसको इस विवेक का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

लेकिन रम्भा का ध्यान तुरन्त अपनी विशेष स्थिति की ओर और उसके पिता ने अवधबिहारीलाल के साथ उसका विवाह करके उसके प्रति जो अन्याय किया था उसकी ओर गया। इससे उसका रोष जाग्रत हुआ, लेकिन रोष किसके प्रति? क्या अपने पिता के प्रति? नहीं। उसने रम्भा के योग्य शिक्षित युवक-वर ढूंढने में कोई कमी नहीं की। लेकिन कोई भी पांच हज़ार नकद और दूसरी सब मांगों की पूर्ति से कम पर विवाह करने के लिए तैयार न होता था। रम्भा का पिता एक साधारण ज़मीदार था। उसकी स्थिति ऐसी न थी कि इतना दे सके। इस स्थिति में जब उसे एक मध्यस्थ की मार्फत अवधबिहारीलाल का प्रस्ताव मिला तो उसने उसे स्वीकार करके निश्चिन्तता लाभ की।

रम्भा जानती थी कि इसमें उसका कितना दोष था। लेकिन इसमें बड़ा दोष वह समाज का मानती थी। वह इसे भी पूंजीवादी व्यवस्था का एक अंग समझती थी। समाज में एक धनी है और एक निर्धन। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त करके निर्वाह के अच्छे साधन जुटा सकते हैं और कुछ अशिक्षित रह कर दरिद्रता का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होते हैं। इस स्थिति में प्रत्येक कन्या का पिता स्वभावतः अपनी कन्या के लिए पहिली श्रेणी में से ही वर प्राप्त करना चाहता है और इस प्रकार शिक्षित वरों का बाजार-भाव ऊंचा रहता है। इसके कुफल बेजोड़ विवाह होते हैं।

लेकिन वह इसके विनाश के लिए क्या कर सकती थी, यह बहुत सोचने पर भी उसके ध्यान में न आता था। अन्त में उसने स्थिर किया कि वह इसके लिये कुछ न कुछ अवश्य करेगी। वह अनुभव करती थी कि इस मार्ग का अवलम्बन करके ही उसके हृदय को शांति मिल सकती थी।

वह सुशील के रतनज्योति आश्रम को भी इसी दिशा में एक प्रयत्न

समझती थी। अतः जब उसने सुशील से इसका प्रस्ताव किया तब उसका लक्ष्य यही था, लेकिन सुशील ने उसकी बात स्वीकार नहीं की।

तब उसका ध्यान विगतपुर के क्रान्तिकारी महात्मा की शारदा कुटीर की ओर गया, जिसकी अखबारों में इतनी चर्चा थी। उसने तुरन्त लेखनी उठाई और एक पत्र क्रान्तिकारी महात्मा को लिख दिया। उसने उनको लिखा, "सेवा की प्यास है। क्या शारदा कुटीर में मेरे योग्य कोई सेवा है?"

(२०)

शारदा जंगल में होकर मेंह के पानी में पैरों से छप-छप आवाज़ करती हुई दूर निकल गई। सर्दी से उसकी घिग्घी बंध गई थी। उसके दांत कट-कट कर रहे थे, किन्तु वह नहीं जानती थी कि क्या करे और कहां जाए। चाहे कोई पागल हो या स्वस्थ मस्तिष्क का, जब उसको शीत और ग्रीष्म, हिम और आतप द्वन्द्व सताते हैं तो वह उनसे अपने शरीर की रक्षा अवश्य करना चाहता है। शारदा भी एक वृक्ष के नीचे ठहर गई। थोड़ी ही देर में मेंह बंद हो गया। तब फिर आगे को चल पड़ी। उसके पैरों में न जाने कहां से इतनी शक्ति आगई थी। पागल को अपने शरीर का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए उसको भय नहीं लगता। शारदा को भय नहीं लगा, तभी तो वह अपने घर से अंधेरे में चल पड़ी थी और इतना रास्ता तय कर आई थी।

शारदा सूरज निकलते-निकलते उस जंगल को पार कर गई और एक गांव के पास जा निकली। वहां एक पहाड़ी नाला बह रहा था। वह उसी के समीप बैठ गई। उसको कुछ होश आया। उसने आंखें फाड़-फाड़ कर इधर उधर देखा। उसको रोना आया, इसलिए वह रोने लगी। वह रोती रही, रोती रही। यहां तक कि उसकी आंखें लाल हो गईं। गांव के लोग एक अनजान स्त्री के रोने का शब्द सुनकर इकट्ठे होगए। उन्होंने देखा कि वह सोने के कड़े पहिने है और उसके कपड़े अच्छे हैं। उन्होंने समझ लिया कि वह अवश्य ही किसी भले घर की स्त्री है, किन्तु उसको अपने शरीर का कोई ज्ञान न था। उन्होंने उसको

पूछा कि वह कौन है। किन्तु वह बोली ही नहीं। फिर वह हंसने लगी और कुछ बड़बड़ाने लगी। लोगों ने समझ लिया कि वह पागल हो गई है। लड़कों ने शोर मचाया, 'पगली है, पगली है,' किन्तु समझदार लोगों ने डांट दिया, 'देखते नहीं, किसी बड़े घर की स्त्री है, उसके घर के लोग उसको अवश्य ढूंढ रहे होंगे। पुलिस में रपटें-झपटें होंगी। अभी घबरा कर किसी कुँए वग़ैरा में गिर कर जान दे दी तो बंधे फिरोगे।' एक, ने कहा, "इसको थाने में पहुँचा दो।" दूसरे ने कहा, "नहीं, पुलिस वाले बड़े बदकार होते हैं। वे इसके सोने के कड़ूले भी छीन लेंगे और इसे परेशान करेंगे।" तीसरे ने कहा, "इसे आज गांव में ही रहने दो, इसको खाना दे दो और शान्ति से धर्मशाला पर ही बैठने दो। कदाचित इसके पीछे खोज लगाते हुए इसके सगे-सम्बन्धी आते होंगे। देखो तो बेचारी के सब कपड़े भीगे हैं। कदाचित सारी रात भीगती ही रही है। इसको एक सूखी धोती ला दो जिसको पहिन कर यह इसको धोले।" चौथे ने कहा, "आप भी क्या बात करते हैं? अगर उसको धोती धोने और बांधने का होश होता तो वह क्या अपने घर से चली आती। इसको कोई कुछ न कहो। शायद यह भूखी है। इसलिए इसको खाना तो खिला दो।"

एक लड़का झट से दौड़ा गया और एक लोटे में कुएं का साफ़ और ठंडा पानी और ताज़ी रोटियां ले आया। उन्हीं पर कुछ शाक रख लाया। शारदा बहुत भूखी थी। उसने नाले में हाथ धोए और रोटियां ले लीं। वह एक ओर को मुँह करके धीरे-धीरे खाने लगी।

लोगों ने कहा, "इसको इतना होश तो है। वह जानती है कि किस तरह खाना चाहिए। वह खाना लेने से पहिले हाथ धोना भी तो नहीं भूली। यदि इसका ठीक इलाज कराया जाय तो यह जल्दी ही ठीक हो सकती है।"

एक युवक ने कहा, "इसको रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में क्यों न पहुंचा दियाँ जाए। वहां तो स्त्रियों का भी इलाज होता है।"

सबने कहा, "हां यह ठीक है।"

एक ने कहा, "आज मेरी गाड़ी मधुवनी को जा रही है। अगर यह उसमें बैठ जाए तो इसको आज ही मैं रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में पहुंचा दूं।"

लोगों ने कहा, "बेचारी दुखिया है। न जानें, इस पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी जिससे यह पागल हो गई है। देखो तो, अभी बेचारी की कोई ज्यादा उम्र भी नहीं है। चिन्ताओं में शरीर घुल गया है। लेकिन फिर भी कितनी सुन्दर लगती है। शरीर अब भी सोने सा दमकता है। हाथ, पैर, नाक, कान और शरीर के सभी अंगों की बनावट अत्यन्त सुन्दर है। अवश्य ही किसी बहुत ऊंचे और पुराने कुल की है।"

शारदा खाना खाकर हंसने लग गई। फिर उसने गाया, 'मीरा तो भई प्रेम दीवानी, गिरधर के गुण गाना रे।' वह अपनी जगह से उठी और एक ओर को कच्चे रास्ते पर चल दी। लोगों ने कहा, "अरे, यह तो चल दी।"

एक ने कहा, "अरे जाती है तो जाने भी दो। किन्तु इसके साथ कुछ दूर जाना चाहिए और अगर यह रतनज्योति की ओर जा सके तो इसको वहां पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिए। भय है कि सोने के कड़ूलों के लोभ से इसको कोई कहीं मार न डाले। यदि यह सेवा-केन्द्र में पहुंच जाएगी तो वहां इसकी जान भी सुरक्षित हो जाएगी और इसका इलाज भी हो जाएगा।" निदान दो युवक उसी ओर पगली के साथ चल दिए।

शारदा ने नाले को घुस कर पार किया। वह उसमें से गोल पत्थर उठा-उठा कर उन्हें अपनी साड़ी के पल्ले में बांधने लगी। युवक भयभीत हुए कि वह कहीं उन्हें ही पत्थर न मार दे। किन्तु नहीं, उसने ऐसा नहीं किया। उसने अपने पल्ले में भरे हुए पत्थर एक-एक करके फिर नाले में फेंक दिए और जब गहरे पानी में उनके गिरने से गड्ड-गड्ड शब्द हुआ तो वह हंसने लगी। उसका गाना अभी जारी था, 'मीरा तो भई प्रेम दीवानी, गोविन्द के गुण गाना रे।' फिर वह कुछ और आगे को बढ़ी।

उसने देखा कि नाले के किनारे पर नीली बालू पड़ी है। उसने उसमें से बालू ले लेकर उससे खेलना आरम्भ किया। वह उसी के खेल में मस्त हो गई। वह बालू को हाथों में भर-भर कर बरसाने लगी, फिर उसमें से मुट्ठियां भर-भर कर अपने शरीर पर ही डालने लगी। बालू के कण उसके बालों में भर गए। तब वह फिर गाने लगी और पहिले से भी ज़्यादा मीठे, करुण और मस्त स्वर में गाने लगी—'रेती में बंगला छीवाना महाराज, आए लहर गंगा की।'

युवक उसको देख कर कहने लगे, "यह रतनज्योति तक ऐसे कितने दिन में पहुँचेगी।" उन्होंने उसका हाथ पकड़कर कहा, "चलो उठो, तुम्हारा नाम क्या है?"

शारदा ने कहा, "मेरा नाम, हा-हा! आप मेरा नाम पूछते हैं? मेरा नाम है पगली। आप देखते नहीं हैं कि मैं पगली हूँ। पगली का नाम सभी पगली रखते हैं। भला, पगली का भी कोई नाम पूछता है?"

युवकों ने कहा, "चलो, यह बोली तो सही।"

शारदा का मस्तिष्क अब कुछ शान्त था। उसने कहा, "यह बताइए कि आपने कहीं एक पागल देखा है?" वह फिर हंसने लगी।

युवकों ने कहा, "शायद इसका आदमी कहीं खो गया है। तभी तो यह ऐसी बात पूछती है।" उन्होंने उसको कहा, "हां, देखा है। चलो हमारे साथ, हम बताएंगे।"

शारदा उठकर तुरंत खड़ी हो गई और गम्भीर होकर आगे-आगे चल दी। फिर उसने अपने हाथों के कड़ूले उतार डाले और एक-एक दोनों के हाथों में देकर कहा, "आप उनका पता लगा दीजिए। उन्हें लोग रमाशंकर कहते हैं। हां, वे मेरे पति हैं और पागल हो गए हैं। यदि आप यह कार्य कर देंगे तो आप मेरे ऊपर बड़ी कृपा करेंगे। मैं पागल नहीं हूं। मैं उन्हीं को ढूंढ़ना चाहती हूँ। मेरा मस्तिष्क खराब है, यह सही है; लेकिन यह चिन्ता से खराब हो गया है, पागलपन से नहीं। मैं ठीक हो जाऊंगी, किन्तु यदि मेरे पति मुझे मिल जाएं तो मैं तुरंत ही ठीक हो

जाऊंगी, क्योंकि तब मुझको कोई चिन्ता न रहेगी।"

दोनों युवकों ने कहा, "यह अब तो बड़े होश की बातें करती है। निश्चय ही इसका पति कहीं चला गया है।"

उन्होंने शारदा को कहा, "बहिन, तुम अपने कड़े पहिने रहो। ये तो तुम्हारे हैं। इन्हें तुम किसी को न देना। तुमको हम रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में पहुंचाए देते हैं। वहां तुम अवश्य ठीक हो जाओगी।"

शारदा ने कहा, "मैं तो ठीक हूं, किन्तु कभी-कभी मुझको होश नहीं रहता।" यह कह कर वह फिर रोने लगी। उसके बाद वह फिर कुछ होश में आई तो गाने लगी, 'मीरा तो भई प्रेम दीवानी, गोविन्द के गुण गाना रे।'

इसी प्रकार कभी होश में बातें करती हुई और कभी रोती और हंसती हुई वह युवकों के साथ रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में पहुँच गई। केशिनी ने बड़े प्रेम से शारदा का स्वागत किया। शारदा को भी सेवा-केन्द्र में असीम शान्ति का अनुभव हुआ। केशिनी ने शारदा को कुंए के पास स्नानागार में ले जाकर फुहार-स्नान कराया और फिर सूखे और साफ़ धुले तौलिए से उसका शरीर पोंछकर उसको खादी की साफ़ साड़ी पहिनाई। उसने शारदा की साड़ी स्वयं ही धोने को उठाई, किन्तु शारदा को इतना होश तो था। उसने अपनी उतरी धोती उसको नहीं धोने दी, बल्कि अपने हाथों से स्वयं ही धोई। उस दिन शारदा भोजन करके एक एकान्त कुटीर में शान्ति से सो गई और कई घंटे सो कर तब जगी। वह पिछली रात में इतनी लम्बी यात्रा कर चुकी थी और दिन में भी वह काफ़ी दूरी तय कर आई थी। उसने पहिले इतनी लम्बी यात्रा पैदल कभी नहीं की थी। इससे उसके सब अंगों में मीठा-मीठा दर्द हो रहा था। वह सायंकाल को सूर्यास्त से कुछ पहिले उठी। केशिनी ने उसके समीप आकर उसको हाथ-मुँह धोने के लिए जल दिया। उसके बाद जब शारदा कुछ स्वस्थ हुई तो वह उसको बाग में ले गई और वहां उसको एक क्यारी में गुलाब के फूलों के बीच में बिठा दिया। वह स्वयं भी उसी स्थान में

बैठ गई और उससे बातें करने लगी। किन्तु केशिनी ने उससे उसके स्वयं के बारे में कुछ न पूछा, क्योंकि डाक्टर की सख्त हिदायत थी कि रोगी को उसके सम्बन्ध में कुछ न पूछा जाए। रोगी को अकेला भी न छोड़ा जाए। जाग्रत अवस्था में उसके पास केशिनी निरन्तर रहेगी। केशिनी का यह विशेष कार्य बना दिया गया था कि हर समय शारदा को प्राकृतिक सौन्दर्य दिखाया जाए और शान्त रखा जाए, उससे अधिक बातें न की जाएं और की भी जाएं तो बहुत ही धीरे से की जाएं जिससे शारदा के मस्तिष्क पर कोई ज़ोर न पड़े।

किन्तु केशिनी के पूरी सावधानी रखने पर भी शारदा कई बार बहकी-बहकी बातें कर उठती। उनसे यह प्रकट हो गया कि शारदा के चित्त पर किन बातों ने प्रभाव डाला है। डाक्टर भारती को विश्वास था कि शारदा अवश्य ठीक हो जाएगी। वह बहुत कुछ स्वस्थ हो गई थी और उसकी शारीरिक दुर्बलता अब लगभग जाती रही थी। लेकिन फिर भी वह गाती रहती अपने पागलपन के गीत, 'मीरा तो भई प्रेम दिवानी गिरधर के गुण गाना रे।'

{२१}

रम्भा को क्रान्तिकारी महात्मा का पत्र मिल गया था। उन्होंने लिखा था, 'निर्धनता को मिटाने में यदि आपका विश्वास हो तो कुटीर में आपके लिए सेवा मिल सकती है। इस संसार के सब दुखों का मूल यह निर्धनता है। कुटीर की नींव इस निर्धनता के नाश पर रखी गई है। क्या आप अपनी सम्पत्ति का उपयोग अपने कर्तव्य की पूर्ति में करने के लिए तैयार हैं? यदि हां तो ऐसी सच्ची आदर्शवादी स्त्री के लिए मेरी कुटीर के द्वार चौबीस घंटे खुले हैं। यहां हमें केवल स्वप्नदर्शी आदर्शवादी नहीं चाहिएं, उन आदर्शों पर कठोरतापूर्वक अमल करने वाले चाहिएं।"

क्रान्तिकारी बाबा ऐसी कठोर कसौटी रखते हैं, यह बात रम्भा को ज्ञात न थी, अतः उसके सम्मुख समस्या आगई कि अब वह क्या करे। वह अपनी सम्पत्ति का उपयोग निर्धनता के नाश में किस प्रकार करे? निस्सन्देह यह प्रश्न उसके लिए कठिन था। यह मार्ग उसने देखा तो कभी था नहीं। ये तो सिर मुँडाते ही ओले पड़ रहे थे। उसने सोचा, 'यदि मैं आज जोश में आकर अपनी सब जायदाद कुटीर के सिपुर्द कर दूं और कल मेरे विचार बदल जाएं तब मेरे सम्मुख बड़ी कठिनता आ सकती है।'

अन्त में रम्भा ने निश्चय किया कि वह अभी क्रान्तिकारी महात्मा की कुटीर में नहीं जाएगी, लेकिन जब उसने वही पत्र शीला को दिखाया तो शीला ने कहा, "यह काम मैं करूंगी। आप क्रान्तिकारी महात्मा की

कुटीर में नहीं जा सकतीं, किन्तु मैं जाती हूं। मैं समझती हूं कि मैं उनके आदर्शों पर चल सकूंगी।"

निदान शीला विगतपुर की कुटीर में चली आई और इसके लिए उसने सुशील की अनुमति लेनी भी आवश्यक नहीं समझी।

शारदा-कुटीर का नाम शारदा ने भी सुना, किन्तु उसकी समझ में नहीं आया कि उसका पागल पति ही क्रान्तिकारी महात्मा हो सकता है। जब शीला वहां पहुँच गई तो उसने सुशील को पत्र लिखा कि उसने किस प्रकार अपने जीवन का मार्ग बदल डाला है। शीला के दो बच्चे थे। एक रमेश और दूसरी उमा। उनको शीला अपनी सास के पास ही छोड़ गई। वे पटना में हाई स्कूल में पढ़ते थे। अब घर में केवल ये दो बालक ही थे। सबका ध्यान उनके ठीक पालन-पोषण की ओर था। मनोरमा भी अपना समय उन्हीं की देखभाल में लगाती और अब रम्भा के लिए भी क्या काम रह गया था? किन्तु फिर भी रम्भा घर में चुप नहीं बैठी थी। वह भी कोई सेवा-कार्य आरम्भ करने की धुन में थी। वह सोचती थी कि जब शीला क्रान्तिकारी बाबा की कुटीर में जा सकती है और उनके आदर्शों का पालन कर सकती है तब रम्भा क्या दुनिया में कोई कष्ट उठाने के योग्य ही नहीं है। उसने स्थिर किया कि वह अपनी ज़मींदारी के गांव काशीपुर में अपना सेवा-कार्य आरम्भ करेगी। उसने गांव में अपना अड्डा जमाया और मनोरमा शहर में अकेली छोड़ दी। रम्भा ने एक महिला-कुटीर बनाई और उसके द्वारा स्त्रियों की सेवा आरम्भ की। उसका कार्यक्रम सुशील से मिलता जुलता था। किन्तु उसके पास सुशील के जैसे साधन नहीं थे। उसके पास ऐसा कोई डाक्टर न था जिसको औषधियों का ज्ञान हो, जो मरहम-पट्टी कर सके और उसका कार्य स्त्रियों में था। स्त्री रोगियों को साधारण दवाएं बांटना और गांव की लड़कियों को पढ़ाना, ये दो उसके कार्यक्रम के अंग थे। रात को. उसकी कुटीर में गांव की स्त्रियां आतीं, उनको वह 'सेवा' अखबार पढ़ कर सुनाती। कभी वह उनको ज्ञानवर्धक कहानी सुनाती और दुनिया के दूसरे देशों की

उन्नत स्त्रियों की उन्नति के कारण समझाती। संक्षेप में उसके लिए इतना कार्य पर्याप्त था और इससे अधिक महत्वाकांक्षा उसमें थी नहीं।

महिला-कुटीर गांव के पास ही एक बगीचे में थी। उसमें कई खिड़कियों और दर्वाजों का केवल एक लम्बा कमरा था और उसके सामने एक झौंपड़ी थी जो कच्ची ईंटों की दीवारों पर छप्पर डाल कर बनाई गई थी। रम्भा स्वयं इसी झौंपड़ी में रहती थी। वह जब लड़कियों को पढ़ाती और रात को स्त्रियों को अखबार और पुस्तकों से बातें सुनाती तो उस लम्बे कमरे को ही खोल कर बैठती। उसने लड़कियों की सहायता से बाग़ में तरह-तरह के फूल लगा रखे थे और एक माली फलदार पेड़ों की काट-छांट और खोद-पीट करता रहता था। पौधों को पानी पिलाना उसी के ज़िम्मे था। इसके अतिरिक्त कुटीर की सफ़ाई, लिपाई, पुताई और छप्परों की मरम्मत, रम्भा की गाय का चारा-पानी करना और दूध निकालना उसी के काम थे।

स्कूल की लड़कियां पढ़ने के अतिरिक्त कपड़े काटने-छांटने और सीने, बुनने, और घरेलू काम-काज करने की व्यावहारिक शिक्षा पाती थीं। रम्भा के पास गांव की स्त्रियों और बालकों के कपड़े आजाते। रम्भा उनको काटती और अपने सामने लड़कियों से कटवाती और फिर उनको सिलवाती थी। इस प्रकार गांव की स्त्रियों को बिना दर्जी को पैसा दिए ही सिले हुए कपड़े मिल जाते। फिर गांव की स्त्रियां स्वयं भी उसके पास अपना कपड़ा ले आतीं। रम्भा उनको काट-छांट कर बता देती और मशीन पर उन्हीं के हाथों से उसको निकलवाती, ताकि उनमें उसके बाद दूसरा कपड़ा स्वयं सीने का साहस उत्पन्न हो।

गांव में बच्चों की हारी-बीमारी के लिए रम्भा ही डाक्टर थी। वह बच्चों के साधारण रोगों को जानती थी। फिर वह इस विषय के व्यावहारिक ज्ञान की पुस्तकें पढ़ती रहती थी। उसने मरहम पट्टी और ओषधि-प्रयोग का साधारण सा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसके इस ज्ञान से बालकों की चिकित्सा में गांव के लोगों को बड़ी सहायता मिलती। रम्भा जब देखती

कि कोई रोग बहुत अधिक बढ़ गया है तो वह उसके लिए डाक्टर या वैद्य लाने की तुरंत अनुमति देती। कुटीर का खर्च गांव की जमींदारी की आमदनी से ही चलता था। इस प्रकार रम्भा ने अपने जीवन का एक शान्तिपूर्ण कार्यक्रम ढूंढ लिया था।

अब रम्भा का हृदय शान्त था। रम्भा अनुभव करती थी कि सेवा से उसके जीवन का कोई उपयोग हो रहा है। वह अब अमीरी जीवन से हट गई थी। उसने जबसे कुटीर में अपने काते हुए सूत की साड़ी पहिनने का नियम लिया तब से उसको यह भान होता था कि अब उसमें और गांव के मजदूरों और किसानों की स्त्रियों में कोई अन्तर नहीं रहा है। वे परिश्रम करती हैं तो वह भी परिश्रम करती थी। वह अपने समय का कोई भी भाग व्यर्थ नहीं खोती थी। वह सीधा-सादा ग्रामीणों के समान ही खाना खाती थी और उनके समान ही सीधे-सादे कपड़े पहिनती थी। फिर उसमें और ग्रामीणों में अन्तर कहां था? अब उसके जीवन में अमीरी कहां थी?

अमीरी जीवन में दोष क्या है यह रम्भा जानती थी। वह जानती थी कि अमीरी जीवन विलासिता का जीवन होता है। उसमें धनिक अपने परिश्रम का कमाया हुआ अन्न खाने के बजाय दूसरों के परिश्रम का कमाया हुआ अन्न खाते हैं। यदि हम यह बात समझ लें कि सम्पत्ति कहां से आती है तो हम यह जान जाएं कि वास्तव में सम्पत्ति अपने शरीरों का खून और पसीना एक कर देने वाले श्रमी लोगों की अर्जित वस्तु है। किन्तु उसको कुछ बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति उनसे छीन लेते हैं। वास्तव में यह अन्याय है, किन्तु सामाजिक कानूनों ने उसको न्याय का रूप दे रखा है। रम्भा की सम्पति कहां से आई थी? क्या वह रम्भा ने स्वयं कमाई थी? नहीं। वह रम्भा की अपने श्रम की अर्जित वस्तु न थी। फिर रम्भा को यह अधिकार किसने दिया कि वह उसको अपने पटना के विलास-भवनों में बैठकर भोगती रहे। उसको यह अधिकार किसने दिया कि जो सम्पत्ति उसकी अपनी अर्जित की हुई नहीं थी वह उसको अमीरी

जीवन की अपनी बेहद ख़र्चीली आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यय करे। यह समाज अन्धा है जो श्रमिकों की अर्जित वस्तु का उपयोग इस प्रकार के निकम्मे लोगों को करने देता है।

किन्तु आप कहेंगे कि रम्भा अवधबिहारीलाल की विवाहिता पत्नी थी। उसको अपने पति की सम्पत्ति पर अधिकार था। रम्भा स्वयं यह बात जानती थी, किन्तु अब स्वयं उसके अन्तरात्मा का यह फैसला था कि उसके पति की जायदाद किसानों के परिश्रम का फल है। यह ठीक है कि उसके पति ने उसको अपने श्रम से अर्जित किया था, किन्तु जो असली अर्जन करने वाले श्रमिक हैं उनको उत्पत्ति का बहुत थोड़ा भाग मिले और एक चालाक व्यक्ति बहुत थोड़ा श्रम करके उस उत्पत्ति का बहुत बड़ा भाग ले जाए, यह तो बड़ा अन्याय है। फिर उत्पत्ति के साधनों पर स्थायी अधिकार कर लेना तो और भी अधिक बड़ा अन्याय है। रम्भा ने यही सोच समझ कर यह सेवा का मार्ग चुना था। इससे दो लाभ थे। एक तो वह स्वयं उस उत्पत्ति का जितना भाग अपने ऊपर खर्च करती थी वह उसके श्रम का शुद्ध फल था और दूसरे किसानों के श्रम की उत्पत्ति का एक भाग फिर उन्हीं को कुटीर से प्राप्त सहायता के रूप में वापिस मिल जाता था।

रम्भा की महिला-कुटीर क्या थी? वह क्रान्ति के बाद नवयुग की प्रतीक थी। वह इस बात की सूचक थी कि अमीरी जीवन अब किस दिशा में प्रवाहित होगा और अमीरों की सम्पत्ति का शुद्ध उपयोग क्या है। रम्भा काशीपुर की ज़मींदारी के एक भाग की मालिकिन थी और यह उसके अपने भाग की आय का उपयोग था, किन्तु उसकी पूरी आय कुटीर में ही व्यय नहीं होती थी। उसमें से एक बहुत बड़ा हिस्सा बचता था जिससे उसने किसानों को बिना ब्याज ऋण देना आरम्भ कर दिया था, किन्तु वह ऋण केवल उत्पादक कार्यों के लिए ही दिया जाता था। खेती के लिए औज़ार, खाद, पानी की व्यवस्था, नई बंजर भूमि की सफ़ाई, बंजर में उपयोगी पेड़ लगाने आदि कार्यों के लिए उसके पास

पर्याप्त रुपया संचित था। इसमें से वह गरीबों को एक भाग सहायता के रूप में दे देती थी और उसको कभी वापिस नहीं मांगती थी। इससे किसानों की अवस्था में काफ़ी सुधार हुआ था।

रम्भा ने किसानों को बताया कि दिन और रात परिश्रम करके सरकारी लगान चुकाना और महाजन का क़र्ज़ देना किसानों के जीवन का कार्य-क्रम नहीं होना चाहिए। उनको अपने जीवन की उपयोगी वस्तुएं खेतों में उगानी चाहिएं। उनको फलों के वृक्ष लगाने चाहिएं, शाक सबजियां खूब बोनी चाहिएं और दूध के पशु रखने चाहिएं। किसानों को अपने और बालकों के स्वास्थ्य और सुख को ध्यान में रखना चाहिए। क़र्ज़दार बनना बुरा है, लेकिन जिस कर्ज़े से आय बढ़ती हो वह कर्ज़ बुरा नहीं होता।

---

(२२)

मनुष्य चाहे कितना ही परिवर्तित हो जाए, किन्तु उसके संस्कार बीज रूप में उसमें सोते रहते हैं। जब उनको अनुकूल ऋतु में मेंह का पानी और आवश्यक गर्मी मिलती है तो उनमें फिर अंकुर फूट निकलते हैं। रम्भा ने सेवा-मार्ग पर अपना पग आगे बढ़ाया था, यह सही है; लेकिन रम्भा को कुछ काल व्यतीत हो जाने पर अनुभव हुआ कि उसका जीवन कुछ नीरस सा हो चला है। कुटीर में वही शान्ति अब भी थी जो पहिले थी। किसी भी बात में कोई अन्तर नहीं आया था, किन्तु स्वयं रम्भा का मन बदल रहा था। उसको बार-बार यह इच्छा होती कि सुशील उसके पास कुटीर में आकर रहे। वह एक बार नैतिक खड्ड में बहुत नीची उतर गई थी, किन्तु वह वहां से भी जीवित बच आई थी। उसके बाद उसमें परिवर्तन हुआ और सेवा की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने सेवा की पगदंडी भी ढूंढ ली, किन्तु इस सूनी पगदंडी पर उसका मन लगता न था। उसको तो राजमार्ग के तुमुल-रव में अपना अमीरी का रथ चलाने का स्वभाव था। जिस स्त्री ने एक अमीर घर में उच्छृंखलतापूर्वक हंसते और मनोविनोद करते हुए अपना स्वभाव बिगाड़ लिया हो उसको एकान्त वास की फीकी गम्भीरता कैसी लगेगी, इसका अनुमान किया जा सकता है। शीघ्र ही उसको इस बात का पता चल गया कि इस पुनीत पगदंडी पर चलने के लिए भी कोई साथी चाहिए। बिना किसी साथी के उसका मन स्थिर होना असम्भव था।

अन्त में उसने स्थिर किया कि वह सुशील को ही यहां आने के लिए

कहेगी। यहां वह अपनी ज़मींदारी का कार्य भी तो देख सकेगा। फिर वह काशीपुर के किसानों के श्रम की अर्जित सम्पत्ति को एक दूसरे ही क्षेत्र में व्यय कर रहा है, यह उचित नहीं है। उसने सुशील को अत्यन्त आग्रहपूर्ण पत्र लिखा, क्योंकि वह जानती थी कि सुशील सीधे-सादे बुलावे से काशीपुर में आने वाला नहीं है। उसने यह सोचा था कि यदि सुशील एक बार यहां आकर उससे मिल जाए तो वह उसको यहां रहने के लिए मना लेगी। उसने पत्र में लिखा, "अवश्य आना।"

सुशील को रम्भा का यह पत्र मिला, तो उसने सोचा कि अब उसको रम्भा के पास जाने में किसी अनर्थ का भय नहीं है, क्योंकि रम्भा अब बहुत बदल गई है। और वास्तव में पहिली रम्भा अब जीवित नहीं थी, किन्तु रम्भा की जो मनोदशा अब थी उससे तो यही प्रतीत होता था मानो पहिली रम्भा ही फिर जीवित होना चाहती है। सेवा-कुटीर में सुशील के साथ रहने की इच्छा पवित्र हो सकती थी, किन्तु जो कुछ कुछ समय पूर्व घटित हो चुका था उसको ध्यान में रखते हुए सुशील का कुटीर में रहना कम खतरनाक न था। उसमें बहुत बड़ा जोखम भरा हुआ था। कहते हैं कि सांप यदि भली भांति न मारा जाए तो उसमें पुर्वा हवा से प्राण फिर सबल हो जाते हैं और वह फिर पूर्ववत गति करने लगता है। रम्भा के हृदय में काम-विकार का सांप भली भांति नहीं मारा गया था, इसलिए वह उसके हृदय में फिर जीवित हो उठा।

काम-विकार अमीरी जीवन में अधिक सताता है यह बात एक सीमा तक सही है; लेकिन जन-सेवक के सीधे-सादे जीवन में भी वह रह-रह कर जाग उठता है। उस समय उसको लोक-लज्जा के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु पतन के फिसलने वाले मार्ग पर पग रखने से नहीं रोक सकती। यदि लोग यह बात जान जाएंगे तो बड़ी लोक-निन्दा होगी और उसकी सब प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी, यह ख़याल कितनी ही बार समझदार जन-सेवक को पतन से बचा लेता है। किन्तु जिसकी प्रज्ञा काम-भाव से आवृत होजाती है वह विवेक खो बैठता है और अंधों की भांति आचारण

करता है, इसलिए जन-सेवक को भी इस सम्बन्ध में प्रति क्षण जागरूक रहने की आवश्यकता होती है ।

सुशील काशीपुर आया । वहां रम्भा ने उसको भली भांति ठहराया । उसने कहा, "आज तो यहां ही रहो ।"

सुशील ने कहा, "सेवा-केन्द्र में आजकल काम बहुत है । अकेले भारती सब काम नहीं कर सकते । फालतू आदमी रखना सार्वजनिक धन का दुरुपयोग प्रतीत होता है । उसकी आत्मा स्वीकार नहीं करती । इस स्थिति में मेरा रतनज्योति से अधिक अलग रहना सम्भव नहीं है । यदि आप आवश्यक बातें आज ही पूरी कर लें तो मैं रात की गाड़ी से वापिस चला जाऊं ।"

रम्भा ने कहा, "मनुष्य को निरन्तर कार्य करने के लिए बीच में थोड़ा विश्राम भी तो करना चाहिए । वह कार्य की भांति ही महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यदि विश्राम न किया जाय तो फिर कार्य को क्षति पहुंचती है ।"

सुशील ने कहा, "यह तो सही है, किन्तु हम नित्य ही श्रम करते हैं और उसके बाद जितना विश्राम आवश्यक होता है उतना विश्राम नित्य ही ले लेते हैं ।"

रम्भा ने कहा, "लेकिन नित्य के विश्राम के बाद भी मनुष्य ऊब जाता है और उसको कभी कभी दैनिक विश्राम से लम्बा विश्राम लेने की आवश्यकता होती है । क्या तुम यहां दो दिन नहीं ठहर सकते ?"

सुशील ने कहा, "केवल विश्राम के लिए नहीं । यदि मेरी सेवा आवश्यक हो तो वह मैं प्रसन्नता के साथ दूंगा और उसके लिए दिया हुआ समय मुझे नहीं अखरेगा ।"

रम्भा अधीर हो गई । सुशील को वह किस प्रकार काशीपुर में रहने के लिए समझाती, जब वह दो दिन ठहरना भी स्वीकार नहीं कर रहा था ।

अन्त में रम्भा ने कहा, "जब तुम इतना भी नहीं ठहरना चाहते थे तो फिर यहां आए क्यों थे ? यह तो सोचना था कि यहां कुछ कार्य होगा तभी तो बुलाया है ।"

सुशील ने कहा, "लेकिन मौसी जी, आप व्यर्थ ही मुझ पर नाराज़ हो रही हैं। मैंने यह कब कहा कि मैं नहीं ठहरूंगा। मैंने तो कहा कि यदि मेरे ठहरने की आवश्यकता है तो मैं यहां अवश्य ठहरूंगा।"

रम्भा ने कहा, "अच्छा, पहिले नहाओ-धोओ और खाना खाओ। उसके बाद रात को स्त्रियों का कार्यक्रम समाप्त होने पर हम बातें करेंगे।"

सुशील ने ऐसा ही किया। दिन में उसने गांव के लोगों से बातें कीं। वह इतना बड़ा होने पर भी गांव में केवल एक बार आया था। जब तक अवधबिहारीलाल जीते थे तब तक वे ज़मींदारी का काम-काज देखते पर उसके बाद जब उनका देहान्त हो गया तब उनका रखा हुआ विश्वस्त कारिन्दा ही सारा काम-काज करता था। उसका सहयोगी कारिन्दा भी पुराना ही था। सुशील ने दिन में यह कार्य पूरा कर लिया।

सायंकाल के भोजन के बाद सुशील रम्भा की छप्परदार झोंपड़ी में लेट गया। उसके सोने का प्रबन्ध उसी में था। जब रम्भा अपना स्त्रियों के शिक्षण का कार्य समाप्त कर चुकी तो वह सुशील के पास आई। एक छोटी साफ़ लालटेन खिड़की के पास मेज़ पर प्रकाश दे रही थी। सुशील उसके प्रकाश में आज का 'सेवा' अखबार पढ़ रहा था। उसका ध्यान एक खबर में लग गया था। खबर यह थी, 'शारदा-कुटीर विगतपुर में ग्रीष्म की छुट्टियों में विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के वर्ग लगेंगे। तीन हफ्ते तक शिक्षण चलेगा। शिक्षार्थी प्रार्थनापत्र भेज दें। सार्वजनिक कार्यकर्ता भी आ सकते हैं।' वह सोच रहा था, 'शारदा-कुटीर का नाम बहुत दिनों से सुना है। क्रान्तिकारी महात्मा को लोग बड़ा विलक्षण पुरुष बताते हैं। इन गर्मियों में वहां क्यों न चला जाए। अवश्य ही कुछ न कुछ लाभ होगा।' वह रम्भा के आने पर भी थोड़ी देर चुप रहा। फिर उसने कहा, "आपका काम खत्म हो गया।"

रम्भा ने कहा, "हां, लेकिन तुम्हारा अखबार तो खत्म हो जाए।"

सुशील ने कहा, "यह लीजिए। इसको उस मेज़ पर रख दीजिए और अपनी बात कहिए।"

रम्भा ने कहा, "सुशील, अब सारी बात तुमको कहती हूँ। अब मेरे हृदय में तुम्हारे लिए कोई पाप भाव नहीं है, फिर भी तुम्हारी याद मुझको निरन्तर बनी रहती है। मैं कह नहीं सकती कि इस अत्यन्त प्रबल आकर्षण का कारण क्या है। बस इतना ही जानती हूं कि मेरी बड़ी प्रबल इच्छा तुमको प्रति क्षण अपनी आंखों के सम्मुख देखते रहने की होती है। मैं नहीं जानती, सुशील, कि मुझको तुमसे इतना प्रेम क्यों होगया है?"

सुशील ने कहा, "मौसी जी, आप फिर अपने स्थान से बह रही हैं। आप जानती हैं कि मैंने पटना से हटने के लिए रतनज्योति में सेवा-केन्द्र खोला। वहां मुझे शान्ति है। आप मेरी उस शान्ति में फिर विघ्न बनना चाहती हैं। जब आपने यहां काशीपुर में महिला-केन्द्र खोला है तब आप इसे चलाइए। महिला-केन्द्र में तो आपकी जैसी स्त्री काफ़ी काम कर सकती है और आपका काम काफ़ी अच्छा है भी। फिर आपका मन यहां क्यों नहीं लगता? यहां आपका मन अवश्य लगना चाहिए। अगर आप अधिक चाहतीं हैं तो मैं आपको केशिनी को दे सकता हूं।"

रम्भा ने कहा, "मुझे केशिनी नहीं चाहिए। मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। तुम्हारे साथ मेरा मन कार्य में अधिक लगेगा।"

सुशील ने कहा, "लेकिन मौसी जी, मैं अब रतनज्योति के सेवा-केन्द्र को नहीं छोड़ सकता।"

रम्भा ने कहा, "तब सुशील, मैं रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में रहूंगी। केशिनी काशीपुर में रह सकती है।"

सुशील ने कहा, "यदि वह स्वीकार कर ले तो, लेकिन उसको यह बात मैं नहीं पूछूंगा, आप ही पूछेंगी।"

रम्भा ने कहा, "मैं ही पूछ लूंगी, इसके लिए कल ही मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।"

सुशील ने हां कर दिया और मामला तय हो गया।

उस दिन सुशील को बहुत देर तक नींद नहीं आई। वह चारपाई में पड़ा-पड़ा यह सोचता रहा कि इस परिवर्तन का क्या परिणाम हो सकता

है। अन्त में उसने स्थिर किया कि इसमें भी कोई हर्ज नहीं है। उसकी मौसी में यदि कुछ कमी होगी तो वह सेवा-केन्द्र में दूर हो जाएगी। सेवा-केन्द्र का वातावरण ही ऐसा है। वहां अपने-अपने कार्य से ही किसी को अवकाश नहीं होगा।

जहां सुशील के हृदय में इस ओर एक प्रकार की उथल-पुथल मची हुई थी वहां रम्भा का हृदय शान्त था। उसको यह अनुभव हो रहा था कि उसके जीवन में यहां जो एकाकीपन आगया था वह वहां मिट जाएगा।

केशिनी को रम्भा ने जब काशीपुर में ठहरने के लिए कहा तो उसने आज्ञाकारिणी पुत्रवधू की भांति उत्तर दिया, "माता जी की आज्ञा का पालन करने में मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? आपने सुशील बाबू के द्वारा कहला दिया होता तो मैं चली आती।"

केशिनी काशीपुर चली गई और रम्भा रतनज्योति में पहुँच गई। उसके बाद रम्भा को कोई शिकायत न रही। वह तमाम दिन अपने कार्य क्रम को पूरा करने में यंत्र की भांति लगी रहती। इससे उसको काफी थकावट हो जाती और रात को उसको यह भी ज्ञान न रहता कि वह कहां सोती है। इस प्रकार रतनज्योति में रम्भा के दिन निश्चिन्ततापूर्वक कटने लगे।

रम्भा ने शारदा को अच्छी स्थिति में पाया। वह स्वयं कुटीर के कार्य में काफी हाथ बटाती थी। अब उसकी सेवा की आवश्यकता नहीं रही थी। वह स्वयं एक सेविका बन गई थी। उसका चित्त अब स्थिर था। आश्रम का वातावरण इतनी क्रियाशीलता होने पर भी नीरव था। चिल्लाहट और चीख-पुकार का वातावरण में नाम तक न था। इससे रोगियों को भी अत्यन्त शान्ति-लाभ होता और कार्यकर्ता भी अपना काम बिना किसी रुकावट के पूरा कर लेते। शारदा काफी होशियार थी। वह बड़ी लगन से कार्य करती। रम्भा की अपेक्षा वह अधिक क्रियाशील थी। इसका एक कारण यह था कि शारदा का शरीर हलका और अधिक शक्ति-

पूर्ण थी। उसको आलस्य तो नाम को भी नहीं था। वह समस्त आश्रम में बिजली की धारा के समान हंसती हुई गति करती। रोगियों को भी उसकी उपस्थिति में यह अनुभव होता कि उनकी सेवा कोई उनका अपना आत्मीय ही कर रहा है। जिस कार्य में रम्भा अपनी मुखाकृति गम्भीर बना लेती उसमें भी शारदा की आंखों से प्रसन्नता झलकती रहती। संक्षेप में, शारदा प्रति क्षण हंसमुख थी। जब से वह अच्छी हुई थी तब से किसी ने भी उसको एक क्षण भर के लिए उदास नहीं देखा था।

रम्भा शारदा की क्रियाशीलता को अपने सामने आदर्श बना कर रखती। वह वैसी ही क्रियाशील बनने का प्रयत्न करती, किन्तु फिर भी वह अनुभव करती कि इतनी क्रियाशीलता उसकी शक्ति से परे है। वह शारदा की भांति प्रति क्षण प्रसन्न भी नहीं रह पाती थी। शारदा तो प्रति क्षण हंसती ही रहती। एकान्त में जब उसके पास कोई भी न होता, तब भी उसके ओंठों से हास्य फूटता रहता। उसे इस बात का कोई खयाल तक न था कि कोई उसको अकारण ही अकेली हंसती हुई देखेगा तो पागल समझेगा। पागल तो वह रह चुकी थी। अभी-अभी कुछ दिन पूर्व वह पगली थी। एक पगली के रूप में वह सेवा-केन्द्र में आई थी। फिर यदि वह पगली समझी जाएगी तो यह उसके लिए कोई नई बात नहीं होगी। वह अभी भी अपने को पगली ही समझती थी। और सम्भव है कि केन्द्र के कुछ लोग अब भी उसका मस्तिष्क पूरी तरह स्वस्थ न समझते हों, क्योंकि उसकी यह हंसी कुछ पागलपन लिए थी। पागल का लक्षण यही तो होता है कि वह अकारण ही हंसता है और अकारण ही रोता है। शारदा में से अकारण रोने का पागलपन चला गया था। लेकिन अकारण हंसने का पागलपन अभी अवशिष्ट था। लेकिन पागल की हंसी और स्वस्थ मस्तिष्क के मनुष्य की हंसी में एक अन्तर होता है। पागल जहां मुक्त हास्य हंसता है वहां स्वस्थ मस्तिष्क का मनुष्य उतना मुक्त हास्य नहीं हंसता। उसकी मुखाकृति पर केवल हास्य की छाया आती है। शारदा की स्थिति ऐसी ही थी। उसकी हंसी उसकी मुखाकृति से

झलकती भर थी। उसको जिस समय भी देखा जाता उसी समय प्रसन्न-चित्त दिखाई देती थी।

, योग में एक सिद्धि होती है जिसके प्राप्त होने पर योगी का चित्त प्रति क्षण प्रफुल्लित रहता है। इस सिद्धि को विशोका सिद्धि कहते हैं। इसमें योगी को अशोक अवस्था प्राप्त हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता था कि शारदा को भी यह सिद्धि प्राप्त हो गई थी। प्रति क्षण आह्लादित रहने का प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर यह पड़ा कि वह एक पूर्ण-यौवना सुन्दरी के रूप में विकसित होने लगी। उसका शरीर झलकने लग गया था। उसकी मुखाकृति पर प्रति क्षण एक अखंड शान्ति बिखरी रहती जिस प्रकार शरद पूर्णिमा की रात में धरित्री पर दुग्ध जैसी श्वेत चन्द्रिका फैली रहती है। उसकी आंखें आन्तरिक आह्लाद से चमकती रहतीं। उसकी पग गति से एक मधुर ताल उत्पन्न होती। जिस प्रकार बीन की मृदु झंकार को सुन कर घास के तृण चरते हुए हरिण अपना व्यापार भूल जाते हैं और व्याध की ओर विस्फारित और स्थिर नेत्रों से देखने लगते हैं उसी प्रकार आश्रमवासी आश्रम के काम-काज में व्यस्त शारदा को देखते। लेकिन शारदा सौन्दर्यमयी होने पर भी अग्नि की भांति पवित्र थी। वह सबकी आंखों को अपनी ओर आकर्षित करती थी, किन्तु उनमें एक प्रकार की पवित्रता का संचार भी करती थी। केन्द्र के पुरुष और स्त्री शारदा की ओर समान रूप से आकर्षित होते। स्वयं डाक्टर भारती को और सुशील को उसकी क्रियाशीलता और प्रसन्नचित्तता देखकर हर्ष होता था और हल्की ईर्ष्या होती थी। वे अपने हृदयों में कहते थे कि यदि ऐसे ही क्रियाशील और प्रसन्न वे भी रह सकें तो यह सेवा-केन्द्र स्वर्ग हो जाए। शारदा उनकी दृष्टि में सेविका के गुणों से पूर्णतया सज्जित थी।

बेचारी रम्भा शारदा के सम्मुख फीकी पड़ गई थी। वह यह अनुभव करती थी कि शारदा उससे इस क्षेत्र में बहुत आगे थी; किन्तु फिर भी वह उससे ईर्ष्या नहीं करती थी, वह उससे स्फूर्ति और आगे बढ़ने के लिए उत्साह प्राप्त करती थी। वह शारदा को प्रेम करती थी और शारदा

उसका आदर करती थी एवं उसको अपनी मां की भांति आदर की दृष्टि से देखती थी। केशिनी में उसका भगिनी-भाव था। इस दृष्टि से भी वह उसको केशिनी की भांति ही अपने लिए भी आदरणीय मानती थी। वह रम्भा को प्रत्येक कार्य में सहायता देने का आग्रह करती और श्रेय रम्भा को ही देती। इस स्थिति में रम्भा को उससे ईर्ष्या करने का स्थान ही कहां था ? फिर भी रम्भा के हृदय में भी सात्विक ईर्ष्या का कोई अज्ञात बीज कहीं छुपा था। वह कभी कभी यह अनुभव करती कि वह उसकी क्रियाशीलता और प्रसन्नचित्तता को प्राप्त करना चाहती है। किन्तु यह तो किसी भी भांति सम्भव न था। प्रत्येक मनुष्य की अपनी चिन्ताएं होती हैं और अपनी प्रसन्नताएं। एक व्यक्ति अपनी चिन्ताएं दूसरे को सौंप कर दूसरे की प्रसन्नचित्तता उससे नहीं मांग ला सकता।

किन्तु फिर भी शारदा रम्भा को अपने हृदय की शान्ति और चित्त की प्रसन्नता में से भाग देती थी। रम्भा उसके समीप आकर अशान्त और अप्रसन्न नहीं रह सकती थी। इसी भांति केन्द्र के रोगियों को भी वह शान्ति और प्रसन्नता बांटती थी। स्वयं सुशील और डाक्टर भारती को वह अपने कृतज्ञता भरे हृदय में से दो बूंदें शांति और आह्लाद की देती। किन्तु यह सब वह अनजाने ही कर रही थी।

शारदा को यह शान्ति और प्रसन्नचित्तता अचानक कहां से मिल गई ? निस्सन्देह उसमें यह परिवर्तन पागलपन के उपरान्त हुआ था। क्या जिस प्रकार साधना के फल शान्ति और प्रसन्नचित्तता होते हैं, उसी प्रकार पागलपन के फल भी शांति और प्रसन्नचित्तता होते हैं ? ऐसा प्रतीत तो नहीं होता। शारदा स्वयं ऐसा नहीं मानती थी कि उसको शांति और प्रसन्नचित्तता के अमूल्य हीरे पागलपन के कूड़े में से मिल सकते थे। वह तो समझती थी कि सेवा-केन्द्र में ही ये दो हीरे थे। वह सेवा-केन्द्र की अत्यन्त कृतज्ञ थी जिसने उससे पागलपन का कूड़ा-कर्कट छीन कर उसको ये हीरे दे दिए थे। सेवा-केन्द्र की चिकित्सा और उसके शान्त वातावरण की वह अत्यन्त कृतज्ञ थी, क्योंकि यदि वह

इनका लाभ न पाती तो उसको अपने प्राण भी कदाचित कहीं दे देने पड़ते। वह जानती थी कि उस भयंकर रात्रि में जब वह वर्षा में भीगती हुई अपने पिता के घर से निकल पड़ी थी तब उस निर्जन जंगल में जंगली जानवर उसकी देह को अपना भक्ष्य बना सकते थे। किन्तु दैवयोग से उसकी देह उस जंगल में से सुरक्षित निकल आई। उसके बाद भी शारदा को अपनी देह-रक्षा करनी असम्भव थी, क्योंकि पागल को अपनी देह की रक्षा का ज्ञान नहीं होता। इस स्थिति में यह सेवा-केन्द्र ही था जिसने उसको फिर से जीवन दिया था। वह इस नई देह को पाकर इस पर सेवा-केन्द्र का अधिकार समझती थी। उसने सोच लिया था कि वह पुरानी देह, जिस पर रमाशंकर का अधिकार था, नष्ट हो चुकी।

(२३)

जबसे शारदा रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में आई थी, तभी से उसके परिचय की जिज्ञासा केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं में थी; किन्तु उसकी मानसिक अवस्था को देखते हुए डाक्टर के निर्देश और आदेश के अनुसार कोई भी उससे इस सम्बन्ध में सीधा प्रश्न नहीं कर सकता था। इस प्रकार शारदा सेवा-केन्द्र में एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति बनी हुई थी।

लेकिन वह अब प्रत्यक्षतः देखने में स्वस्थ थी। इसलिए डाक्टर भारती ने यह सम्मति दी कि यदि बातचीत के सिलसिले में अनायास ही या अल्प प्रयास करने पर भी वह अपने पूर्व-जीवन के सम्बंध में कुछ बता सके, तो इस दिशा में कदम उठाना अब खतरनाक नहीं है। फिर भी इस सम्बंध में उन्होंने सावधानी से काम लेने की सलाह दी।

एक दिन सुशील ने शारदा को शांत, स्वस्थ और निश्चित मानसिक स्थिति में देख कर अपने कमरे में बुलाया और सेवा-केन्द्र के वातावरण, उसके कार्य, उसकी व्यवस्था और अन्य सम्बंधित बातों पर चर्चा करने के बाद कहा, "शारदा, मैं समझता हूँ कि अब तुम शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ हो।"

शारदा ने कहा, "हां, अब मुझे कोई शारीरिक या मानसिक व्याधि नहीं है; लेकिन फिर भी मेरी चिन्ता का मूल अभी नष्ट नहीं हुआ है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है।"

सुशील ने कहा, "यह मैं कल्पना कर सकता हूं किन्तु क्या तुम मुझे बता सकती हो कि तुम्हारी वह चिन्ता किस प्रकार की है। मैं

तुम्हें उस चिन्ता से मुक्त करने में पूरी सहायता दूंगा।"

शारदा ने उत्तर दिया, "लेकिन कुछ उद्विग्न और अस्थिर होकर दबी हुई चिन्ताओं को कुरेदने से चिन्ताओं की सुलगती अग्नि और भी भड़केगी, अतः उसे समय पाकर अपने आप बुझ जाने के लिए क्यों न छोड़ दिया जाय?"

शारदा के उत्तर से सुशील ने तुरंत अनुभव कर लिया कि उसका यह प्रश्न ठीक नहीं रहा; इसलिए उसने विषय बदलते हुए कहा, "शारदा यह आश्रम तुम्हारी सेवाओं के लिए तुम्हारा बहुत ऋणी रहेगा। हम अनुभव करते हैं कि तुमने आश्रम की उपयोगिता अपनी सेवा-वृत्ति से द्विगुणित कर दी है। आश्रम की प्रवृत्तियों में इन दिनों में जो वृद्धि हुई है उसका श्रेय तुम्हीं को है।"

शारदा ने कहा, "मैंने अपनी सेवायें इस आश्रम के लिए समर्पित कर दी हैं। सेवा-केन्द्र ने मेरी सेवा की और मैं सेवा-केन्द्र की सेवा करूंगी तो यह साधारण सी लोक-व्यवहार की बात ही तो होगी। इसमें मैं कोई त्याग भी नहीं कर रही हूँ और न मैं इसके लिए अपने हृदय में कोई अभिमान अनुभव करती हूं। मैं जो सेवा करती हूं उसका श्रेय स्वयं लेना नहीं चाहती। आप मुझको जो श्रेय देते हैं मैं उसे मूक-भाव से सेवा-केन्द्र को ही समर्पित कर देती हूँ। मैं समझती हूं कि सेवा-केन्द्र के कारण ही मुझको यह श्रेय मिल रहा है। फिर मुझको सेवा-केन्द्र सबसे बड़ा पुरस्कार स्वतः ही दे देता है। वह मुझे शांति और प्रसन्नचित्तता देता है। भला इससे बड़ा पुरस्कार किसी भी मनुष्य को दूसरा क्या मिल सकता है? इसके लिए तो लोग साधना करते हैं और मुझको यह सब साधना के बिना ही मिलता है।"

सुशील को शारदा की इस बारूदखाने की सी विस्फोटक स्थिति से भय लगा। उसने अपने मन में कहा, 'शारदा का मस्तिष्क अभी तक बम की भांति जोखम-भरा है। उसको न छूने में ही हित है। शारदा जिस प्रकार रहना चाहे उसको उसी प्रकार रहने देने में केन्द्र का कल्याण

है और शारदा के लिए भी यही श्रेयस्कर है।' जब सुशील ने इस स्थिति को भली भांति समझ लिया तब उसने शारदा को धीरे से सान्त्वना देते हुए कहा, "बहिन, तुम किसी प्रकार का बोझ अपने मस्तिष्क पर मत रखो। जो कुछ तुम बताने योग्य समझो उससे अधिक तुम किसी को मत बताओ। मैं केन्द्र के प्रत्येक सदस्य को कह दूंगा और मैंने कह भी दिया है कि कोई भी सदस्य तुम से इस सम्बन्ध में प्रश्न न करे।"

शारदा ने अपनी गम्भीरता को फिर उसी शान्तिपूर्ण और आह्लादपूर्ण भाव में बदलते हुए कहा, "मैं आपको अपना बड़ा भाई समझती हूं और निश्चित रूप से अपना हितैषी मानती हूँ। इसलिए आपसे अधिक छुपाना ठीक नहीं समझती। मेरे पति का नाम था रमाशंकर। वे काशीपुर के निवासी थे, जहां आपकी जमींदारी है। मैंने आपका नाम सुना था। आपके पिता के सम्बन्ध में बहुत सी बातें मुझको मालूम हैं। कदाचित आपने भी मेरे परिवार के सम्बन्ध में कुछ सुना होगा। मेरे श्वसुर का नाम ठाकुर हरनारायणसिंह था।"

सुशील घबरा गया था। उसको इस दुखजनक घटना का भली भांति ज्ञान था। वह जानता था कि अगर शारदा इसका ज़िक्र आगे करेगी तो वह अवश्य रो पड़ेगी। सम्भव है कि उसके मस्तिष्क पर फिर वैसा ही प्रबल आघात पहुंचे और वह उसको फिर पागल की सी स्थिति में ढकेल दे। यह ख़याल आते ही उसने शारदा को तुरंत आगे बढ़ने से रोक दिया। उसने कहा, "शारदा, अब मैं तुम्हारा रहस्य जानना ही नहीं चाहता। तुम उसको मुझे बताकर अपनी शान्ति और प्रसन्नचित्तता मत खोओ। जाओ, तुम अपना काम शान्ति से करो। मैं तुम्हारा दुख का भाई हूँ। मैंने तुमको दुख में से निकाला है। अब मैं तुमको दुखी न होने दूंगा। अगर तुम दुखी होओगी तो मैं सत्य कहता हूँ कि उससे मुझको अत्यन्त दुख होगा।"

शारदा ने देखा कि इस सेवा-केन्द्र की छोटी सी दुनिया में अब वह बिल्कुल परिवारहीन तो नहीं है। यहां भी कोई है जो उसको अपनी

बहिन कह कर पुकारता है और उसकी शान्ति और प्रसन्नता को अपनी शान्ति और प्रसन्नता मानता है। उसने अपना भाई छोड़ा था, किन्तु उसका यह नया भाई उसके भाई से किस बात में कम था? क्या वह उसको कम स्नेह करता था? नहीं, कदापि नहीं; बल्कि भाई से भी अधिक उसने उसकी सेवा की थी। उसने उसकी चारपाई के पास बैठे-बैठे अपनी रातें गुज़ार दीं। वह पागलपन के दौरे की दशा में उसको बार-बार पूछता, 'शारदा बहिन, तुम अब कैसी हो? अब तुम जल्दी अच्छी हो जाओगी। लो, थोड़ा सा दूध पी लो।' और शारदा चुपचाप मुँह खोल देती। वह भूख का अनुभव न करने पर भी इन शब्दों का मूल्य समझती थी जो उसको सम्बोधन करके कहे जाते थे। वह समझती थी मानो उसका सगा भाई उसके समीप है और उसकी परिचर्या में लगा है।

शारदा को ये सब बातें याद थीं। वह इस कारण भी प्रसन्न थी कि उसको सुशील में अपना भाई मिल गया था। रम्भा के रूप में उसको एक सास प्राप्त थी और अपने पति की स्मृति पर उसने जानबूझ कर एक आवरण डाल दिया था। इस प्रकार उसने कल्पना की मिट्टी में से कुरेद-कुरेद कर अपने हृदय का सुख ढूंढ निकाला था। उसका वह सुख अभी तक कायम था। उसको यह ज्ञात न था कि सुशील उसके सम्बन्ध में कुछ बातें जानता था। दूसरे लोगों को भी सुशील का यह भेद ज्ञात न था। स्वयं रम्भा इस सम्बन्ध में कुछ न जानती थी किन्तु फिर भी शारदा से इस सम्बन्ध में कोई भी व्यक्ति सीधा प्रश्न नहीं कर सकता था, क्योंकि सुशील ने और डाक्टर भारती ने स्पष्ट हिदायत कर दी थी कि यदि ऐसी भूल की जाएगी तो शारदा फिर रोगिणी हो जाएगी और तब कदाचित वह ठीक न हो सकेगी।

सुशील काशीपुर में एक बार आया था और उसने शारदा को देखा था। उसके सम्बन्ध में उसको कुछ बातें याद भी थीं। किन्तु शारदा जिस अवस्था में सेवा-केन्द्र में लाई गई वह ऐसी थी कि यह शारदा वही

शारदा थी इसका निश्चय करना सुशील के लिए असम्भव हो गया था। लेकिन आज जब शारदा ने एक विशेष मनोस्थिति में दो वाक्यों में अपना सारा भेद खोल दिया तो उसका सन्देह निवृत हो गया। उसने समझ लिया कि यह शारदा वही है। अब वह भली भांति समझ गया कि शारदा क्यों पागल हो गई थी। उसने अपनी तरुणावस्था के आवेश में निर्धनता और पति-वियोग का अतुल भार अपने कोमल नारी स्कन्धों पर उठा लिया था और उसको उठाने में असमर्थ होकर अपने मस्तिष्क और हृदय का संतुलन खो दिया था। निस्सन्देह उसके ऊपर जो विपत्तियां आई थीं वे भयंकर थीं। उसके पति का पागल हो जाना और श्वसुर और सास का पंचत्व को प्राप्त हो जाना उसके जीवन को अंधकारमय कर देने के लिए दुख की काली घटायें थीं। जब वे बरस चुकीं और शारदा दुख के पानी की बाढ़ में बह निकली तब उसके पिता और भाई ने उसको बचाने के लिए अपने ओछे हाथ उसकी ओर बढ़ाए और उन्होंने उसको पकड़ भी लिया, किन्तु दुख का प्रवाह इतना वेगवान था कि वह उनके हाथों से फिर छूट गई। और जिस प्रकार स्वयं सुशील के माता-पिता समस्तीपुर के पास गंगा के किनारे साधु रामदास की कुटिया के पास संयोगवश जा लगे थे, उसी प्रकार शारदा भी संयोग से सेवा रूप गंगा के किनारे बने हुए साधु सुशील के सेवा-केन्द्र के किनारे से आ लगी थी। साधु रामदास, दीनू और रामू ने अवधबिहारीलाल और मनोरमा के प्राण बचाए थे तो सुशील ने शारदा के जीवन की रक्षा की थी। सुशील यह सब अनुभव करता था।

सुशील अनुभव करता था कि जिस प्रकार उसका परिवार भूचाल में बारहबाट हो गया उसी प्रकार शारदा का परिवार भी भूचाल में बारह-बाट हो गया है। भूचाल में जो लोग मर जाते हैं वे तो शांति और सुख की नींद सो जाते हैं; किन्तु जो जीवित बच जाते हैं वे रो-रोकर मरने का प्रयत्न करते हैं। शारदा के परिवार में दुखों का भूचाल आया था। उसमें उसके श्वसुर और सास चल बसे थे। लेकिन शारदा जीवित थी

और उसका हृदय कहता था कि कहीं रमाशंकर भी जीवित होगा। सुशील ने अपनी आखों से देखा था कि भूचाल ने उसको अध-कुचला करके घर में दबा दिया था तो उसके पिता और उसकी माता को गंगा की लहरों पर उठाकर इतनी दूर फेंक दिया था, किन्तु जिस अदृष्ट शक्ति ने उनको इस प्रकार झंझावात की सी निर्दयता के साथ वियुक्त कर दिया था उसने उनको फिर संयुक्त हो जाने दिया। सम्भव है कि शारदा और रमाशंकर भी कभी मिल जाएं।

निस्सन्देह सुशील की यह कल्पना उसके लिए बड़ा ही सुखद स्वप्न थी। उसने उस स्वप्न में डूबते-उतराते हुए शारदा को अपने कमरे से विदा किया। उसको प्रसन्नता थी कि शारदा की शान्ति और प्रसन्नता को उसने आज अपनी बुद्धिमानी से अक्षुण्ण रख लिया था।

(२४)

विगतपुर में इस साल सुशील भी गया। इसके दो कारण थे। एक तो यह बात थी कि शीला ने उसको वहां बुलाया था। वह सुशील को दिखाना चाहती थी कि देश की नई प्रगतियों में उसको भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। क्रान्तिकारी महात्मा की उस पर विशेष कृपा थी। वे उसमें एक विशेष प्रतिभा देखते थे, जो दूसरे शिक्षार्थियों और शिक्षार्थीनियों में नहीं थी। शीला तर्कों के आधार पर किसी भी विषय को बहुत दूर तक विस्तृत कर सकती थी। उसकी अपनी विशेष शैली थी विचार करने की और वह क्रान्तिकारी महात्मा की अपनी शैली से मिलती-जुलती थी। क्रान्तिकारी महात्मा जिस बात को जिस प्रकार कहना चाहते थे शीला भी उसको उसी प्रकार से कहती थी। इस प्रकार वह क्रान्तिकारी महात्मा का ध्यान अपनी ओर खींचती थी, किन्तु शीला की एक दुर्बलता थी। वह अपने बच्चों की याद बहुत करती थी। वह कहती, 'न जाने रमेश कैसा पढ़ता होगा और उमा कहीं ऊधम न मचाती होगी।' क्रान्तिकारी महात्मा कहते, "शीला, तुम अपने पेट से उत्पन्न बच्चों की इतनी पर्वाह करती हो, किन्तु क्या तुम समाज के दूसरे बच्चों को भी उन्हीं की भांति अपना समझ कर उनकी उतनी ही पर्वाह नहीं कर सकतीं?"

शीला कहती, "अभी जब तक समाज मेरे बच्चों को अपने बच्चे नहीं मान लेता तब तक मैं अपने बच्चों की पर्वाह नहीं छोड़ सकती। हां, यह मैं चाहती हूं कि समाज के सब बच्चों की अपने बच्चों की भांति ही

पर्वाह करूं, किन्तु मनुष्य की शक्ति सीमित होती है और मैं भी चूंकि मनुष्य हूँ, इसलिए मेरी भी शक्ति सीमित है। इस कारण मैं अपना कार्य-क्षेत्र सब दिशाओं में विस्तृत नहीं कर सकती।"

क्रान्तिकारी महात्मा कहते, "शीला, तुम अपनी शक्ति को सीमित समझती हो, इसी कारण तुम प्रगति नहीं कर पातीं। यदि तुम इस कुटीर में न आतीं तो कदाचित तुम्हारा कार्य क्षेत्र चूल्हे और चौके से एक अंगुल भी अधिक विस्तृत न हो पाता। मैं यह कह कर इस कुटीर को कोई गौरव देना नहीं चाहता, किन्तु मैं तो तुमको यह बताना चाहता हूं कि जिस प्रकार इस चूल्हे और चौके से अधिक विस्तृत कार्यक्षेत्र में आकर तुमको अपनी शक्ति इसके लायक पर्याप्त मालूम होती है उसी प्रकार यदि तुम जिले या प्रान्त या देश के अधिक विस्तृत कार्यक्षेत्र में जाओगी तो तुमको अनुभव होगा कि तुम में उस प्रत्येक कार्यक्षेत्र का कार्य संचालित करने की शक्ति अन्तर्हित है जिसका कार्य-संचालन तुम अपने हाथों में लोगी।"

शीला ने कहा, "हां, यह बात एक सीमा तक सही हो सकती है। रबड़ के गुब्बारे में बहुत थोड़ी हवा रहती है तो वह ढीला रहता है। अगर उसमें पूरी हवा होती है तो वह कस जाता है, लेकिन अगर उसमें अधिक हवा भरी जाती है तो निश्चित सीमा का अतिक्रमण करते ही वह फट जाता है। यह बात मनुष्य की कार्य-शक्ति के सम्बन्ध में लागू होती है। मनुष्य की कार्य-शक्ति की सीमा होती है। यदि उस पर उस सीमा के बाहर दबाव डाला जाता है तो वह कार्यशक्ति टूट जाती है और साधारण अवस्था में वह जितना भार उठा सकती थी फिर उतना भी नहीं उठा सकती। हां, कार्य-शक्ति की तुलना में मनुष्य का मन अधिक लचीला होता है। उसमें विकास की शक्ति कमल-नाल की भांति होती है। जहां नदियों की बालू और कीचड़ से भरी तलियों में कमल उगता है वहां एक आश्चर्यजनक घटना होती है। ग्रीष्मकाल में नदियों की तलियां जलहीन हो जाती हैं। बालू और कीचड़ के ऊपर कहीं कोई कमल या कमल का पत्ता देखने में नहीं आता, किन्तु जब वर्षा ऋतु में नदियों के

ऊपरी भाग से पहाड़ों और मैदानों का संचित पानी पानी की एक दीवार की भांति उठता चला आता है तो बालू और कीचड़ में छिपी हुई कमल की जड़ें फूट निकलती हैं और उनमें से जो कमल-नाल निकलते हैं वे एक ही उछाल में इतने ऊंचे बढ़ जाते हैं जितना गहरा नदियों का पानी होता है। प्रत्येक कमल-नाल पानी में से अपना मुंह चमकाता है। कमल की बाढ़ पानी के अनुसार होती है। इसी प्रकार मनुष्य के मन की बाढ़ भी कार्य-क्षेत्र के अनुसार होती है। वह छोटे कार्य-क्षेत्र में छोटा रहता है और बड़े कार्यक्षेत्र में बड़ा हो जाता है। इससे कई बार बड़े-बड़े कार्य भी हो जाते हैं, किन्तु वे मनुष्य की अपनी कार्यशक्ति से नहीं होते। उनमें दूसरी स्थितियां सहायक हो जाती हैं। सिकंदर का मन प्लेटो की शिक्षा के पानी में बहुत बढ़ गया था। वह अन्य देशों पर विजय प्राप्त करने के लिए निकल पड़ा। इससे वह काफ़ी देश जीत गया और दुनिया के इतिहास में अपना नाम अमर कर गया, किन्तु इसका श्रेय उसकी कार्यशक्ति को ही नहीं दिया जा सकता। सिकंदर की सेना की वफ़ादारी, वीरता, कष्ट-सहिष्णुता और उसके आक्रमण के अवरोधकों की कमियां उसमें सहायक थीं।"

शीला ने आगे कहा, "मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अनुकूल स्थतियां पाकर मैं भी बहुत बड़ा कार्य कर सकती हूँ, लेकिन वह मेरी स्वाभाविक शक्ति का ही परिणाम न होगा। मेरी स्वाभाविक शक्ति उसके कई सहायक कारणों में से एक कारण होगी।

"मुझे अपनी इस शक्ति की सीमितता का भान है। इसलिए आप जो कुछ कहते हैं उस पर मेरा पूरा विश्वास नहीं जमता, अर्थात् मुझे अपनी शक्ति में सन्देह है। मेरा मन कुटीर के ऊंचे वातावरण के पानी में कमल-नाल की भांति ऊंचा बढ़ गया है। उसके बाहर जाकर यह मुर्झा न जायेगा, इसमें मुझे सन्देह है; लेकिन एक बात मैं मानती हूं कि स्त्रियों को चूल्हे-चौके के वातावरण से निकल कर खुले वातावरण में जाना चाहिए, समाज के विविध कार्यों में भाग लेना चाहिये। इससे निश्चय

ही उनका विकास होता है और उनमें आत्म-विश्वास, चरित्र की दृढ़ता, आत्म-निर्भरता, साहस, कष्ट-सहिष्णुता और दूसरे गुण, जिनकी जीवन में इतनी आवश्यकता होती है, विकसित हो जाते हैं।"

क्रान्तिकारी महात्मा शीला के तर्क से इस प्रकार पराजित हो कर भी अपराजित रहते, क्योंकि वे जानते थे कि शीला जितना कर सकती है उससे अधिक कार्य करने की क्षमता उसमें है। सम्भवतः शीला भी यह जानती थी, किन्तु जिस हठीले और अपनी ही बात पर दृढ़ रहने के स्वभाव के कारण अपने पति सुशील से उसका मेल नहीं खाया, उसी स्वभाव के कारण उसका मेल क्रान्तिकारी महात्मा से नहीं खाता था; किन्तु फिर भी वे उससे कभी निराश न होते थे। उनमें अपार धैर्य था। उनकी गम्भीरता किसी अगाध झील के समान थी जिसमें बहुत कम तरंगें उठती हैं। वे जबसे विगतपुर में आए थे तब से लोग उनको जानते थे और तब से अब तक उनमें महात्मापन के जो गुण लोगों को दिखाई दिये, वे अक्षुण्ण थे।

सुशील ने रमाशंकर को पहिले कभी नहीं देखा था, इसलिए उसको रमाशंकर की कोई पहिचान न थी। शारदा से भी उसने इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं की थी, किन्तु शारदा को साथ लेकर केन्द्र में जो युवक आए थे उनके मुख से उसने सुना था कि वह रमाशंकर को लम्बे क़द का, गोरा और गठीले शरीर का व्यक्ति बताती थी। सुशील ने आते ही देखा कि क्रान्तकारी महात्मा ऐसा ही युवा है। उसका कद लम्बा है, रंग गोरा है और शरीर भी गठीला है। उसको सन्देह हुआ, क्या यह रमाशंकर हो सकता है, किन्तु रमाशंकर तो साधारण युवक था। यह तो अत्यन्त प्रतिभाशाली है। इसका भाषण बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ मंत्रमुग्ध की भांति सुनते हैं। कैसा भरा हुआ शरीर है और गोरा रंग शुद्ध रक्त की अधिकता से बिल्कुल लाल गुलाब का सा हो गया है। जब वह बोलता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सारे विषयों पर इसका अधिकार है। कितना गम्भीर पांडित्य है इसका ? कितनी गवेषणापूर्ण होती है इसकी विवेचना ? समाज

के दोषों का उसने कितनी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। फिर उन दोषों को दूर करने के उसके उपाय कितने अचूक हैं। सुशील के हृदय में क्रान्तिकारी महात्मा के लिए शत प्रति शत प्रशंसा के भाव थे।

शीला ने अपने पति का खूब आदर किया। उसने जितनी श्रद्धा उसके प्रति इस बार दिखाई, उतनी पहिले कभी नहीं दिखाई थी। सुशील को स्वयं आश्चर्य था कि जिस शीला ने उसकी पर्वाह कभी नहीं की उसके हृदय में इतना परिवर्तन क्यों हो गया है। उसने शीला को हंस कर कहा, "मैं यह जान कर प्रसन्न था कि शीला अब पूर्ण स्वतंत्र हो गई है। उसे मेरी अनुमति लेना भी आवश्यक नहीं प्रतीत होता। शीला, तुम्हारे उस पत्र का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया जो तुमने शारदा-कुटीर से लिखा। क्या पानी पीकर कोई जाति पूछता है? तुम जब यहां आगई थी तब मेरी अनुमति की क्या आवश्यकता थी?"

शीला ने गम्भीर होकर कहा, "आप मुझको अब लज्जित न कीजिए। उसके लिए मैंने आपसे पहिले क्षमा मांगी थी और अब मैं आप से फिर क्षमा मांगती हूँ।"

सुशील ने कहा, "इसमें लज्जित होने की क्या बात है? मैंने तुमसे बिना पूछे जब रतनज्योति में सेवा-केन्द्र खोल लिया तब क्या तुम मुझसे बिना पूछे शारदा कुटीर में कुछ दिन रह भी नहीं सकती थीं? अब तुम बताओ कि तुमने मुझको क्यों बुलाया है?"

शीला ने कहा, "इसलिए कि मैं आपसे अपने अब तक के ढीठ व्यवहार के लिए क्षमा मांगलूं।"

सुशील ने कहा, "लेकिन शीला, तुम तो ऐसी कभी थीं नहीं। तुम में यह परिवर्तन कैसे हो गया, यह तो बताओ?"

शीला ने कहा, "यह पूछ कर क्या करेंगे? लेकिन जब आप पूछते हैं तब मैं आपको सारी बात बताऊंगी। लेकिन यह बताने का अभी अवकाश नहीं। अभी वर्ग लगेगा। अब तो रात को ८ बजे बाद ही अवकाश हो सकता है।"

सुशील ने कहा, "हां, अभी तो मैं भी क्रान्तिकारी महात्मा से बातें करूंगा। उन्होंने मुझे एक घंटा विशेषरूप से देने की कृपा की है। बड़े सरल हैं क्रान्तिकारी महात्मा। इस युवा-अवस्था में इतनी निरहंकारिता, इतनी सरलता और इतनी संयमशीलता बहुत कम देखने को मिलती है।"

शीला ने कहा, "हां, कुटीर में, गांवों में और विगतपुर नगर में सर्वत्र ही लोग उनको धर्ममूर्ति समझते हैं।"

यह कहती हुई शीला वर्ग में चली गई और सुशील अतिथिशाला की उस एकान्त झोंपड़ी में से निकल आमों के कुंज में बैंच पर आ बैठा और तरह-तरह के खयालों में डूब गया। कभी उसके सम्मुख शारदा आती जिसको देखकर उसे अपनी बहिन मीरा की स्मृति हो आती। वह उसको मीरा समझता था, क्योंकि उसकी आकृति में मीरा की आकृति की भी झलक थी। वह सोचता, 'बेचारी शारदा क्या कभी इस करुणाजनक स्थिति में से निकल अपने पति को इन आंखों से देख सकेगी।' फिर उसकी आंखों के सम्मुख क्रान्तिकारी महात्मा की आकृति आती। तब वह सोचता, 'हो सकता है, रमाशंकर ही क्रान्तिकारी महात्मा के नाम से प्रख्यात हो। क्रान्तिकारी महात्मा तो कोई नाम होगा नहीं।' रमाशंकर को भी लोग कम प्रतिभावान तो नहीं बतलाते थे। जिन लोगों ने उसको सन् ३० के आन्दोलन में सार्वजनिक सभाओं में गरजते हुए देखा था उनकी जबानों पर रमाशंकर की चर्चा आज तक थी।

वह फिर सोचता, 'लेकिन रमाशंकर तो पागल हो गया था। यह क्रान्तिकारी महात्मा तो पागल नहीं है। पागल रमाशंकर ही शारदा जैसे स्त्री-रत्न का अनादर कर सकता था। स्वस्थ मस्तिष्क के रमाशंकर को शारदा अत्यन्त प्यारी थी। वह जेल में उसी के दुख की कल्पना से पागल हो गया था। ऐसी स्थिति में रमाशंकर और क्रान्तिकारी महात्मा एक ही व्यक्ति नहीं हो सकते।'

यहां उसकी बुद्धि ने उसको मार्ग दिखाना बंद कर दिया। लेकिन कुछ देर बाद उसने फिर सोचा, 'काशीपुर में इस बार जब रम्भा के बुलाने

पर मैं गया तब एक ग्रामीण ने कहा था कि एक रात में एक पागल ठाकुर हरनारायण के परिवार का हाल बड़े दुख के साथ पूछ रहा था। जब उसको यह कहा गया कि रमाशंकर पागल हो गया, उसके मां-बाप मर गए और स्त्री भी चली गई तो उससे रोटियां भी नहीं खाई गईं। उसके बाद वह रोता हुआ चला गया। क्या वह पागल रमाशंकर ही था? क्या वह पागलपन दूर होने पर काशीपुर गया था और वहां अपने परिवार का अन्त हुआ देख उसके हृदय के आंसू सूख गए और वह मोहहीन स्थित-प्रज्ञ क्रान्तिकारी महात्मा बन गया। यह बहुत सम्भव है। क्या यह शारदा-कुटीर उसी शारदा की स्मृति है? यदि यह कल्पना सही निकले तो यह कितनी सुखद बात होगी। यदि एक महान पति और एक महान पत्नी के जीवनों की दो वियुक्त धाराएं किसी भांति मिल सकें तो एक दुःखान्त नाटक सुखान्त बन जाए। किन्तु कौन जानता है कि क्रान्तिकारी महात्मा मेरी बहिन शारदा का पति रमाशंकर ही हो?'

सुशील ने आम्र-कुंज में बैठे बैठे अपनी आखें बन्द कर ली। आम पर मतवाली कोयल बैठी कूक रही थी। उसके स्वर में मिठास था। आम मौर रहा था और उसकी महक से भौंरे पागल हो रहे थे। सुशील भी पागल सा हो उठा। उसने कोयल की ओर देखा और झुंझला कर कहा, 'अरी कोयल, तेरी अपेक्षा तो मेरी बहिन शारदा की बोली ही अधिक मीठी है। लेकिन वह तेरी भांति मतवाली नहीं है।'

---

(२५)

सुशील ने शारदा-कुटीर में दिन को क्रान्तिकारी महात्मा से बातें कीं। क्रान्तिकारी महात्मा ने सेवा-केन्द्र रतनज्योति के सम्बन्ध में सुशील से जानकारी प्राप्त की। उनको सुशील का कार्य अत्यन्त उपयोगी जंचा। उन्होंने कहा, "डाक्टर भारती को मैं पहिले से जानता हूं। उन्होंने सन् ३० के असहयोग आन्दोलन के बाद सन् ३४ में भूचाल-पीड़ितों की बहुत सेवा की थी। क्या वे आपके केन्द्र में ही हैं?"

सुशील ने कहा, "हां, आप कभी आइए और उनसे मिलिए। मैं उनसे आपका अवश्य जिक्र करूंगा, किन्तु आपके प्रचलित नाम से वे आपको नहीं पहिचानते। यदि आप अपना पूर्व नाम बताने की कृपा करें तो मैं समझता हूं कि वे आपको अवश्य जान जाएंगे।"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "लेकिन, सुशील, मैं तो अब अपना पुराना परिचय, बहुत काल व्यतीत हुआ तभी से, किसी को नहीं देता और न अपने पूर्व जीवन के सम्बन्ध में ही किसी से कोई चर्चा करना पसंद करता हूँ। इसका कारण है। मैं सोचता हूँ कि जब मैंने अपने जीवन की धारा ही दूसरे मार्ग में होकर बहानी आरम्भ कर दी है तब पहिले मार्ग को स्मरण करना व्यर्थ है।"

सुशील ने कहा, "लेकिन यदि पूर्व नाम जानने के लिए कोई विशेष आग्रह करे तब?"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "तब भी मुझे अपना पूर्व नाम बताना उचित नहीं जंचता।"

सुशील ने कहा, "अच्छा, तब मैं ख़याल करता हूँ कि आप मुझे कुछ प्रश्नों का उत्तर देने की अवश्य कृपा करेंगे। मैं जानता हूं कि आपका नाम रमाशंकर होना चाहिए। क्या मैं ठीक कहता हूं ?"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "लेकिन आपके ये प्रश्न व्यर्थ हैं।"

सुशील ने कहा, "आपकी पत्नी का नाम शारदा था, उसके नाम पर आपने यह कुटीर स्थापित की है। क्या यह सच है ?"

क्रान्तिकारी महात्मा ने उसी दृढ़ता के स्वर में कहा, "आप स्वयं ही इनके उत्तर अपने मस्तिष्क से ले लें।"

सुशील ने अन्त में कहा, "लेकिन मैं आपको अधिक तंग न करूंगा। मैं अन्त में एक प्रश्न करूंगा। मैं समझता हूं कि उसका उत्तर दिए बिना आप नहीं रह सकेंगे। वह प्रश्न यह है कि यदि शारदा जीवित हो और कहीं आपके नाम की माला जपती हो तो क्या आप उसे दुत्कार देंगे ?"

अब तो क्रान्तिकारी महात्मा की मुखाकृति का रंग बदल गया, किन्तु फिर भी उनकी गम्भीरता में कोई अन्तर नहीं आया। उन्होंने कहा, "मैं इस प्रश्न का उत्तर देता हूँ, किन्तु केवल इस शर्त पर कि आप यह भेद केवल अपने आप तक ही सीमित रखेंगे। मेरा उत्तर यह है कि यदि रमाशंकर कहीं जीवित होगा तो वह क्रान्तिकारी महात्मा के कहने से शारदा को अपने प्राणों में लपेट लेगा और कभी एक क्षण के लिए भी उससे अलग होना स्वीकार न करेगा।"

सुशील हंस गया। उसने कहा, "ईश्वर को धन्यवाद। मेरी बहिन शारदा का सौभाग्य सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ।"

क्रान्तिकारी महात्मा अपने स्थान से तुरंत उठ पड़े। उन्होंने कहा, "अब मुझे वर्ग में भाषण देना है। क्रान्तिकारी महात्मा को अपने कार्य क्रम में कोई शिथिलता सहन नहीं हो सकती।"

सुशील ने कहा, "यह तो हम लोगों का स्वभाव बन जाना चाहिए। हमारा समय हमारा अपना नहीं है। उस पर जनता का अधिकार है। हमें उसका दुरुपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है।"

सुशील ने अतिथिशाला में रात को देर तक शीला से बातें कीं। शीला ने कहा, "आप मुझसे नाराज़ तो नहीं हैं।"

सुशील ने उसको आश्वासन दिया कि वह निश्चिन्त रहे। सुशील को वास्तव में शीला पर नाराज़ होने का न तो कोई अवसर ही आया था और न उसको इतना अवकाश ही था। इसलिए उसने शीला को कहा, "तुम जो चाहो वह हृदय खोलकर कहो। मुझे आज किसी भी बात पर दुख न होगा। मैं तुम्हारी गम्भीर से गम्भीर भूल को भूल जाने के लिए तैयार होकर आया हूं।"

शीला की आंखों में आंसू भर आए। वह बहुत देर तक सुशील के मुख की ओर देखती रही। फिर कहा, "आप मुझे क्षमा कर दीजिए।"

सुशील ने कहा, "शीला यह सब अनावश्यक है। जो बात हो, वह कह दो।"

शीला ने कहा, "लेकिन पहिले यह कहिए कि आपने मुझको क्षमा कर दिया।"

सुशील ने कहा, "अच्छा, मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। यद्यपि मैं नहीं जानता कि मुझको तुम्हें क्षमा करने का अधिकार भी है या नहीं, किन्तु फिर भी जब तुम मुझसे यह चाहती हो तो मुझको इसमें कोई आपत्ति नहीं है।।"

शीला ने कहा, "आपका हृदय शुद्ध है, लेकिन मेरा हृदय मलिन है। मैंने आपको बहुत दिनों तक धोखा दिया, किन्तु इसमें मेरा अधिक दोष न था, स्थितियों का दोष था और मेरे मानसिक विकास की कमी भी इसका कारण थी। मैं नहीं जानती थी कि मैं जो कुछ कर रही हूँ उसका परिणाम यह होगा कि आप मुझसे इतने दूर जा गिरेंगे। मैंने आपके स्वभाव को भली भांति नहीं पहिचाना। इससे मैं अपने मार्ग से भटक गई। मैं इतने दिनों तक आपसे विमुख रही, इसका मुझे अत्यन्त खेद है। मैंने आपकी आज्ञा के बिना यहां आकर ठीक नहीं किया। मैं यहां शुद्ध हृदय लेकर नहीं आई थी, किन्तु क्रान्तिकारी महात्मा की

महानता ने मेरी रक्षा की।"

सुशील ने कहा, "शीला, तुम्हारा इसमें दोष नहीं है। दोष मेरा भी तो है। मैं तुमसे जितना दूर भागा, तुम्हारी उपेक्षा मेरी ओर उतनी ही बढ़ गई। जब मैं तुमसे बिल्कुल कट गया तब तुमने दूसरा मार्ग लिया। किन्तु यह तो बताओ कि तुम्हें मेरे सम्बन्ध में क्या भ्रम हुआ और वह क्यों हुआ?"

शीला ने कहा, "अब तो सब साफ़-साफ़ ही कहूँगी। रम्भा चाची से आपकी घनिष्टता मेरे हृदय को बिच्छू के डंक से भी अधिक दुख देती थी। आप नहीं जानते, किन्तु मुझे अब बतलाना आवश्यक है। रम्भा चाची का नौकर मुझे आपकी और उनकी सारी बातें सुना जाता था। उसने आपके सम्बन्ध में मुझे क्या नहीं कहा। मेरी उपेक्षा का कारण यही था।"

सुशील ने पूछा, 'किन्तु शीला अब यह परिवर्तन क्यों?"

शीला ने कहा, "अब मैं स्वयं सोचती हूँ। अध्ययन से और नये विचारों के सुनने से मेरे हृदय की मलिनता धुल गई है। फिर भी अभी आपकी ओर से जब तक मुझको एक वचन नहीं मिल जाता तब तक मैं निश्चिन्त नहीं होऊंगी।"

सुशील ने कहा, "यह भी बताओ।"

शीला ने कहा, "रम्भा चाची आपके साथ अब नहीं रहेंगी, यह वचन मुझे दीजिए।"

सुशील ने कहा, "शीला, तुमको इस सम्बन्ध में जितनी सूचनाएं मिलीं वे सब गलत थीं। यदि तुमने अपने हृदय की शंकाएं बता दी होतीं तो मैंने तुम्हारा हृदय कभी का साफ़ कर दिया होता।"

शीला चुप रही, लेकिन सुशील कहता चला गया, "स्त्री इस दुनिया की सबसे गम्भीर पहेली है। बुद्धिमान से बुद्धिमान पुरुष उसका हल ढूंढने में सन्देह की सेवार में फंस जाता है। मेरे सामने स्त्रियों के अनेक रूप आए हैं। उनमें से एक शीला तुम हो। किन्तु फिर भी तुमने अभी कुमार्ग पर पग नहीं रखा। अब तुम मेरे साथ रतनज्योति में चलो। मैं

तुम्हारा पूरा ख़याल रखूंगा। तुम देखोगी कि मैं तुमको ही प्रेम करता हूं। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी उतना ही प्रेम है, और मेरा हृदय उतना ही शुद्ध है जितना पहिले कभी था।"

शीला ने कहा, "किन्तु अब केवल चार व्याख्यान ही रहे हैं। इनको समाप्त होने दीजिए। मैं उसके बाद तुरंत आती हूं।"

सुशील ने शीला से इधर छुट्टी ली, किन्तु क्रान्तिकारी महात्मा से उसको छुट्टी मिलनी उतनी आसान न थी। उन्होंने उसको अनेक बातें बताईं और एक प्रकार से उसमें नई भावना उत्पन्न की। उन्होंने कहा, "सुशील, यह संसार एक उलझन है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति उलझा हुआ है। जो किसी कार्य में उलझा हुआ नहीं है वह संसारी नहीं है। आप किसी कार्य में फंसे हैं और मैं किसी कार्य में फंसा हूं। हम दोनों में से कोई भी बिना कार्य के नहीं है। यदि हमारे पास कार्य न हो तो हमारे जीवन बोझ हो जायें। एक प्रकार से हम कार्यों को चलाते हैं और कार्य हमको चलाते हैं। आप सेवा-केन्द्र के संचालक हैं, लेकिन आप सेवा-केन्द्र से सचालित भी हैं। आपका प्रत्येक कार्य सेवा-केन्द्र के लिए है। इसी प्रकार मैं भी जो बिल्कुल निष्काम हो गया हूँ इस शारदा-कुटीर को चलाए जाने की कामना रखता हूँ। मैं इस कुटीर को चलाता हूं तो मैं इस कुटीर के कार्य में अति-व्यस्त भी तो रहता हूं। इसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह है कि यह कुटीर मुझे चलाती है। यदि यह कुटीर न हो तो मेरा जीवन कर्महीन हो जाए। इसके विपरीत जिसका स्मारक यह शारदा-कुटीर है वह तो अत्यन्त कर्मण्य स्त्री थी।"

सुशील ने कहा, "जो कर्मशील होता है वह दस-पांच साल बीत जाने पर भी उतना ही कर्मशील रहता है। मनुष्य की कर्मशीलता उसके स्वभाव में होती है। वह साधारण से भूचालों से नष्ट नहीं हो जाया करती। इस स्थिति में आप शारदा की कर्मशीलता में कोई कमी नहीं पाएंगे, बल्कि उसमें कुछ वृद्धि ही पाएंगे।"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "आप ये बातें किसको कहते हैं?

क्या रमाशंकर को ? नहीं, रमाशंकर उसी भांति कभी का मर गया जिस भांति शारदा मर गई है। क्या शारदा ने किसी से फिर विवाह नहीं कर लिया है ?"

सुशील ने कहा, "नहीं, आपकी यह कल्पना उसके साथ भारी अन्याय है।"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "यदि ऐसा है तो रमाशंकर अभी जीवित है। वह मरा नहीं है, बल्कि उसके लिए शारदा भी कभी मरी नहीं थी। वह इतना अनुदार न था कि शारदा के सुख में बाधा डालता और अपने सुख की कामना करता। रमाशंकर का पागलपन जब दूर हुआ तब वह एक रात पागल की भांति ही काशीपुर में गया। उसने अपने परिवार का हाल पूछा। किसी व्यक्ति ने उसको कहा कि उसके पिता और माता मर गए और शारदा कहीं चली गई। मैंने शारदा के कहीं चले जाने का यह अर्थ लिया कि वह रमाशंकर को इस अन्तर-काल में अवश्य भूल गई होगी। फिर उसके पहिले भी कई वर्ष रमाशंकर कारावास में रहा था। जो स्थितियां थीं उनमें रमाशंकर को यह विश्वास कर लेने का कारण था कि शारदा उसकी प्रतीक्षा में अपनी आयु को पूर्ण नहीं कर सकती थी। उसने इसी धारणा के आधार पर फिर कभी शारदा को नहीं ढूँढा। वह जिस शारदा को प्यार करता था उसका स्मारक उसने विगत-पुर में बना दिया और उसमें देश के दरिद्रों की सेवा का मंत्र जपता हुआ वह अब तक अपनी शारदा को प्रेम करता है।"

सुशील की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसकी आंखों में हर्ष के आंसू आगए। उसकी आंखों में शारदा के सुखी जीवन के चित्र खिच गए और अपने विश्वास को पूरा हुआ देख उसका हृदय प्रसन्नता से परिपूर्ण हो गया था। क्रान्तिकारी महात्मा ने फिर कहा, "सुशील, मैं आपका विश्वास करता हूं। लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि शारदा इस बीच में कहां थी ?"

सुशील ने कहा, "मुझे स्वयं पता नहीं। हां, मैं इतना जानता हूं कि

वह अभी तक रमाशंकर की शारदा है। वह रतनज्योति के सेवा-केन्द्र में पागल के रूप में आई और रमाशंकर की याद में व्याकुल रोती हुई आई। शारदा यदि रमाशंकर को भूल जाती तो वह रमाशंकर के लिए पागल कभी न होती। सेवा-केन्द्र में मेरी भाभी ने उसकी सेवा की और उसका पागलपन चला गया। अब वह स्वयं सेवा-केन्द्र का सबसे अधिक उपयोगी अंग बन गई है। उसकी सेवा के सम्मुख हमारी सब की सेवाएं फीकी पड़ गई हैं। मुझे तो अब अधिक चिन्ता नहीं रहती है कि मेरे अभाव में सेवा-केन्द्र का कार्य रुक रहा होगा।"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "सुशील, यह सब कुछ सही है; किन्तु फिर शारदा रमाशंकर के लिए बिल्कुल नई शारदा होगी। सम्भव है कि वह रमाशंकर को पहिचाने भी नहीं। अब रमाशंकर वह रमाशंकर नहीं रहा है और सम्भवतः अब शारदा में भी बड़ा अन्तर होगा। फिर यह कौन कह सकता है कि सेवा की डोरियों से दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बंधे हुए प्राणी अपने क्षेत्र छोड़कर एक दूसरे के प्रेम के सूत्रों में फिर बंध सकेंगे?"

सुशील ने कहा, "शारदा स्वस्थ है। प्रति क्षण प्रसन्न रहना उसका स्वभाव है। वह अब भी स्त्रियों में ईर्ष्या उत्पन्न करने योग्य है। इसके अतिरिक्त उसका जैसा प्रेमपूर्ण सरल और विशुद्ध हृदय है वैसा कम स्त्रियों का हृदय मिलेगा।"

क्रान्तिकारी महात्मा ने कहा, "ये भाषण समाप्त हो जाएं। उसके बाद मैं आपके सेवा-केन्द्र में आऊंगा और देखूंगा कि शारदा रमाशंकर को पहिचानती भी है या नहीं। एक युग व्यतीत हो गया जब रमाशंकर उससे मोह का बंधन तोड़कर जेल में चला गया था। तब से वह अब शारदा को देखेगा। किन्तु निश्चय ही वह शारदा को कभी भूला नहीं। भला पति अपनी पत्नी को कभी भूल सकता है? रमाशंकर ने जेल में उसको स्मरण किया और उसके कष्टों की स्मृति ने और उसके अपने कष्टों ने भी, जो उसने जेल जीवन में भोगे, उसको पागल कर दिया। उसके बाद

बहुत समय तक वह इधर-उधर अपना पागलपन लिए घूमता रहा, किन्तु इस बीच में उसने क्या किया इसका स्वयं उसको कुछ ज्ञान नहीं है। जब वह होश में आया, तब भी उसको शारदा याद थी। वह अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए अपने घर पहुँचा, किन्तु उसके हृदय पर किसी ने जोर का आघात किया और उसमें से शारदा को निकाल दिया। रमाशंकर का हृदय इससे टूट गया; लेकिन फिर भी वह पागल नहीं हुआ। दुखी मनुष्य पर जब बहुत दुख आते हैं तो वह उनका अभ्यस्त हो जाता है। रमाशंकर भी उनका अभ्यस्त हो गया था। अब रमाशंकर शारदा को फिर स्मरण कर रहा है, लेकिन वह यह देखना चाहता है कि क्या शारदा भी उसको इसी भांति स्मरण करती है।"

सुशील ने कहा, "अवश्य ही, शारदा ने आपको फिर पाने के लिए कठोर साधना की है और उसकी वह साधना अभी तक जारी है।" यह कहकर सुशील ने विदा लेते हुए फिर कहा, "अपने आने की निश्चित तारीख सूचित कीजिए और शीला को भी साथ लाइए।"

(२६)

रम्भा ने शारदा की भांति शान्त और प्रसन्न रहने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसको इसमें सफलता नहीं मिली । उसको अपने जीवन में कोई कमी मालूम होती थी । जब सेवा-केन्द्र में उसका कार्यक्रम सुशील के साथ रहता तब उसका चित्त अधिक प्रसन्न रहता था, किन्तु अब कुछ दिनों से डाक्टर भारती के साथ भी वह कार्य करने में शान्ति और प्रसन्नचित्तता अनुभव करती थी । डाक्टर भारती अपने कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहते थे । वे किसी से भी अनावश्यक बातें न करते थे, किन्तु रम्भा से न जानें क्यों उनको सहानुभूति हो गई थी । रम्भा युवावस्था में ही विधवा हो गई थी । यह शायद उनकी सहानुभूति का कारण था । फिर भी वे शुद्ध हृदय के डाक्टर ही थे । उन्होंने अभी तक अपना विवाह नहीं किया था । किन्तु क्यों नहीं किया था यह कोई नहीं जानता था । सेवा उनके जीवन का लक्ष्य थी । कदाचित उनका खयाल होगा कि विवाह करने और परिवार बांधने के बाद मनुष्य निःस्वार्थ सेवा नहीं कर सकता । वे सेवा-केन्द्र से लेते कुछ न थे । वे उसमें कार्य करते थे तो खाना खाते और कपड़े पहिनते थे । इससे अधिक लेने की उनको आवश्यकता न थी । वे अपने तीन भाईयों में सब से छोटे थे । दो भाई अपनी पारिवारिक जायदाद को संभालते थे और यह अपनी सेवा की पगदंडी पर अकेले बढ़ते चले जा रहे थे । उनके पिता और मां दोनों जीवित थे । उन्होंने उनका विवाह करने की बहुत जिद की, किन्तु डाक्टर भारती ने गम्भीरता से उत्तर दे दिया कि वे अपने सेवा के मार्ग में

बाधाओं के कंटक बढ़ाना नहीं चाहते। उनके पिता और मां ने आखिर उनको कह दिया कि उनको विवाह करने पर ही जायदाद का भाग मिलेगा, अन्यथा नहीं। यद्यपि कानूनी अधिकार से उनको वंचित करना अशक्य था, किन्तु उन्होंने एक अदालती कागज़ अपने पिता की दराज़ में से निकाल कर उस पर हस्ताक्षर कर दिए और उसको उनको सौंप कर जैसे कपड़े पहिने थे वैसे ही पहिने हुए तुरन्त चले आये और कह आए कि वे उस कागज पर जो मजमून चाहें लिख सकते हैं।

उसके बाद डाक्टर भारती ने अपने पिता और अपनी मां का घर नहीं देखा। कुछ दिनों तक उन्होंने पटना के सरकारी अस्पताल में नौकरी की। वहां उनको डेढ़ सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था, इससे वे अपनी निज की डिस्पैन्सरी चलाते थे जिसमें वे गरीब और अमीर, जो भी रोगी होता, उसी की बिना किसी पारिश्रमिक के और बिना औषध का मूल्य मांगे चिकित्सा करते थे। जो धनी लोग अपने पैसे से दवाएं लाने का आग्रह करते, उनकी दवाएं वे ले लेते और उनको सभी रोगियों की चिकित्सा में काम लाते। जब से डाक्टर भारती रत्नज्योति में चले आए हैं तब से पटना ने एक अच्छा सेवक डाक्टर खो दिया है, किन्तु डाक्टर भारती को संतोष था कि जहां कोई भी डाक्टर नहीं था उनकी शक्ति से वहां रोगियों की सेवा हो रही है।

डाक्टर भारती का क़द अधिक लम्बा न था और न उनका शरीर अधिक स्थूल ही था। वे मध्यम क़द और मध्यम शरीर के आदमी थे, किन्तु उनके शरीर का गठन अच्छा था। वे बीमार तो कभी होते ही न थे। उनका कभी सिर भी न दुखता था। वे अपनी जीवन-चर्या में बड़े नियमित थे। खान-पान और रहन-सहन में बड़े कठोर थे। सदैव सादा भोजन करते और सादा वस्त्र पहिनते। गाय का दूध उनके शौक की वस्तु था। वे उसके लिए कभी इन्कार न करते। शाक और फल वे स्वयं बाग में उगाते थे। उनके अतिथि फलों और गोदुग्ध के रूप में ही आतिथ्य पाते थे।

रम्भा की अपेक्षा डाक्टर भारती का स्वभाव अधिक गम्भीर था, इसलिए वह उनकी ओर आंख भर कर देख भी नहीं सकती थी। जब उसका कार्यक्रम उनके साथ होता तो वह उनसे केवल काम-काज की बातें ही करती। लेकिन डाक्टर भारती रम्भा से बड़े प्रेम से बोलते। वे उससे उसके सम्बन्ध में काफ़ी बातें करते और उससे अपने काम में विशेष सहयोग भी लेते। धीरे-धीरे डाक्टर भारती को ज्ञात हुआ कि उनका मन रम्भा की ओर आकर्षित हो रहा है। रम्भा ने भी उनकी आंखें पहिचानीं, किन्तु दोनों ही अपनी मर्यादाओं को जानते थे और उनकी रक्षा के लिए सचेत और सावधान थे।

किन्तु प्रेम की धाराएं सचेत और जागरुक रहने पर भी समानान्तर बहती नहीं रह सकतीं। उनकी प्रवृत्ति संगम की ओर होती है। असल में स्वाभाविक विवाह यही होता है। विवाह का विधान तो उसको सामाजिक और कानूनी रूप देने के लिए होता है। डा० भारती और रम्भा वस्तुतः इस सच्चे विवाह की ओर ही जा रहे थे।

अब रम्भा को सुशील के अभाव में बेचैनी नहीं होती थी। सुशील जब विगतपुर चला गया तो रम्भा को उसका जाना बिल्कुल नहीं खटका और बहुत दिन तक आश्रम से अनुपस्थित रहने पर भी रम्भा को ऐसा भान हुआ मानो सुशील को गए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। सुशील जब विगतपुर से आया तो उसने रम्भा को बिल्कुल स्वस्थ, प्रसन्न और अपने कार्य में व्यस्त पाया। पहिले जब कभी सुशील बाहर चला जाता और कई दिन बाद लौटता तब रम्भा यह अवश्य कहती थी, "इतने दिन सेवा-केन्द्र से बाहर? आपकी अनिवार्य आवश्यकता यहां आपके पीछे अनुभव होती है।"

सुशील कहता, "अच्छा, लेकिन मौसी जी, बाहर जाने की जब अनिवार्य आवश्यकता होती है तब यहां का अनिवार्य वास छूटना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य की इच्छाएं घोड़ों के समान होती हैं। उनको स्थितियां लगाम बन कर जिस ओर चाहें उस ओर मोड़ती रहती

हैं। मनुष्य इसमें विवश हो जाता है।"

इस बार सुशील जब बाहर से लौटा तो रम्भा ने उसको कुछ नहीं कहा। शारदा ने आते ही पूछा, "शारदा-कुटीर आपको कैसी लगी? उसको कौन चलाते हैं?"

सुशील ने कहा, "बहिन, तुमको मैं शारदा कुटीर का हाल थोड़ी देर बाद बताऊंगा। मैं पहिले स्नान कर लूँ और कुछ ठंडा हो लूं।"

शारदा यह उत्तर सुनकर अपने कार्य में लग गई।

सुशील जब सेवा-केन्द्र का सारा कार्य देख चुका और स्नान और भोजन से निवृत्त हो चुका तो उसने शारदा को बुलाया। शारदा के साथ रम्भा भी थी। सुशील ने रम्भा को कहा, "शीला ने आपको प्रणाम कहा है।"

रम्भा ने कहा, "शीला कैसी है?"

सुशील ने कहा, "अब नेता बन गई है। उसमें भाषण देने और तर्क करने की शक्ति बढ़ रही है। उसने इन दिनों में पढ़ा भी खूब है।"

रम्भा ने कहा, "यदि मैं भी इस वर्ष वहां चली गई होती तो अच्छा ही होता; किन्तु मैंने तो शारदा-कुटीर की स्थायी सदस्या बनने की मांग की थी। किन्तु सदस्या बनने के लिए आवश्यक शर्त यह थी कि प्रत्येक सदस्य अपनी सम्पत्ति का उपयोग लोक-सेवा के लिए करे। इस शर्त ने मुझको काशीपुर में महिला-कुटीर खोलने के लिए विवश किया। लेकिन वहां मेरा मन ही नहीं लगा।"

सुशील ने पूछा, "लेकिन, मौसी जी, यह तो बताइए कि यहां आपका मन कैसा लगा है?"

रम्भा ने कहा, "यहां मैं बिल्कुल प्रसन्न और स्वस्थ हूं। मेरा चित्त यहां अत्यन्त स्वस्थ रहता है। मेरी सुस्ती भी कम हो गई है। शारदा को देख कर मैं अधिक क्रियाशील होती जा रही हूँ। मैंने शारदा से कई बातें भी सीखी हैं। यद्यपि आयु में शारदा से मैं कुछ बड़ी हूं किन्तु कई गुणों में शारदा को मैं अपने से बहुत अधिक बड़ी मानती हूँ। उसमें रोगियों

को प्रफुल्लित रखने का गुण सबसे अधिक है। इसके अतिरिक्त शारदा तमाम दिन कार्यरत रहने पर भी आज तक कभी यह कहती हुई नहीं सुनी गई कि 'आज मैं थक गई हूं'।"

शारदा ने सुशील को कहा, "आजकल रम्भा चाची मेरी बहुत अधिक प्रशंसा किया करती हैं। इससे अब मैं इनके पास अधिक नहीं रहती। मैं अपनी प्रशंसा अधिक नहीं सुनना चाहती। मुझको तो आप बिना प्रशंसा के ही सेवा करने दें। मैं तो प्रशंसा की पात्री हूं नहीं। मैं समझती हूँ कि यह मेरा कर्तव्य है जिसको मुझे हर्ष के साथ, हृदय के पूरे उत्साह और बल के साथ सम्पन्न करना चाहिए। भला कर्तव्य-पालन करने पर प्रशंसा की क्या आवश्यकता है?"

रम्भा ने कहा, "यह भी शारदा का एक गुण है। यह इसकी निरभिमानता है कि यह अपनी प्रशंसा सुनने से घबराती है।"

शारदा चुप हो गई। रम्भा ने कहा, "अच्छा, शारदा अब मैं तुम्हारी प्रशंसा अधिक न करूंगी, लेकिन तुम आज गम्भीर क्यों हो यह तो बताओ?"

शारदा ने कहा, "आज मुझको सुशील भाई की याद आ रही थी। कई दिन हो गए थे इनको देखे बिना, इससे चित्त में कुछ बेचैनी सी थी। इस बार इन्होंने इतने दिन बाहर रहने पर भी मुझको पत्र नहीं दिया इसकी शिकायत मुझको करनी ही चाहिए। भाई का बहिन से यह शुष्क व्यवहार मुझको अखरता है।"

सुशील ने कहा, "हां बहिन, अवश्य ही इस बार मैंने भारी भूल की है। लेकिन मैं समझता हूँ कि मेरी बहिन बड़ी उदार है। वह मुझे इसके लिए अवश्य क्षमा कर देगी।" यह कहकर सुशील ने शारदा के मुँह की ओर देखा।

शारदा प्रसन्न थी। उसने कुछ सोचने के बाद कहा, "किन्तु छोटी बहिन से भी कोई भाई क्षमा मांगता है?"

सुशील ने कहा, "हां, यदि वह बड़ी बहिन का स्थान भी ले ले।

शारदा ! मेरी बड़ी बहिन भी तो कोई नहीं है इसलिए तुमको उसकी कमी भी तो पूरी करनी है।"

शारदा ने हंसकर कहा, "आपसे मैं जीत नहीं सकती और न मैं जीतना चाहती हूं।"

रम्भा ने बातचीत के बीच में ही कहा, "सुशील बाबू, मेरा कार्य-क्रम डाक्टर भारती के साथ है। मैं तो अब उसमें जाती हूं। आप दोनों बातें करें। मैं शारदा से आपकी बातें पीछे सुन लूंगी।"

सुशील ने कहा, "जैसा आप चाहें। आप चाहें सुन भी सकती हैं। शारदा के सम्बन्ध की ही कुछ बातें थीं।"

रम्भा ने कहा, "मैं कार्यक्रम में पीछे रहना नहीं चाहती। वह कार्य आवश्यक है।"

रम्भा यह कहकर चली गई। शारदा ने पूछा, "कहिए, शारदा-कुटीर का हाल।"

सुशील ने कहा, "शारदा, मैं समझता हूं कि आज तुम्हारा चित्त प्रसन्न है।"

शारदा ने कहा, "हां।"

सुशील ने पूछा, "कोई बात तुम्हारी मानसिक स्थिति को असह्य तो नहीं होगी?"

शारदा ने कहा, "आज तो मैं आपसे जो आप कहना चाहें वह सब सुनने के लिए तैयार हूँ।"

सुशील ने कहा, "तो सुनो। मुझे शारदा-कुटीर में जाकर पता चला कि रमाशंकर जी यदि अच्छी तरह से कहीं खोजे जाएंगे तो शायद मिल जाएंगे।"

शारदा चुप रही। उसको आन्तरिक हर्ष हो रहा था, लेकिन वह इतना था कि उसके हृदय के पात्र से ऊपर होकर निकल जाए और उसके मस्तिष्क को प्रभावित कर दे। शारदा ने हर्ष को रोक कर पूछा, "उनको कहां ढूंढना होगा?"

सुशील ने कहा, "यह अभी कुछ पता नहीं। कोई नहीं जानता कि वे कहां हैं, लेकिन क्रान्तिकारी महात्मा का खयाल है कि वे शायद मिल जाएं।"

शारदा ने दुखित सी होकर कहा, "खयाल है। ऐसा खयाल तो कई लोगों का था, किन्तु वे बहुत खोजने पर भी कहीं मिले नहीं।"

सुशील ने कहा, "क्रान्तिकारी महात्मा को रमाशंकर का कुछ पता मालूम होता है, लेकिन वह उन्होंने मुझको बताया नहीं। उनका कहना यह है कि शारदा-कुटीर का संस्थापक रमाशंकर ही था। वे तो उसमें सेवा करते हैं। रमाशंकर उसकी स्थापना के बाद कहीं चला गया और अभी तक वापिस नहीं आया है।"

शारदा ने पूछा, "किन्तु क्या उनका पागलपन ठीक हो गया था?"

सुशील ने कहा, "हां।"

सुशील देख रहा था कि इस खबर से कहीं शारदा का मानसिक सन्तुलन तो नहीं बिगड़ता। उसको अब यह विश्वास हो गया कि इतनी खबर तो इसके मस्तिष्क को सह्य हो गई। अभी वह इससे कुछ अधिक बोझ भी उठा सकती है। उसने कहा, "किन्तु शारदा, मुझे आज तुम यह तो बता दो कि रमाशंकर को तुम अभी तक भूली नहीं हो?"

शारदा ने कहा, "मेरे भाई, आपसे यदि मैं अपने हृदय के भाव छिपाऊं तो मैं आपकी सच्ची बहिन नहीं रहूँगी। कोई स्त्री अपने पति को नहीं भूलती है किन्तु ऐसी स्त्रियां हैं जो दूसरे विवाह कर लेती हैं और अपने पूर्व पतियों को भूल जाती हैं। किन्तु मैंने तो आज तक कभी स्वप्न में इस प्रकार का विचार नहीं किया। उनको याद करके मैंने अपने जीवन के इतने वर्ष बिता दिए और यदि वे मुझे नहीं मिलते हैं तो मैं अपने जीवन के शेष वर्ष भी बड़े सुखपूर्वक व्यतीत कर दूंगी। उनकी स्मृति में जीवित रहने में मुझको कितना सुख मिलता है यह मैं ही जानती हूँ। मेरी शान्ति और प्रसन्नचित्तता का एक कारण यह भी है कि मेरा मन अभी तक मेरे पति का ही भक्त बना हुआ है। मैं यह सोच-सोचकर ही

तो पागल हो गई थी कि मेरे लिए मेरे पति पागल हो गए और मैं उनके अभाव में भी जीवित हूं, किन्तु पागल हो जाने पर भी मैं मरी नहीं। आप लोगों ने मुझे बचा लिया और अब मेरे शरीर पर सबसे अधिक आप लोगों का ही अधिकार है। यदि स्वयं मेरे पति आकर भी मुझको कहें कि 'शारदा, चलो मैं तुम्हें लेने आया हूं, तब भी मैं उनको कहूँगी, 'स्वामी, आपकी शारदा मर गई थी, उसको सेवा-केन्द्र के संतों ने अपने मंत्रों से जीवित कर लिया। इसलिए शारदा का जो शरीर आपको दिखता है वह उन्हीं की सम्पत्ति है। मुझे इसको आपको सौंपने का भी अधिकार नहीं है। आप उनसे प्रार्थना कीजिए कि वे यह शरीर आपको सौंप दें। हां मेरा हृदय अभी तक आपका है। उसमें मैंने अभी तक आपकी प्रतिमा स्थापित कर रखी है। उस पर मैं अपने आंसुओं के फूल नित्य श्रद्धापूर्वक चढ़ाती हूँ। यही मेरी पूजा है और यही मेरा पाठ है। इससे भिन्न जप, तप और ज्ञान-ध्यान मैं दूसरा नहीं जानती'।"

सुशील की आंखों में आंसू भर आए। उसने रोते-रोते कहा, "बहिन, तुम्हारी अपने पति में निष्ठा स्वर्ग की वस्तु है। मुझे ऐसी बहिन पाकर आज बड़ा अभिमान हो रहा है।"

शारदा ने कहा, "अभिमान? इसमें आपको अभिमान करने की क्या बात है? अपने पति में मेरी यह निष्ठा मेरी अपनी निधि है जिसको मैंने चोरों और लुटेरों से भरे हुए इस संसार में बड़े यत्न से सुरक्षित रखा है। यह तो देवता की पूजा के समान पवित्र वस्तु है। इसको कोई भी मलिन हाथों से नहीं छू सकता। मैं अपने प्राण दे दूंगी, लेकिन अपने देवता की इस पूजा की पवित्रता को क़ायम रखूंगी यह मेरी चिर भावना ही है।"

सुशील नहीं जानता था कि संसार में नारी का यह रूप भी उसको देखने के लिए मिलेगा। उसने अपने दोनों हाथ धीरे से इकट्ठे किए और जब शारदा अपनी आंखें नीची किए हुए अपने हृदय की पुनीत प्रेम की ज्योति का स्वर्गीय प्रकाश अपने भाई सुशील को दिखा रही थी तब सुशील ने उन हाथों से शारदा के आगे को बढ़े हुए दोनों पैर प्रेम से

छुए और उनकी ओर अपना सिर झुकाया। शारदा ने आश्चर्यचकित होकर उसके हाथ अपने हाथों में पकड़ लिए और उसका सिर भी ऊंचा का ऊंचा ही रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु उससे पहिले ही वह सिर उसके पैरों पर रखा जा चुका था। सुशील की आंखों से आंसुओं की दो बूंदें उन पर लग गई थीं। शारदा ने सुशील को दोनों हाथों में भर कर ऊंचा किया और कहा, "भैया! मैं इस आदर के योग्य नहीं हूं। आप मुझे इस प्रकार लज्जित न करें। भला कोई भाई अपनी छोटी बहिन के पैर छूता है। मेरी इच्छा होती थी कि सुशील जैसे भाई के पैरों से लिपट जाती, लेकिन भैया! मैं लोक-अपवाद से शंकिता अपने भाई को भी हृदय खोलकर प्यार न कर सकी।"

सुशील ने कहा, "शारदा, तुमको मालूम नहीं। मेरी भी एक छोटी बहिन थी मीरा। उसको मैं अत्यन्त स्नेह करता था। उसकी आकृति बिल्कुल ऐसी ही थी जैसी तुम्हारी आकृति है। तुमको देखकर मुझे पहिले दिन यह ख़याल हुआ कि कहीं से मेरी वह बहिन ही मेरे सामने फिर आगई है, लेकिन जब मुझे तुमने यह बता दिया कि तुम काशीपुर के जमींदार ठाकुर हरनारायणसिंह के पुत्र रमाशंकर की पत्नी हो तो मेरी धारणा बदल गई। मैंने खयाल बना लिया कि शारदा और मेरी बहिन मीरा एक नहीं हैं, और यह आकृति साम्य संयोगवश ही है क्योंकि मेरी बहिन मीरा तो भूचाल से बहुत वर्ष पहिले गंगा में बह गई थी। लेकिन शारदा! आज मैं तुमसे वह बात पूछना चाहता हूं जो तुमने उस दिन नहीं बताई थी।"

शारदा ने कहा, "अपने पितृकुल का परिचय?"

सुशील ने कहा, "हां।"

शारदा ने कहा, "मैं आपको अपने जीवन का यह भेद भी सुना दूं। यह आज तक मैंने अपने पति को भी नहीं बताया। इतना कपट तो मैंने उनसे भी रखा। इस बात से मुझको अत्यन्त दुख है, किन्तु यदि वे मेरे साथ कुछ दिन और रहे होते तो मैंने यह भेद भी उनको अवश्य बता दिया होता। मैं ठाकुर कुलदीपनारायणसिंह की खास संतान नहीं हूं और न सुधीन्द्र मेरा

सगा भाई है। मुझे यह भेद उन्होंने नहीं बताया किन्तु लोचनपुर गांव में यह बात छुपी नहीं है। लोग कहते हैं कि शारदा गंगा में बह आई थी। उसको वहां से ग्वाले लाए और ठाकुर कुलदीपनारायणसिंह ने उसको अपनी पुत्री की भांति पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया।"

सुशील ने हर्ष-विह्वल होकर कहा, "तो क्या मैंने मीरा और शारदा के एक न होने का गलत ख़याल बनाया था? प्रतीत ऐसा ही होता है। क्या तुम मीरा हो?"

शारदा ने कहा, "हां, मैंने अपना नाम लोचनपुर में मीरा बताया भी था।"

सुशील के हृदय का बांध टूट गया और वह आंसुओं में बह निकला। शारदा भी रो रही थी। वह सुशील के पैरों से लिपट गई और बिलख-बिलख कर रोने लगी। सुशील ने उसको छाती से लगा लिया और उसको धैर्य बंधाया। उसने कहा, "मेरी बहिन, अब मत रोओ। तुमको तुम्हारा मां-जाया भाई मिल गया है। साथ ही तुमको तुम्हारी मां वापिस मिली है। तुम्हें एक भाभी, दो भतीजे और भतीजी और एक मौसी भी मिली हैं, लेकिन यह जानकर तुमको दुख होगा कि तुम्हारे पिता तुम्हें जीवित रूप में फिर देखने के लिए नहीं रहे हैं। तुम्हारे बड़े भाई और बहिन भी भूचाल की भेंट हो गए।"

शारदा अब सुशील के कमरे में से जाने का नाम न लेती थी। थोड़ी देर में रम्भा आई। उसने देखा शारदा अब भी सुशील से बातें कर रही है। उसने पूछा, "क्यों आज दोनों भाई और बहिन कुछ भी कार्य नहीं करना चाहते।"

सुशील ने कहा, "आज मैं कुछ नहीं करूंगा और न शारदा ही कुछ करेगी।"

रम्भा ने आश्चर्य से कहा, "क्यों?"

सुशील ने कहा, "आज मेरी छोटी बहिन मीरा जो भूचाल से पहिले गंगा में बह गई थी, फिर वापिस मिल गई है।"

रम्भा ने कहा, "यह क्या औपन्यासिक गाथा है?"

सुशील ने कहा, "हां, यह औपन्यासिक गाथा तो है। शारदा ही मीरा है। उसको स्वयं इसका स्मरण है और मैंने उसको जिस दिन यह पगली के रूप में यहां आई थी, उसी दिन पहिचान लिया था। किन्तु कुछ सन्देह शेष था वह आज चला गया।"

रम्भा को इस भेद को सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ। थोड़ी ही देर में आश्रम भर में यह बात फैल गई और डाक्टर भारती भी उनको बधाई देने आए। सब रोगी भी गंगा में बही हुई मीरा के फिर मिलने की आश्चर्यजनक बात सुनकर दौड़े आए, किन्तु उनको वहां शारदा के अतिरिक्त अन्य कोई भी दिखाई न दिया।

सुशील ने हंसकर शारदा को कन्धे पकड़कर ऊंची उठाया और कहा, "बहिन, अब खड़ी हो जाओ। इन्हें भी तो मेरी बहिन को देखने की इच्छा पूरी करने दो।"

शारदा हंसती हुई खड़ी हो गई। उसको भी इस बात की असीम प्रसन्नता थी और साथ ही आश्चर्य भी कि यह क्या हुआ। उसे जो कुछ हुआ था वह स्वप्न मालूम होता था। उसकी सत्यता में उसको विश्वास ही नहीं जम पा रहा था। उसने सब आश्रमवासियों को हाथ जोड़कर हंसते हुए नमस्कार किया और कहा, "मेरा नाम मीरा है, यह मुझे याद है। मेरा शारदा नाम तो बाद में रखा गया था। मुझे अपने भाई सुशील की कुछ स्मृति थी किन्तु मैं उनको पहिचान नहीं सकी। हां, मैं मां को पहिचान सकती हूँ।"

निदान सेवा-केन्द्र में आने के लिए मनोरमा को तार दे दिया गया। उसमें लिखा, 'अवश्य आएं, यहां उत्सव है।'

(२७)

रतनज्योति सेवा-केन्द्र में आज उत्सव था। सारा सेवा-केन्द्र भली भांति सजाया गया था। सुशील की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था और शारदा का अजीब हाल था। वह भाई के सम्मुख आती हुई लजाती थी। आखिर वह उसका बड़ा भाई था। शारदा ने जिस दिन से यह जाना कि सुशील उसका मां जाया भाई है उस दिन से उसकी मानसिक अवस्था में बिल्कुल परिवर्तन आगया है। उसकी प्रसन्नता अब स्वाभाविक हो गई है और वह उतनी क्रियाशील भी नहीं रही है। न जाने क्यों वह अब कुछ गम्भीर और कुछ सोचती हुई सी रहती है। तो शारदा क्या सोचती थी? वह सोचती थी, 'शारदा, तेरा खोया भाई मिल गया और खोई हुई मां भी मिल गई। लेकिन तेरा खोया पति अभी तक नहीं मिला; किन्तु तेरा भाई कहता है कि उनका पता लग जाएगा। शारदा, अगर वे मिल जाएं तो तेरा अब तक जीवन जितना दुखी रहा है उससे आगे का तेरा जीवन उतना ही सुखी हो जाएगा।"

रम्भा शारदा को पाकर बड़ी प्रसन्न थी। उसका सम्बन्ध शारदा से इतना निकट का निकल आएगा यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। अब उसको यह अनुभव होता था कि मानो शारदा उसकी अपनी बेटी ही हो। वह उसको अत्यन्त स्नेह करने लगी थी। वह उसके गुणों के कारण उसको पहिले भी स्नेह करती थी, किन्तु अब नया भेद खुलने पर उसका वह स्नेह और अधिक हो गया था। शारदा उसको अपनी मां की भांति आदर की दृष्टि से देखती थी और उसकी सेवा में कोई कमी न रखती थी।

क्रान्तिकारी महात्मा और शीला का तार सुशील को मिल गया था कि वे अमुक दिन रतनज्योति में पहुंच जाएंगे। निश्चित दिन पर सुशील स्टेशन पर उनको लेने गया। किन्तु उसको यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि शीला तो गाड़ी में थी, किन्तु क्रान्तिकारी महात्मा का कहीं पता तक न था। उसने शीला से पूछा, "क्रान्तिकारी महात्मा कहां हैं?"

शीला ने उत्तर में कहा, "जिस दिन से आप यहां आए उस दिन से ही वे अस्वस्थ हो गए और अभी तक ठीक नहीं हुए हैं। उनकी दशा अधिक ख़राब है।"

सुशील समझ गया कि क्या बात हुई। उसकी मां मनोरमा भी दूसरी गाड़ी से आगई। उसके साथ सुशील के दोनों बच्चे और एक पुराना नौकर भी था। जब सब आश्रम में पहुंचे तो शारदा ने उनका स्वागत किया। उसने मनोरमा को देखकर आंखों में आंसू भर लिए। मनोरमा ने भी उसे कुछ देर तक टकटकी बांधकर देखा। उसको उसकी आकृति मीरा की सी दिखाई दी, किन्तु मीरा तो गंगा में बह गई थी। शारदा उसकी इस मनोदशा को समझ गई और अपने आपको और ज़्यादा न रोक सकी। वह अपनी मां से चिपट गई और रोने लगी। उसकी मां ने भी अपने हृदय का दुख रोकर हल्का किया। फिर सुशील ने अपनी मां को बताया कि मीरा किस भांति गंगा में से जीवित निकल आई और उसके बाद वह किस प्रकार रतनज्योति आश्रम में पहुँची।

मनोरमा ईश्वर का धन्यवाद करते हुए थकती न थी कि जिसने इतने वर्ष के बाद मीरा को उससे फिर मिला दिया था; किन्तु मीरा के पागलपन की कहानी सुनकर उसको रोना आया। उसने आंसुओं को पोंछ-पोंछ कर वे सब दुःखद बातें सुनीं जो मीरा ने अपनी मां को सुनाईं।

क्रान्तिकारी महात्मा के उत्सव के अवसर पर न आ सकने से सुशील की प्रसन्नता बहुत कम हो गई। उसने निश्चय किया कि जब वे रोगी हैं और यहां आ सकने की स्थिति में नहीं हैं तब यह ठीक होगा कि समस्त परिवार ही विगतपुर चले। अतः सारी स्थिति समझाते हुए

सुशील ने उनको कहा कि मीरा के साथ सारे परिवार को जिसमें रम्भा और डाक्टर भारती भी होंगे बिगतपुर चलना होगा। मीरा के अतिरिक्त अन्य सब लोगों को इसका भेद भी बता दिया गया। मीरा ने भी अनुमान कर लिया कि बात क्या है; किन्तु फिर भी उसको यह सन्देह दुख दे रहा था कि आखिर क्रान्तिकारी महात्मा ने जब यहां आने का दिन तक निश्चित कर दिया था तब वे यहां क्यों नहीं आए। क्या उनको उसके पति रमाशंकर का पता नहीं चला। उसने कुछ चर्चा इस प्रकार की सुनी थी कि किसी की तबीयत ज़्यादा खराब है। क्या रमाशंकर ही वहां बीमार हो गए हैं। कुछ भी हो उसमें इतना साहस न था कि वह किसी को उन सबके विगतपुर जाने का कारण पूछ ले।

अन्त में सब लोग विगतपुर की गाड़ी पकड़ने के लिए बैलगाड़ियों में सेवा-केन्द्र से रवाना हो गए। स्टेशन पर सब सामान उतारा गया और प्लेटफार्म पर जमा दिया गया। कुछ ही देर प्रतीक्षा की होगी कि गाड़ी आगई। सारा परिवार हर्ष और शोक से विमूढ़ हो उसमें बैठा। मीरा के अतिरिक्त सबको यह भली भांति ज्ञात था कि उनकी इस मानसिक अवस्था का कारण क्या था। मनोरमा को जो मीरा के मिलने का हर्ष था वहां मीरा के कष्टमय जीवन की कहानी सुन कर रोना आया था और जामाता के मिल जाने पर उसके अचानक रोगग्रस्त होने की खबर से उसको बड़ी भारी चिन्ता हो गई थी। रम्भा और शीला की दशा मनोरमा से कुछ अच्छी थी। उनको उसकी अपेक्षा कम चिन्ता थी। सुशील भी खिन्न था, किन्तु डाक्टर भारती स्वस्थ चित्त थे। वे सबको धैर्य बंधा रहे थे और कह रहे थे कि मुझे विश्वास है कोई भी अनर्थ न होगा। जिस दैवी शक्ति ने इस बिखरे परिवार को इकट्ठा किया है वह उस पर यह दुख का पहाड़ कदापि न तोड़ गिराएगी।

विगतपुर में गाड़ी से उतर कर सब लोग तांगों में गंगा-तट तक पहुंचे और वहां से नाव में नदी पार करके पैदल शारदा-कुटीर में पहुंचे। इस शान्त नीरव और हरे-भरे तपोवन को देखकर सबके चित्तों को असीम

शान्ति मिली। मानो शारदा-कुटीर की इस भूमि में ही यह गुण था। विद्यार्थियों ने उन सबका स्वागत किया और शीला ने सबको यथा स्थान शान्तिपूर्वक ठहराने की व्यवस्था की, क्योंकि कल तक वही तो इस भार को संभाले हुई थी। उसने उन सब लोगों को शान्त होने और फिर स्नान आदि करने की सलाह दी ताकि इस बीच में वह उन सबके भोजन आदि का प्रबन्ध कर सके। उसने उनको कहा, "मैंने यह मालूम कर लिया है कि क्रान्तिकारी महात्मा का चित्त अब कल की अपेक्षा स्वस्थ है, किन्तु उनको रात में नींद नहीं आई है, इसलिए अभी वे सोए हैं।"

शीला ने मीरा को कुटीर दिखाई और कहां क्या काम होता है यह बताया। मीरा ने पूछा, "यह कुटीर क्या क्रान्तिकारी महात्मा ने ही स्थापित की है?"

शीला ने कहा, "हां उन्हींने।"

मीरा ने पूछा, "क्या इस समय उनकी तबीयत ज़्यादा खराब है?"

शीला ने कहा, "नहीं; ज्यादा नहीं। उनको कोई शारीरिक रोग नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनको कोई मानसिक आघात लगा है।"

मीरा ने कहा, "शीला भाभी, क्या तुम मुझे किसी प्रकार उनको सोता हुआ ही दिखा सकती हो?"

शीला ने कहा, "हां, दिखा सकती हूँ, लेकिन तुम्हें इस प्रकार चलना होगा कि पैरों का शब्द सुनकर वे जग न जाएं।"

मीरा इसके लिए तैयार हो गई। शीला ने उसका हाथ पकड़ा और उसको अपने पीछे-पीछे आमों के कुँज में से निकाल कर उस कमरे के पीछे के जंगले पर ले गई जहां क्रान्तिकारी महात्मा सो रहे थे। शीला ने उंगली के संकेत से कहा, "ये हैं।"

मीरा ने देखा कि एक प्रौढ़ तेजस्वी पुरुष सीधी करवट लिए हुए एक कठोर तख्त पर कम्बल के ऊपर श्वेत चद्दर का परिच्छद लगाए शान्ति-पूर्ण निद्रा के अभिभूत हो रहा है। वह यद्यपि शान्तिपूर्ण आकृति लिए हुए था, किन्तु उस पर रोगी की आकृति की सी थकान थी मानों वह

कई रातों से सोया न हो और अब उस शक्ति के बाहर किए गए जागरण की कमी पूरी कर रहा हो। वह दीर्घ काया, लम्बी ग्रीवा का और आजानु-बाहु पुरुष था। तप से उसकी काया निर्मल हो रही थी। मीरा ने सोचा, 'रमाशंकर तो ऐसे थे नहीं। उसकी आंखें कहती थीं कि रमाशंकर तो साधारण शरीर का साधारण युवक था जो उसको प्रेम करता था। वह इतना गम्भीर न था।' किन्तु फिर भी वह रमाशंकर ही था। उसको इसमें कोई सन्देह न था।

मीरा ने शीला को पूछा, "क्रान्तिकारी महात्मा ये ही हैं?"

शीला ने कहा, "हां।"

मीरा ने अपने हृदय में ईश्वर से वहीं प्रार्थना की, "हे परमात्मा, मेरे पति को तू अच्छा कर। मैंने यह खोई हुई निधि रो-रो कर पाई है। तू इसको अब मुझसे मत छीन। मैंने अपने जीवन में अपनी शक्ति से अधिक कष्ट सहन किए हैं। अब तू मुझे अधिक कष्ट न दे। जब तूने मुझे मेरे खोए हुए भाई और खोई हुई मां और भरा-पूरा परिवार वापिस दिया है तो हे मंगलमय! तू मुझे यह एक भीख और दे दे। मैं तेरे सम्मुख इसके लिए हाथ और फैलाती हूँ। तू मेरी अन्तिम अभिलाषा और पूरी कर दे।"

शीला ने मीरा का हाथ खींच कर कहा, "अब यहां से चलो। देखो उन्होंने करवट बदली, किन्तु अब वे काफ़ी स्वस्थ मालूम पड़ते हैं।"

मीरा और शीला आश्रम-कुँज में होकर फिर अतिथि-शाला में आगईं। इस बीच में सब लोग नहा-धो चुके थे। शीला ने मीरा को कहा, "चलो, तुम भी नहा लो। मीरा ने कहा, "हां-हां चलो।" वह शीला के पीछे-पीछे चल दी।

मीरा का चित्त नहा कर बिल्कुल स्वस्थ हो गया। रमाशंकर को देख कर उसने जान लिया कि उनको मानसिक भार के कारण ही अस्वस्थता हुई है। वैसे उनकी शारीरिक अवस्था बहुत अच्छी है। कोई चिन्ता की बात नहीं है।

क्रान्तिकारी महात्मा ने अतिथियों को कहला भेजा कि वे उनसे अगले दिन प्रातःकाल मिल सकेंगे, क्योंकि तब तक उनकी मानसिक स्थिति कदाचित अधिक स्वस्थ हो जाएगी।

सुशील ने उनका यह सन्देश प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। रात को सब लोग प्रसन्नतापूर्वक सोए।

रात में जब शीला और मीरा एक अलग झोंपड़ी में लेटी थीं जिसमें पहिले शीला सोती थी तो शीला ने मीरा को खूब हंसाया। उसने कहा, "प्यारी ननद, साफ़ तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा कि क्रान्तिकारी महात्मा ही तुम्हारे पति हैं और तुम उनको देखना चाहती हो।"

मीरा ने कहा, "शीला भाभी, अगर तुम मेरी जगह होती तो तुमको भी मेरी अपेक्षा कुछ कम उत्सुकता उनको देखने की न होती। तुम अब भी मेरे हृदय की दशा नहीं जान सकतीं। तबीयत होती है कि मैं उनके पास अभी पहुंच जाऊं और उनसे लिपट कर एक बार तो जी भर कर रो लूं।"

शीला ने चुटकी लेते हुए कहा, "अब, मीरा, तुम रोने की बातें न कहो। अब तो तुमको जी भर कर हंसना ही हंसना है। तुम यही समझो कि तुम्हारा विवाह अभी हुआ है। तुम्हारे जैसे पति तो बड़ी तपस्या से मिलते हैं। तुम्हारे भाग्य को देख कर किस स्त्री को ईर्ष्या न होगी।"

मीरा ने कहा, "अच्छा भाभी, अब तो तुम सो जाओ। कल फिर चाहे जितनी हंसी कर लेना।"

शीला ने कहा, "अच्छी बात है गुरुआनी जी।"

मीरा को फिर हंसी आगई। उसने कहा, "तो भाभी, मैं अब जाऊं? तुम मुझे न सोने दोगी?"

शीला ने कहा, "मीरा, आज तो प्रसन्नता के कारण मुझे नींद नहीं आती।"

मीरा चुप हो गई। किन्तु नींद तो उसको भी नहीं आ रही थी। वह सारी रात मन ही मन पगली की भांति हंसती रही। उस समय जितना

हर्ष उसको हो रहा था उतना हर्ष विशोक-सिद्धि-प्राप्त किसी योगी को भी न होता होगा।

दूसरे दिन जब सूर्य की किरणें पूर्व में से निकल कर गंगा की सुविस्तृत लहरों पर नृत्य करने लगीं, पक्षी वाटिका और वन के वृक्षों के झुरमुटों में मंगलगान गाने लगे और मंद समीर फूलों की सुवास का भार लिए शारदा-कुटीर के वासियों को जगाने आए तब दूर किसी पहाड़ी पर कोई ग्रामीण ग्वाले अलगोजे की मधुर तान के साथ लय बांध कर गा रहे थे, 'बंशी बाजेगी तो आऊंगी मुकुट वारे।'

मीरा ने संगीत की मीठी तान को सुन कर आंखें खोल दीं। वह प्रभात की मीठी नींद में थोड़ी ही देर बेसुध हो पाई थी, इसलिए वह अंगड़ाई लेती हुई अपनी झोंपड़ी से निकली और उस संगीत को विमोहित हरिणी की भांति, जो बीन का स्वर सुन कर तिनके चरना भूल जाती है, अपने कानों से पीने लगी। उस समय उसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी। नींद में बिखरी हुई लटें मानो किसी विद्रोही प्रेमी को फिर बांध लेने के लिए खुल पड़ी थीं। उसके कपोल अरुण हो रहे थे और आंखें झप रही थीं। उसने देखा कि उसके सामने खड़ा हुआ रमाशंकर उसकी ओर आश्चर्य की स्थिर निगाह से देख रहा था। यकायक किसी ने पुकारा, 'मीरा।' मीरा ने देखा कि उसकी मां मनोरमा उसे बुला रही थी। उसने कहा, 'हां मां, आई', और वह जाने लगी।

क्रान्तिकारी महात्मा का आश्चर्य बढ़ गया। उन्होंने कहा, "निश्चय ही यह शारदा है; किन्तु यह मीरा कैसे हो गई?" उन्होंने सोचा, "कदाचित मुझको भ्रम हुआ है। यह शारदा नहीं हो सकती।" उनकी इच्छा हुई कि वे भी पुकारें 'शारदा' और अचानक उनके मुँह से ध्वनि निकली, "शारदा।"

शारदा लौट पड़ी। उसने आंखों में प्रेमाश्रु भर कर रमाशंकर की ओर पग बढ़ाये और सलज्ज भाव से करबद्ध अभिवादन किया। रमाशंकर ने उसको अपने हृदय से लगा लिया। फिर क्या था। दोनों देर तक इसी

अवस्था में रहे। अन्त में रमाशंकर ने कहा, "शारदा, तुम मुझे क्षमा कर दो!"

शारदा ने कहा, "स्वामी, आपको पाकर मैंने अपना अस्तित्व मिटा डाला। अब मेरे पास अपना कुछ है ही नहीं। जो कुछ है वह सब आपका है। यह मेरा पुराना परिवार है। मेरा पहिला नाम मीरा है और मैं पटना के अवधबिहारीलाल वकील की लड़की हूँ। मैं कभी गंगा में बह गई थी। जिस घर से आपने मुझे पाया वह तो मेरे पालक-पिता का घर था।"

रमाशंकर को बड़ा विस्मय हुआ कि यह सब मिलन किस प्रकार हुआ। इतने में सुशील आगया। उसने शारदा को कहा, "मीरा, तुम्हें मां बुलाती है।" साथ ही उसने क्रान्तिकारी महात्मा को कहा, "चलिए जीजा जी, आप भी वहां ही चलिए।"

रमाशंकर ने कहा, "हां चलो, अब तो मुझे भी चलना ही चाहिए।"

+ समाप्त +